



खिलवत

श्री तारतम वाणी

खिल्वत

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २००८, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१८

अनुक्रमणिका

1	ऐसा खेल देखाइया	9
2	हम लिए कौल खुदाए के (मैं खुदी काढ़े का इलाज)	58
3	मैं बिन मैं मरे नहीं	95
4	ज्यों जानो त्यों रखो	153
5	यों कई देखाई माया (रूहों को कुदरत देखाई हक ने)	228
6	गैब बातें मेहेबूब की (पंच रोशनी का मंगला चरन)	286
7	ए इलम इन वाहेदत का (बेसकी का प्रकरण)	330
8	साकी पिलावे सराब (सराब सुख लज्जत)	363

9	देख तूं निसबत अपनी (निसबत का प्रकरण)	410
10	रे रूह करे ना कछू अपनी (कलस पंच रोसनी का)	443
11	खिलवत हक रूहन की	513
12	हाए हाए क्यों न सुनो रूहें अर्स की (सूरत हक इस्क के मगज का बेसक)	578
13	ल्याओ बुलाए तुम रूहअल्लाह	663
14	रूहअल्लाह सुभाने भेजिया (सूरत अर्स अजीम की बातूनी रोसनी)	709
15	आसिक मेरा नाम	791
16	मेहेर हुई महंमद पर	858

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में ज्ञान के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन" अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी की टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से वाणी की टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते?

इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। ब्रह्मवाणी के गुह्य रहस्यों के ज्ञाता श्री अनिल श्रीवास्तव जी का इस टीका में विशेष सहयोग रहा है।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा – सुमन समर्पित करते हुए मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य –

धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

जिला सहारनपुर (उ.प्र.)

श्री कुलजम सरूप

निजनाम श्री जी साहिब जी, अनादि अछरातीत।

सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहित॥

खिलवत

खिल्वत का शाब्दिक अर्थ होता है, अन्तःपुर। यह अरबी भाषा का "खल्वत" शब्द है, जिसका तात्पर्य है "एकान्त स्थान"। यह वह स्थान है, जहाँ आशिक और माशूक (प्रेमी और प्रेमास्पद) अपनी प्रेम लीला को क्रियान्वित करते हैं।

बाह्य रूप में खिल्वत किसी स्थान विशेष को मान सकते हैं, किन्तु आन्तरिक रूप में आशिक और माशूक का हृदय (दिल) ही वास्तविक खिल्वत की संज्ञा प्राप्त करता है।

चिद्धन स्वरूप अक्षरातीत का हृदय इश्क का गँजानगँज सागर है। उससे प्रकट होने वाले आनन्द के सागर की लहरों के साथ होने वाली क्रीड़ा ही प्रेम और आनन्द की लीला है।

सम्पूर्ण परमधाम की लीला और शोभा अक्षरातीत के हृदय का उद्धार है। यही हकीकत है। आनन्द का सागर और उसकी लहरें ही निस्बत है। स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म की अभिन्न अंग स्वरूपा होने से इनमें वहदत (एकदिली) है। निस्बत और वहदत में ही इश्क निहित है। इनकी क्रीड़ा ही खिल्वत का प्रकटीकरण है।

खिल्वत अक्षरातीत के हृदय का वह बहता हुआ रस है, जिसमें इश्क और आनन्द की लहरें क्रीड़ा करती हैं, निस्बत गोता लगाती है, किन्तु पार नहीं पाती।

अध्यात्म की सर्वोच्च मन्जिल (मारिफत) तक पहुँचने में

खिल्वत ग्रन्थ एक सोपान है। इसमें उस ब्रह्मानन्द लीला की एक झलक सी दिखायी गयी है, जिससे इस नश्वर जगत में परमधाम का कुछ आभास मिल सके। प्रारम्भ के पाँच प्रकरणों में "मैं खुदी" को त्यागने का विशेष वर्णन है। स्वयं का अस्तित्व मिटाये बिना उस स्वलीला अद्वैत के आनन्द का रसपान सम्भव ही नहीं है। संसार के प्रपञ्चों से हटाकर आत्मा को परमधाम की ओर ले जाना ही इस ग्रन्थ का मुख्य आशय है।

ऐसा खेल देखाइया, जो मांग लिया है हम।

अब कैसे अर्ज करुं, कहोगे मांग्या तुम॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे मेरे धाम धनी! आपने हमें माया का वही झूठा खेल दिखाया है, जो हमने इश्क-रब्द के समय आपसे माँगा था। इस

मायावी खेल से मुक्त होने के लिए आपसे प्रार्थना करने में मुझे बहुत अधिक झिझक हो रही है कि कैसे आपसे कहूँ कि हमें इस खेल से निकालिये? आप तो तुरन्त ही कह देंगे कि तुमने यह खेल माँगा था, तभी तो मैंने दिखाया।

कछु आस न राखी आसरो, ए झूठी जिमी देखाए।

ऐसी जुदागी कर दई, कछु कह्यो सुन्यो न जाए॥२॥

आपने हमें ऐसी झूठी दुनियाँ दिखायी है, जिसमें आपका सहारा मिलने की कोई आशा ही नहीं दिखाई पड़ती। आपसे तो ऐसी जुदायगी हो गयी है कि उसके विषय में कुछ कहना-सुनना भी सम्भव नहीं होता।

भावार्थ- इस चौपाई में माया की उस प्रबलता का उल्लेख है, जिसके कारण आत्मा स्वयं को असहाय

अवस्था में अनुभव कर रही है। उसके प्रेम की एकनिष्ठा भी ऐसी है कि वह श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी का सहारा भी नहीं लेना चाहती।

बैठी अंग लगाए के, ऐसी करी अन्तराए।

ना कछू नैनों देखत, ना कछू आप ओलखाए॥३॥

हे धनी! मैं आपके सामने ही मूल मिलावा में सुन्दरसाथ के गले में बाँहे डालकर बैठी हूँ, किन्तु आपने ऐसी दूरी कर दी है कि मैं अपने नेत्रों से कुछ भी नहीं देख पा रही हूँ। यहाँ तक कि आपकी पहचान भी नहीं कर पा रही हूँ।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियों के तन यद्यपि धनी के सम्मुख ही बैठे हैं, किन्तु नजर के खेल में होने के कारण वहाँ (मूल मिलावा में) फरामोशी जैसी स्थिति है। यद्यपि इसके कारण श्री राज जी सखियों के सामने ही बैठे हैं, किन्तु

परआत्म की नजरों से दिखायी नहीं पड़ते हैं।

बैठी अंग लगाए के, ऐसी दर्द उलटाए।

न कछु दिल की केहे सकों, न पिया सब्द सुनाए॥४॥

मैं परमधाम में सुन्दरसाथ से गले लिपट कर बैठी हूँ, लेकिन आपने मेरी सुरता को इस तरह से माया में लगा दिया है कि मैं न तो अपने दिल की कोई बात आपसे कह पा रही हूँ और न ही आपके शब्दों को सुन पा रही हूँ।

बैठी आंखे खोल के, अंग सो अंग जोड़।

आसा उपजे अर्ज को, सो भी दर्द मोहे तोड़॥५॥

मूल मिलावा में मेरी आँखें खुली हुई हैं और मैं सुन्दरसाथ से जुड़कर बैठी हूँ। आपसे कुछ प्रार्थना करने

की इच्छा होती है, किन्तु वह इच्छा भी अब टूट गयी है।

भावार्थ- यहाँ यह जिज्ञासा पैदा होती है कि धनी से अर्जी करने की इच्छा होने पर भी वह क्यों नहीं की जाती? इसमें प्रमुख कारण क्या है – माया, ज्ञान, या विरह?

यह तो स्पष्ट है कि तारतम ज्ञान के द्वारा पहचान होने पर ही विरह सम्भव है। इस नश्वर जगत में तारतम ज्ञान की प्राप्ति आत्मा को ही होती है, जिससे वह विरह की राह अपनाकर प्रेम में डूबने का प्रयास करती है। आत्मा के द्वारा इस संसार में होने वाली लीला को परात्म द्रष्टा होकर देखती तो है, किन्तु वह आत्मा की तरह धनी के विरह या प्रेम में नहीं डूब सकती, क्योंकि इस समय वह मात्र द्रष्टा है।

श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी से कहा था कि

शाकुमार तथा शाकुण्डल की आत्मा किसी राजघराने में हैं, क्योंकि इनके मूल तन परमधाम में हँस रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि आत्मा के द्वारा तारतम ज्ञान के रसपान, या अज्ञानता के अन्धकार में भटकने, विरह और प्रेम आदि में डूबने, की अनुभूति परात्म को भी वैसे ही होती है, जैसे चित्रपट (सिनेमा) को देखने पर हमारे चेहरे पर भी सुख या दुःख के भाव दिखायी देने लगते हैं। इस प्रकरण की चौपाई २, ३, ४ आदि में जो कहा गया है कि मैं न तो कुछ कह-सुन पा रही हूँ और न अपने नैनों से देख पा रही हूँ, वह सब परात्म के तन के लिये है।

सदा सुख दाता धाम धनी, अंगना तेरी जोड़।

जानो सनमंध कबूं ना हुतो, ऐसा किया बिछोड़॥६॥

हे मेरे धाम धनी! आप तो हमेशा ही अखण्ड सुखों को

देने वाले हैं। मैं आपकी अर्धांगिनी और अंगस्वरूपा हूँ। आपने हमें माया में अपने से ऐसे अलग कर दिया है कि लगता है जैसे आपसे हमारा पहले कोई सम्बन्ध था ही नहीं।

बैठी सदा चरन तले, कबू न्यारी ना निमख नेस।

पाइए ना नाम ठाम दिस कहूँ, ऐसा दिया विदेस॥७॥

मैं अपने मूल तन से परमधाम में हमेशा आपके चरणों में ही बैठी हुई हूँ और अब तक एक पल के लिये भी आपसे अलग नहीं हो सकी हूँ, किन्तु आपने मुझे सुरता द्वारा ऐसे मायावी जगत में डाल दिया है, जिसमें आपका नाम (पहचान), धाम, और दिशा भी नहीं ज्ञात हो पा रही है।

बैठी तले कदम के, बीच डारे चौदे तबक।

दूर-दराज ऐसी करी, कहूं नजीक न पाइए हक॥८॥

यद्यपि मैं मूल मिलावे में आपके चरणों में ही बैठी हुई हूँ, किन्तु मेरी नजर चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आ गयी है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपने मुझे इतना दूर कर दिया है कि मैं कहीं भी आपको अपने निकट अनुभव नहीं कर पा रही हूँ।

बैठी तले कदम के, ऐसी करी परदेसन।

ले डारी ऐसी जुदागी, रहया हरफ न नुकता इन॥९॥

कहने को तो मैं आपके चरणों में ही बैठी हुई हूँ, किन्तु आपने मुझे इस माया में लाकर विदेशी की तरह कर दिया है। आपने इस माया में मुझे ऐसा वियोग दे दिया है कि आपकी पहचान कराने वाले ज्ञान का एक भी शब्द

सुनने को नहीं मिलता।

बैठी हों आगे तुम, जानूं अर्ज करूं कर जोड़।

सो उमेद कछू ना रही, कोई ऐसो दिया दिल मोड़॥१०॥

वैसे तो मैं आपके चरणों में ही बैठी हुई हूँ और मन में यह इच्छा भी होती है कि मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करूँ, लेकिन आपने मेरे दिल को माया में ऐसे डाल दिया है कि अब मुझे किसी भी प्रकार से यह आशा नहीं है कि मैं आपको प्रार्थना कर सकूँगी।

भावार्थ- वस्तुतः सुरता को परात्म के दिल की लीला करने वाली "शक्ति" कहा जा सकता है। जिस प्रकार चित्त के संस्कारों के योग से, मन के संकल्पों द्वारा, सुषुप्ति अवस्था में, स्वप्न की लीला प्रारम्भ हो जाती है और शरीर का प्रतिबिम्बित रूप भी दिखायी पड़ने लगता

है, जो जाग्रत अवस्था की तरह ही सक्रिय प्रतीत होता है, उसी प्रकार परात्म के दिल की नजर श्री राज जी के दिल रूपी परदे से होकर जीवों पर पड़ गयी है। इसे ही परात्म के दिल का मुड़ना या आत्मा, सुरता, वासना, या नजर का इस संसार में आना कहा जाता है। वहदत के दिल की शक्ति ही स्वप्न की तरह इस संसार में परात्म के प्रतिबिम्ब रूपी आत्मा और उसके दिल की लीला करती है।

ऐसी दर्ई उलटाय के, बैठी हों कदम के पास।

दरद न कहयो जाय दिल को, उमेद न रही कछू आस॥११॥

यद्यपि मैं मूल मिलावे में आपके चरणों के ही पास बैठी हुई हूँ, किन्तु आपने मेरी सुरता (ध्यान) को माया में इस प्रकार भेज दिया है कि अब मैं अपने दिल के दर्द को

कह भी नहीं सकती और भविष्य में अब इसकी कोई आशा भी नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि अपने दिल के दर्द को न कह पाने की असमर्थता कहाँ से सम्बन्धित है, इस खेल से या परमधाम के मूल तन से?

यह तो पूर्व में ही स्पष्ट हो चुका है कि परात्म के नेत्र खुले हैं, लेकिन युगल स्वरूप को देख नहीं सकते। उनके मुख से न तो बोला जा सकता है और न कानों से सुना ही जा सकता है। ऐसी स्थिति में परात्म के दिल से दर्द की अभिव्यक्ति होना सम्भव नहीं है। इस जागनी लीला में सब कुछ आत्मा के दिल से ही सम्बन्धित है। आत्म-चक्षुओं द्वारा श्री राजश्यामा जी को देखा जा सकता है, उनसे बातें की जा सकती हैं, तथा उनकी बातों को सुना जा सकता है।

जिस प्रकार स्वप्न में जब किसी भयानक दृश्य को देखा जाता है, तो जाग्रत होने के बाद भी भय की सिहरन मूल तन में बनी रहती है। दोनों तनों में आन्तरिक रूप से एक तारतम्य स्थापित होता है। स्वप्न में कपड़ा फाड़ने वाला यथार्थ में ही अपने वस्त्रों को फाड़ डालता है। इसी प्रकार परात्म और आत्मा के बीच एक आन्तरिक तारतम्य है, जिसके द्वारा परात्म की विवशता को आत्मा के द्वारा व्यक्त करने की बात कही गयी है।

बैठी तले कदम के, मेरो ए घर धाम धनी।

ए सुख देखाए जगावत, तो भी होत नहीं जागनी॥१२॥

हे मेरे धाम धनी! मेरा मूल घर परमधाम ही है, जहाँ मैं आपके चरणों में बैठी हूँ। आप परमधाम के सुखों का अनुभव कराकर हमें जगा रहे हैं, फिर भी हमारी जागनी

नहीं हो पा रही है।

बैठी इन मेले मिने, ए घर धनी सुख अखंड।

आस न केहेन सुनन की, जानो बीच पड़यो ब्रह्मांड॥१३॥

मैं परमधाम के उस मूल मिलावा में बैठी हुई हूँ, जो अखण्ड सुख का स्थान है। माया का यह ब्रह्माण्ड हमारे और धनी के बीच पर्दा बन गया है, जिससे अब कुछ भी कहने-सुनने की आशा नहीं रह गयी है।

धनी धाम सुख बतावत, ए धनी सुख अखंड।

आप दया बतावत अपनी, आड़े दे ब्रह्मांड पिंड॥१४॥

हे धाम धनी! हमारे और आपके बीच इस पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड का ही परदा है। इस नश्वर जगत में आप तारतम ज्ञान द्वारा परमधाम के अखण्ड सुखों का

अहसास कराकर अपनी कृपा (दया) की भी पहचान करा रहे हैं।

जगावत कई जुगतें, दर्ई कई विध साख गवाहे।

बैठावत सुख अखंड में, तो भी जेहेर जिमी छोड़ी न जाए॥१५॥

आप धर्मग्रन्थों की अनेक प्रकार की साक्षियाँ देकर हमें अनेक प्रकार की युक्तियों से जगा रहे हैं तथा परमधाम के अखण्ड सुखों की अनुभूति करा रहे हैं। फिर भी, कितने आश्चर्य की बात है कि विषयों के विष से भरा हुआ यह संसार हमसे छूटता नहीं है?

धनी मैं तो सूती नींद में, तुम बैठे हो जाग्रत।

खेल भी तुम देखावत, बल मेरो कछू ना चलत॥१६॥

मेरे प्राण प्रियतम! मैं तो माया की नींद में हूँ और

एकमात्र आप ही जाग्रत हैं। अपने चरणों में बैठाकर, आप ही माया का खेल दिखा रहे हैं। इसमें हमारा कोई भी बल काम नहीं करता है।

बल बुध न रही कछू उमेद, मेरो कोई अंग चलत नाहें।

ऐसी उरझाई इन खेल में, एक आस रही तुम माहें॥१७॥

आपने माया के इस खेल में मुझे इस तरह से उलझा दिया है कि इससे निकलने के लिये न तो मेरा बल कार्य कर रहा है और न कोई आशा ही बची है। मेरी बुद्धि भी कुण्ठित (निष्क्रिय) हो गयी है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि इस कार्य में मेरे शरीर का कोई भी अंग मेरा साथ नहीं दे रहा है। अब तो केवल आपसे ही मेरी आशा है।

और आसा उमेद कछू ना रही, और रख्या ना कोई ठौर।

एता दृढ़ तुम कर दिया, कोई नाहीं तुम बिना और॥१८॥

अब तो मेरे अन्दर इस बात की जरा भी आशा नहीं रह गयी है कि मैं अपने बल से इस माया से पार हो सकूँगी। आपने मेरे मन में इस बात की दृढ़ता कर दी है कि आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी सहारा ही नहीं है।

भावार्थ— आशा और उम्मीद वैसे ही समानार्थक शब्द हैं, जैसे प्रेम और इश्क। "आपके बिना कोई और नहीं है" का कथन प्रेम की एकनिष्ठा को दर्शाता है।

बल बुध आसा उमेद, ए तुम राखी तुम पर।

मुझमें मेरा कछू ना रह्या, अब क्या कहूं क्योंकर॥१९॥

मेरा बल, बुद्धि, और आशा एकमात्र आप पर अवलम्बित (निर्भर) हैं, अर्थात् आप ही मेरे सर्वस्व हैं।

आपके प्रति समर्पित होने के कारण मेरे अन्दर "मैं और मेरा" का कुछ भाव ही नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यही निष्कर्ष निकलता है कि मैं आपसे क्या कहूँ और क्यों कहूँ?

स्यामाजीएँ मोहे सुध दर्ई, तब मैं जानी न सगाई सनमंध।
सुध धनी धाम न आपकी, ऐसी थी हिरदे की अंध॥२०॥
सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने इस संसार में मुझे आपकी पहचान करायी, लेकिन उस समय मेरे हृदय के नेत्र बन्द थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं न तो आपके प्रति अपने मूल सम्बन्ध को जान सकी और न आपकी तथा परमधाम की पहचान कर सकी।

तब जानों इन बात की, कोई देवे दूजा साख।

सो हलके हलके देत गए, मैं साख पाई कई लाख॥२१॥

उस समय मेरे मन में यह बात थी कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति भी धनी तथा परमधाम से सम्बन्धित बातों की साक्षी दे तो मैं पूरी पहचान कर लूँ। धाम धनी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर धीरे-धीरे साक्षियाँ दीं। इस प्रकार प्रियतम और परमधाम की पहचान से सम्बन्धित मुझे लाखों (बहुत अधिक) साक्षियाँ मिल गयीं।

भावार्थ- इस चौपाई में लाखों साक्षियाँ मिलने की बात अतिशयोक्ति अलंकार के रूप में कही गयी है। इसका भाव है बहुत अधिक। श्रीमुखवाणी का अवतरण समय-समय पर धीरे-धीरे होता रहा। इसे ही हल्के-हल्के देना कहा गया है।

मैं हुती बीच लड़कपने, तब कछुए न समझी बात।

मोहे सब कही सुध धाम की, भेख बदल आए साख्यात॥२२॥

मेरे प्रियतम! जब आप श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर लीला कर रहे थे, उस समय मैं बचपने (नादानी, नासमझी) का शिकार थी। धनी के द्वारा कही हुई बातों को मैं यथार्थ रूप से नहीं समझ सकी। अन्त में धाम धनी ने अपना भेष बदल लिया, अर्थात् श्री देवचन्द्र जी का तन छोड़कर वे साक्षात् मेरे अन्दर विराजमान हो गये, और वाणी के रूप में उन्होंने मुझे परमधाम की सम्पूर्ण पहचान दी।

भावार्थ— इस चौपाई में होड़ और हठ का शिकार होकर श्री मिहिरराज जी के द्वारा कसनी का मार्ग अपनाने को ही लड़कपना कहा गया है। हब्से में दर्शन देकर अपनी पहचान कराना ही भेष बदलकर साक्षात् आना है।

सोई वचन मेरे धनीय के, हाथ कुंजी आई दिल को।

उरझन सारे ब्रह्मांड के, मैं सुरझाऊं इन सों॥२३॥

मेरे धाम हृदय में तारतम ज्ञान रूपी कुन्जी का अवतरण हुआ। ब्रह्मवाणी के रूप में उन्हीं वचनों का विस्तृत रूप अवतरण हुआ, जो धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के तन में विराजमान होकर कहा था। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उलझनों को मुझे इस तारतम वाणी से ही सुलझाना है।

पेहेले पाल न सकी सगाई, ना कर सकी पेहेचान।

पर हम बीच खेल के, कई पाए धनी धाम निसान॥२४॥

मेरे प्राण प्रियतम! जब आप सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप में लीला कर रहे थे, उस समय मैं न तो आपकी पहचान कर सकी और न मूल सम्बन्ध का प्रेम ही निभा सकी, लेकिन इस खेल में समय-समय पर

उनकी पहचान से सम्बन्धित साक्षियाँ मिलती गयीं।

कई साखें बीच कागदों, मुझ पर आया फुरमान।

इनमें इसारतें रमूजें, सो मैं ही पाऊं पेहेचान॥२५॥

सभी धर्मग्रन्थों में आपकी पहचान से सम्बन्धित साक्षियाँ लिखी हुई हैं। संसार को मेरे स्वरूप (आखरूल इमाम मुहम्मद महदी) की पहचान देने के लिये कुरआन का अवतरण हुआ है। इसमें संकेतों में बहुत ही गुह्य बातें बतायी गयी हैं, जिसकी पहचान केवल मुझे ही है।

भावार्थ- कुरआन में परमधाम तथा अक्षरातीत की पहचान तो है ही, साथ ही कियामत के समय में प्रकट होने वाले हकी सूरत की भी पहचान है, जिसका संकेत इस चौपाई में किया गया है।

मेरे धनी की इसारतें, कोई और न सके खोल।

सो भी आत्म ने यों जानिया, ए जो स्यामा जी कहे थे बोल॥२६॥

मेरे धनी के द्वारा इशारों में कही हुई गुह्य बातों को मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं खोल सकता। मेरी आत्मा ने इस बात की पहचान भी कर ली थी, क्योंकि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने बहुत पहले ही बता दिया था कि सभी धर्मग्रन्थों के भेद तुमसे ही खुलेंगे।

ए सुध हुई त्रैलोक को, सबों जान्या इनों घर धाम।

मोहे बैठाए बीच दुनी के, दिया ऐसा सुख आराम॥२७॥

इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को भी इस बात की जानकारी हो गयी है कि हमारा घर परमधाम है। धाम धनी ने इस संसार में लाकर मुझे निस्वत की पहचान का, तथा इस ब्रह्माण्ड के जीवों को मुक्ति का, अखण्ड

सुख दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई में त्रैलोक शब्द से तात्पर्य चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से है।

सो बातें मैं केती कहूँ, मैं पाई बेसुमार।

पर एक बात न सुनाई मुख की, अजू न कछू देत दीदार॥२८॥

इन बातों को मैं कितना कहूँ? मैंने इस संसार में बेशुमार शोभा तो पायी, लेकिन धनी ने अपने मुखारविन्द से कोई बात नहीं की, और वे अभी भी कोई दर्शन नहीं दे रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में साक्षी मिलने का कोई प्रसंग नहीं है। धनी ने श्री महामति जी को जो शोभा दी है, यहाँ उसी का वर्णन है। यहाँ सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये ही कहा गया है कि मुझे न तो श्री राज जी का दर्शन

हो रहा है और न कोई बात ही हो रही है। वस्तुतः यह सुन्दरसाथ की स्थिति है, न कि महामति जी की। जिनके धाम हृदय में अक्षरातीत पाँचों शक्तियों के साथ विराजमान हों, उनके लिये प्रियतम का दीदार और वार्ता असम्भव नहीं है। यहाँ वैसी ही अभिव्यक्ति है, जैसा सिन्धी ग्रन्थ में सुन्दरसाथ की तरफ से श्री इन्द्रावती जी ने कहा है।

अब ऐसा दिल में आवत, जेता कोई थिर चर।

सब केहेसी प्रेम धनीय का, कछु बोले ना इन बिगर॥२९॥

अब मेरे दिल में इस तरह की भावना आ रही है कि इस ब्रह्माण्ड के जो भी चर (चलने वाले) और अचर (स्थिर रहने वाले वृक्ष आदि) प्राणी हैं, वे मात्र धनी की प्रेममयी लीला का ही वर्णन करें, इसके अतिरिक्त वे अपने मुख

से अन्य कुछ भी न बोलें।

द्रष्टव्य- अन्य प्राणियों की तो बात दूर की है, जिस दिन सुन्दरसाथ राग-द्वेष की परिधि से दूर होकर केवल धनी के प्रेम में खो जायेगा, उस दिन आत्मा के जाग्रत होने में जरा भी देर नहीं लगेगी। इस चौपाई के कथन से यह स्पष्ट होता है कि सुन्दरसाथ को धनी के प्रेम में डुबाने के लिये महामति जी के हृदय में अगाध पीड़ा (कसक) छिपी हुई है।

ऐसा आगूं होएसी, आतम नजरों भी आवत।

जानों बात सुनों मैं धनीय की, पर मोहे अजूं बिलखावत॥३०॥

मेरी आत्मा भी इस बात को स्पष्ट रूप से देख रही है कि भविष्य में ऐसा अवश्य होगा जब सभी लोग प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम की ही चर्चा करेंगे। मेरे मन में भी यह

इच्छा होती है कि मैं आपकी प्रेममयी बातों को जानूँ तथा उन्हें सुना करूँ, लेकिन आज भी आप मुझे इसके लिये रुला (विलखा) रहे हैं।

भावार्थ- योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही ऐसी स्थिति आयेगी, जब चर-अचर सभी प्राणी अक्षरातीत के प्रेम की लीला का वर्णन करेंगे। इस संसार में भी जिन जीवों के पास तारतम वाणी का प्रकाश फैल जायेगा, वे निश्चय ही धनी के प्रेम की राह अपना सकते हैं। श्री इन्द्रावती जी की यही वेदना है कि संसारी जीव तो आपके प्रेम की बातें कर रहे हैं और मैं अर्धांगिनी होकर भी आपसे साक्षात् बातें नहीं कर पा रही हूँ, यह असहनीय स्थिति है। यह व्यथा आगे की चौपाइयों में भी प्रकट हो रही है।

ना कछू देखूं दरसन, ना कछू केहेने की आस।

ना कछू सुध सनमंध की, बैठी हों कदम के पास॥३१॥

यद्यपि मैं मूल मिलावा में आपके चरणों में ही बैठी हुई हूँ, लेकिन न तो मैं आपका कुछ दर्शन कर पा रही हूँ और न आपसे कुछ कहने की आशा ही बची है। इस मायावी जगत में तो अब आपसे अखण्ड सम्बन्ध की सुध भी नहीं रह गयी है।

धनी एती भी आसा ना रही, जो करूं तुमसों बात।

ना बात तुमारी सुन सकों, ना देखूं तुमें साख्यात॥३२॥

मेरे प्राण प्रियतम! अब तो मुझे इस बात की कोई आशा नहीं रह गयी है कि मैं आपसे बात भी कर सकूँगी। इस समय न तो मैं आपकी बात सुन पा रही हूँ और न आपको साक्षात् देख ही पा रही हूँ।

एह धनी एह घर सुख, सनमंध दियो भुलाए।

लगाव न रहयो एक रंचक, तार्थें मेरो कछू न बसाए॥३३॥

हे धनी! माया ने मुझसे आपको, परमधाम के अखण्ड सुखों को, तथा मूल सम्बन्ध को भी भुलवा दिया है। अब तो मेरे हृदय में आपके लिये थोड़ा सा भी लगाव नहीं रह गया है। इसलिये अब मेरा इस माया पर कुछ भी बस नहीं चल पा रहा है।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ३१, ३२ में परमधाम में स्थित परात्म की वर्तमान अवस्था का चित्रण है, किन्तु चौपाई ३३, ३४, और ३५ में इस खेल में सुन्दरसाथ की वर्तमान स्थिति का वर्णन है, जिसे श्री इन्द्रावती जी ने स्वयं के ऊपर लेकर कहा है।

कहा करुं किन सों कहूं, ना जागा कित जाऊं।

एता भी तुम दृढ़ कर दिया, तुम बिना ना कित ठाऊं॥३४॥

मैं अब क्या करूँ? अपने हृदय की व्यथा किससे कहूँ?
मैं ऐसी कोई जगह भी नहीं देखती, जहाँ जाकर शान्ति
प्राप्त कर सकूँ। आपने मेरे मन में इस बात की भी दृढ़ता
कर दी कि आपके बिना कोई दूसरा ठिकाना नहीं है।

ना कछु एता बल दिया, जो लगी रहूं पिउ चरन।

पर ए सब हाथ खसम के, और पुकारुं आगे किन॥३५॥

आपने मुझे इतना आत्मिक बल भी नहीं दिया कि मैं
हमेशा आपके चरणों में लगी रहूँ। अपने चरणों में बनाये
रखना तो आपके ही हाथ में है। आपके अतिरिक्त मेरा
और कौन है, जिसके आगे मैं पुकार करूँ?

रोई तो भी जाहेर, पुकारी जोस खुमार।

जो देते रंचक बातूनी, तो होती खबरदार॥३६॥

हे प्रियतम! यदि मैं आपको पाने के लिए रोई भी तो बाह्य रूप से ही। अन्तरात्मा से विरह की रसधारा में डूबकर मैंने कभी भी आपको नहीं पुकारा। आपको पुकार भी लगाई तो माया की नींद (खुमारी) के जोश में। यदि आप मुझे बातिनी (गुह्य) रूप से थोड़ी भी पहचान दे देते, तो मैं अपनी जागनी के प्रति सावचेत हो जाती।

अब केहेना तो भी तुमको, ठौर तो भी तुम।

अंगना तो भी धनी की, तुम हो धनी खसम॥३७॥

अब यदि मैं कुछ कहूँगी भी, तो केवल आपसे ही। मेरी आत्मा का मूल ठिकाना भी आपके चरणों में ही है। एकमात्र आप ही मेरे प्रियतम हैं और मैं आपकी अँगना

८५।

आसा उमेद धनी की, बल बुध ठौर धनी।

पिंड न रहयो ब्रह्मांड, तुम ही में रही करनी॥३८॥

मेरे प्राणवल्लभ! मेरी आशा तो केवल आप पर ही केन्द्रित है। आत्मिक बल और जाग्रत बुद्धि भी आपके ही चरणों के आधार में स्थित है। मेरी सम्पूर्ण करनी तो आपको ही पाने का लक्ष्य लेकर है। अब इस शरीर और संसार में मेरी कोई भी आसक्ति नहीं है।

जोर कर जुदागी कर दई, और जोर कर जगावत तुम।

केहेनी सुननी मेरे कछू ना रही, तो क्यों बोलूं मैं खसम॥३९॥

आपने अपने हुक्म के बल से हमारी सुरता को परमधाम से अलग कर दिया और इस जागनी ब्रह्माण्ड में अपनी

शक्ति (मेहर, जोश, हुक्म, और इल्म) से जगा रहे हैं।
ऐसी स्थिति में जब आपसे मैं कुछ भी कहने-सुनने की
स्थिति में ही नहीं हूँ, तो किसी भी बात के बारे में क्या
बोलूँ?

ऐसे कायम सुख के जो धनी, किन विध दई भुलाए।

इन दुख में देखावत ए सुख, हिरदे तुम ही चढ़ाए॥४०॥

हे धाम धनी! आप परमधाम के अखण्ड सुखों के स्वामी
हैं, फिर भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमने इस
माया में आपको भुला दिया है। आप अपनी मेहर (कृपा)
से, इस दुःखमयी संसार में भी, हमें परमधाम के अखण्ड
सुखों की अनुभूति कराते हैं और हमारी आत्मा के हृदय
धाम में उन्हें अखण्ड करते हैं।

ऐसे सुख अलेखे अखंड, भुलाए दिए माहें खिन।

सुख देखत उनथें अधिक, पर आवे अग्याएं अंतस्करन॥४१॥

परमधाम के सुख शब्दातीत और अखण्ड हैं। इस माया में आकर हमने एक क्षण में ही उनको भुला दिया। जाग्रत हो जाने के बाद तो हमारे हृदय में परमधाम के सुखों से भी अधिक सुखों की अनुभूति हो रही है, किन्तु यह अनुभूति आपके हुक्म (आदेश) के बिना कदापि सम्भव नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय पैदा होता है कि इस नश्वर और दुःखमयी जगत में परमधाम से भी अधिक सुख की अनुभूति कैसे हो सकती है?

जब तक हमारी आत्मा माया की फरामोशी (अन्धकार) में भटक रही होती है, तब तक हमें दुःख की ही अनुभूति होती है, किन्तु यदि हमने विरह-प्रेम में डूबकर (ध्यान

द्वारा) सुख के निधान युगल स्वरूप को ही अपने हृदय में बसा लिया, तो हमारा हृदय भी धाम बन जाता है। ऐसी स्थिति में हमें परमधाम के सुखों की अनुभूति इस संसार में ही होने लगती है। यहाँ हम धनी के दिल में डूबकर उनके सागरों के सुख की भी लज्जत ले सकते हैं, जो परमधाम में सम्भव नहीं है। इश्क, वहदत, तथा निस्बत की मारिफत की पहचान यहाँ ही सम्भव है, परमधाम में नहीं। इस जागनी ब्रह्माण्ड में ही योगमाया की लीलाओं का भी अनुभव किया जा सकता है, जो परमधाम में नहीं हो सकेगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, जाग्रत हो जाने पर, परमधाम से भी अधिक सुखों का अनुभव यहाँ किया जा सकता है, किन्तु यह सब धनी की इच्छा (हुक्म) पर ही निर्भर है।

खेल किया हुकम सों, हम आए हुकम।

हुकमें दरसन देखावहीं, कछू ना बिना हुकम खसम॥४२॥

आपने अपने हुकम से ही यह खेल बनाया। हम भी इस खेल में आपके हुकम से ही आये। आपके हुकम से ही आपका दीदार होता है। यह बात तो पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि आपके हुकम के बिना कुछ है ही नहीं।

भावार्थ- सम्पूर्ण श्रीमुखवाणी में मूल स्वरूप श्री राज जी के हृदय में होने वाली इच्छा (भाव) को ही इस संसार के शब्दों में "हुकम" कहा गया है, जिसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

हुकमें इस्क आवहीं, कदमों जगावे हुकम।

करनी हुकम करावहीं, कछू ना बिना हुकम खसम॥४३॥

धनी के आदेश (हुकम) से ही आत्मा के हृदय में इस्क

आता है। हुक्म ही आपके चरणों में अटूट ईमान (विश्वास) दिलाकर जाग्रत करता है। करनी (आचरण) की कसौटी पर हुक्म ही खरा सिद्ध करता है। आपके हुक्म के बिना तो कुछ है ही नहीं।

भावार्थ- कदमों में जाग्रत होने का तात्पर्य परात्म में जाग्रत होने से नहीं है, क्योंकि वह तो वहदत में है। वहदत में जागनी एकसाथ ही होगी। यहाँ कदमों का तात्पर्य धनी की छत्रछाया या सान्निध्यता पाने से है, जो अटूट विश्वास से ही प्राप्त होती है।

हुक्म उठावे हँसते, रोते उठावे हुक्म।

हार जीत दुख सुख हुकमें, कछू ना बिना हुक्म खसम॥४४॥

हे धनी! आपके हुक्म से ही हम परमधाम में हँसते हुए उठेंगे। यह हुक्म की ही कारीगरी है कि कुछ सुन्दरसाथ

खेल के खत्म होने से पहले दुःख की लीला देखने के कारण रो रहे होंगे। इस संसार में हार-जीत, सुख-दुःख, आदि सब कुछ धनी के हुक्म से होता है।

हुआ है सब हुकमें, होत है हुकम।

होसी सब कछू हुकमें, कछू ना बिना हुकम खसम॥४५॥

हे धनी! अब तक जो कुछ भी हुआ है, वह सब आपके हुक्म से हुआ है। वर्तमान समय में जो कुछ हो रहा है, वह भी आपके हुक्म से हो रहा है। भविष्य में भी जो कुछ होगा, वह आपके हुक्म से ही होगा। इस संसार में आपके हुक्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

अब ज्यों जानो त्यों करो, कछू रह्या ना हमपना हम।

इन झूठी जिमी में बैठके, कहा कहूं तुमें खसम॥४६॥

मेरे प्रियतम! अब तो मेरे अन्दर किसी भी प्रकार का अहंपना नहीं है। अब आपको जो भी अच्छा लगे, वही कीजिए। इस नश्वर संसार में आपसे मैं क्या कहूँ?

भावार्थ- "आपको जो भी अच्छा लगे" या "आपकी जो इच्छा हो" का कथन प्रायः लौकिक भावों में ही किया जाता है, किन्तु ऐसा कहने का मुख्य कारण यह है कि प्रेम की गहनतम स्थिति में पूज्यता होने का भाव समाप्त हो जाता है।

ए भी दृढ़ तुम कर दिया, सब कछु हाथ हुकम।
कछु मेरा मुझ में ना रह्या, तार्थें कहा कहूं खसम॥४७॥

आपने मेरे हृदय में इस बात की दृढ़ता कर दी है कि सब कुछ आपके हुक्म से ही होता है। जब आपकी कृपा से मेरे अन्दर जरा भी "मैं" (अहम्) का भाव नहीं रह

गया है तो मैं अपने से सम्बन्धित कोई भी बात कैसे कहूँ?

भावार्थ— अहम् का पूर्णतया परित्याग ही अध्यात्म की सर्वोच्च मन्जिल पर पहुँचने का संकेत है। इस स्थिति में आने के बाद किसी भी प्रकार का गिला-शिकवा नहीं रह सकता।

जो कहूँ कई कोट बेर, तो केहेना एता ही खसम।

जब कछू तुम ही करोगे, तब केहेसी आए हम॥४८॥

हे धनी! यदि मैं करोड़ों बार कहूँ तो भी मुझे केवल यही बात कहनी है कि जब आप ही कुछ (मेहर) करेंगे, तब मैं आपसे आकर कहूँगी।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है "तब केहेसी आए हम।" इसका भाव यह है कि फरामोशी से

उबरकर आपसे कहेंगे। परआत्म परमधाम की वहदत में है। वह वहाँ से फरामोशी को देख रही है, जबकि आत्मा फरामोशी में डूबी हुई है। आत्मा फरामोशी की जिस लीला का जीव के तन से अनुभव कर रही है, उसका सम्बन्ध परआत्म से भी बना हुआ है। श्री इन्द्रावती जी के कथन का आशय यह है कि जब आप हमें इस खेल से निकालेंगे, तभी हम आपसे कुछ भी कह सकेंगे। अगली चौपाई में यही भाव व्यक्त किया गया है।

अब तो केहेना कछू ना रहया, ऐसी अंतराए करी खसम।

जब तुम जगाए बैठाओगे, तब केहेसी आए हम॥४९॥

आपने मुझे इस माया में ऐसा वियोग दे दिया है कि अब मेरे पास कहने के लिये कुछ भी नहीं है। जब आप हमें मूल तन में जाग्रत करेंगे, तभी हम आपसे आकर कुछ

कहेंगे।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में यह संशय पैदा होता है कि यहाँ आत्मा की जागनी का प्रसंग है या परात्म की जागनी का। सागर ग्रन्थ १०/४४ में कहा गया है-

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

अर्थात् जब आत्मा के अन्तःकरण में युगल स्वरूप की छवि बस जाती है, तो उसकी स्थिति परात्म जैसी ही हो जाती है।

ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि क्या आत्म - जाग्रति की अवस्था में धाम धनी से वह बात नहीं हो सकती है, जो चौथे चरण में कही गयी है?

प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि इस जागनी

ब्रह्माण्ड में आत्म-जाग्रति की स्थिति प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकती। यद्यपि इस प्रकरण की चौपाई ४१ में कहा गया है कि इस ब्रह्माण्ड में जाग्रत हो जाने पर परमधाम से भी अधिक सुख की अनुभूति होती है (सुख देखत उनथें अधिक), किन्तु इसका भाव परमधाम के साथ-साथ योगमाया और कालमाया के सुख से भी है, जो परमधाम में रहते हुए सम्भव नहीं है। परमधाम के नूरमयी तनों में इश्क और वहदत के विलास (आनन्द) का अनन्त सुख है, जो इस पञ्चभौतिक तन में विराजमान आत्मा के द्वारा सम्भव नहीं है। वह परमधाम के विलास की लज्जत (स्वाद) तो ले सकती है, किन्तु उसमें स्वयं डूब नहीं सकती, क्योंकि यहाँ के प्राकृतिक तनों में वहाँ के विलास को सहन करने का सामर्थ्य नहीं है। इसलिये आत्म-जाग्रति की अवस्था में, युगल स्वरूप

के दीदार एवं वार्ता के समय भी कहने की एक सीमा है। इस प्रकार यहाँ यह स्पष्ट है कि इस चौपाई के चौथे चरण का सम्बन्ध परात्म की जाग्रति से ही लिया जायेगा।

हम में जो कछू रख्या होता, तो इत केहेते तुमको हम।

सो तो कछुए ना रह्या, अब कहा कहूं खसम॥५०॥

हे धनी! अब मैं आपसे क्या कहूँ? यदि आपने मेरे अन्दर कोई बात पैदा की होती, तो मैं आपसे कुछ कहती। जब आपने मेरे अन्दर कोई बात रखी ही नहीं, तो मैं आपसे क्या कहूँ?

भावार्थ— समर्पण की पराकाष्ठा की स्थिति में पहुँच जाने पर कुछ भी कहना सम्भव नहीं होता। इस चौपाई का कथन उसी भाव में व्यक्त हुआ है। इस चौपाई के पहले चरण में कथित "जो कछू रख्या होता" का तात्पर्य अपने

स्वयं के अस्तित्व के आभास से है। इस संसार में "मैं खुदी" का त्याग हो जाने पर "हक की मैं" आते ही कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

भला जो कछू जान्या सो किया, इन झूठी जिमी में आए।

जब कछू उमेद देओगो, तब कहूंगी आस लगाए॥५१॥

इस झूठे संसार में आने पर मुझे जो कुछ भी उचित प्रतीत हुआ, उसे मैंने किया। जब आप मेरे अन्दर इस बात का दिलासा (भरोसा, सान्त्वना, आशा) दिलायेंगे कि मैं इस फरामोशी से निकलकर आपका दीदार करके बातें करूँगी, तभी इस आशा के साथ मैं आपसे कुछ कहूँगी।

तुम किया होसी हम कारने, पर ए झूठी जिमी निरास।

ऐसा दिल उपजे पीछे, क्यों ले मुरदा स्वांस॥५२॥

यह तो पूर्ण रूप से सत्य है कि आपने यह खेल हमारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये किया होगा, लेकिन यह झूठा जगत् निराशाओं से भरा हुआ है। दिल में वास्तविकता का बोध हो जाने पर भी यह कितने आश्चर्य कि बात है कि यह झूठा शरीर साँसे ले रहा है? इसे तो इस संसार में रहना ही नहीं चाहिए।

भावार्थ- इस संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। यौवन, पद, और धन भी स्थिर रूप से नहीं रहते। वियोग, रोग, भूख-प्यास, जन्म, और मरण का भयानक कष्ट जीवन में निराशा ही पैदा करता है। इस संसार की यथार्थता का बोध होने पर विवेकवान् लोग इसके मोह-जाल में नहीं फँसते और प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम में ही अपनी उम्र

पूरी कर लेते हैं। उनके बिना इस संसार में रहना, उन्हें किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं होता है।

एक आह स्वांस क्यों ना उड़े, सो भी हुआ हाथ धनी।

बात कही सो भी एक है, जो कहूं इनथें कोट गुनी॥५३॥

प्रियतम के विरह की एक ही आह में यह शरीर छूट सकता है, किन्तु ऐसा होना भी धनी के हुक्म से ही सम्भव है। यदि मैं करोड़ों बार भी आपसे कुछ कहूँ, तो यही एक बात कहूँगी कि सब कुछ आपके हुक्म (इच्छा) से ही है, उसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।

महामत कहे मैं सरमिंदी, सब अवसर गई भूल।

ऐसी इन जुदागी मिने, क्यों कहूं करो सनकूल॥५४॥

श्री महामति जी कहती हैं कि हे धाम धनी ! सभी

अवसरों पर मैं आपको रिझाना भूल गयी। इस बात से मैं बहुत अधिक लज्जित हूँ। ऐसी अवस्था में मैं आपसे कह नहीं पा रही हूँ कि इस वियोग की स्थिति में आप मुझे दीदार देकर आनन्दित कीजिए।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥५४॥

मैं खुदी काढ़े का इलाज

मैं (खुदी) का तात्पर्य उस अहम् से है, जो अपने आत्म-स्वरूप को छोड़कर शरीर और अन्तःकरण पर केन्द्रित होता है। जिस प्रकार मिट्टी के ऊपर पड़ा हुआ बीज अंकुरित नहीं हो सकता, उसी प्रकार ज्ञान दृष्टि से अपने भौतिक स्वरूप एवं भौतिक उपलब्धियों के अस्तित्व की समाप्ति हुए बिना किसी को भी निज स्वरूप का बोध नहीं हो सकता। प्रियतम के दीदार या खिल्वत में प्रवेश करने के लिये मैं (अहम्) के अस्तित्व को समाप्त करना (भूलना) अनिवार्य है। इन चार प्रकरणों (२-५ तक) में मैं (खुदी) की विवेचना की गयी है और उसके परित्याग का मार्ग बताया गया है।

हम लिए कौल खुदाए के, हक के जो परवान।

लई कई किताबें साहेदियां, कई हदीसैं फुरमान॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हमने धनी के द्वारा कहे गये कुरआन के सत्य वचनों को आत्मसात् किया। इसके अतिरिक्त कई हदीसों तथा कई अन्य पुस्तकों की भी साक्षियों को ग्रहण किया।

भावार्थ— कुरआन, हदीसों, शास्त्रों, तथा सन्तों की वाणियों में अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के धाम , स्वरूप, तथा लीला सम्बन्धी साक्षियाँ हैं। इन ग्रन्थों में २८वें कलियुग में प्रकट होने वाले श्री विजयाभिनन्द बुद्ध स्वरूप (आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां) की भी पहचान दी गयी है। इस प्रकरण की पहली और दूसरी चौपाई में साक्षी के रूप में यही भाव दर्शाया गया है।

कई साखें सास्त्रन की, कई साखें साधों की बान।

ए ले ले रूह को दृढ़ करी, आखिर वसीयत नामें निदान॥२॥

मैंने शास्त्रों एवं साधु-सन्तों की बहुत सी साक्षियों को लेकर अपनी आत्मा में इस बात की दृढ़ता दिलायी कि प्रियतम अक्षरातीत तो तुम्हारे ही धाम हृदय में विराजमान होकर लीला करने वाले हैं। मक्का-मदीना से आने वाले आखिरी वसीयतनामे ने तो शक की कोई गुंजाइश ही नहीं रहने दी।

भावार्थ- यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी को भविष्य की सभी मुख्य बातें बता ही दी थीं तथा हब्शे में उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन भी हो गया था , लेकिन धर्मग्रन्थों की साक्षियाँ मिल जाने से सामान्य जनता में भी श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की स्पष्ट पहचान करायी जा सकती थी, इसलिये धर्मग्रन्थों की

साक्षी होनी आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त हब्बे में घटित होने वाली घटनाओं की धर्मग्रन्थों से साक्षी मिल जाने पर बहुत अधिक मानसिक दृढ़ता आ गयी कि धनी ने तो मेरे ही तन से ब्रह्मलीला करने का बहुत पहले से ही निर्णय कर रखा था। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

जाहेर बाहेर बातून, अंदर अन्तर तुम।

कहूं जरे जेती जाएगा, नहीं खाली बिना खसम॥३॥

हे धनी! इस सृष्टि में दृष्टिगोचर सभी पदार्थों तथा उनके कारण रूप अदृश्य पदार्थों में भी सर्वत्र आपकी ही सत्ता है। इस सम्पूर्ण सृष्टि के बाहर (निराकार मण्डल) तथा इसके अन्दर सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों में भी आपकी ही सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। प्रकृति की इस सृष्टि से परे

बेहद तथा परमधाम में भी सर्वत्र आपकी ही महिमा की लीला देखने में आ रही है। मुझे तो ऐसा लगता है कि कोई कहीं भी चला जाये, एक कण (अणु-परमाणु) भी आपकी सत्ता के बिना नहीं है।

दूसरे शब्दों में ऐसा भी कहा जा सकता है कि हे प्रियतम! आप जाहेरी रूप में परमधाम से बाहर इस खेल में आये हैं तथा बातिनी रूप में हमारे शाहरग से भी अधिक नजदीक हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उससे भी परे हमारी परात्म के अन्दर भी आप ही विराजमान हैं। इस प्रकार मैं यही देखती हूँ कि चाहे परमधाम हो या यहाँ, सब जगह आप ही (मूल स्वरूप से और आवेश स्वरूप से) हैं।

भावार्थ- यद्यपि प्रथम पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है कि हे धाम धनी! आप परमधाम के दृश्यमान लीला

रूप पदार्थों में प्रत्यक्ष रूप से तथा उनके अन्दर गुह्य (बातिनी) रूप से विराजमान हैं तथा परात्म के रूप में भी आप ही हैं, किन्तु तीसरे चरण से यह विदित होता है कि यह प्रसंग सर्वत्र (क्षर से परमधाम तक) के लिये है। अगली चौपाई से भी यही भाव स्पष्ट होता है।

सब ठौरों सुध तुमको, कछू छूट न तुम इलम।

ए सक मेट बेसक तुम करी, कछू न बिना हुकम खसम॥४॥

मेरे प्रियतम! आपको हर जगह की जानकारी है। आपकी ज्ञानदृष्टि से कुछ भी बाकी नहीं है अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं। पहले मुझे आपकी सर्वज्ञता के सम्बन्ध में संशय रहता था, लेकिन आपने मेरे संशय को पूर्णतया समाप्त कर दिया और इस बात में दृढ़ता करा दी कि आपके लिये कुछ भी अज्ञात (अन्जाना) नहीं है। आपके

हुक्म के बिना तो कुछ होता ही नहीं है।

द्रष्टव्य- इस चौपाई के दूसरे चरण में प्रयुक्त "तुम इलम" का भाव तारतम वाणी से नहीं है, क्योंकि तारतम वाणी (श्रीमुखवाणी) में केवल आध्यात्मिक ज्ञान है। अन्य भौतिक विषयों- रसायन, भौतिक, गणित आदि का पूर्ण ज्ञान इसमें नहीं है, जबकि सर्वज्ञ अक्षरातीत के लिये कुछ भी अज्ञेय (अज्ञात) नहीं है। इस प्रकरण की तीसरी और चौथी चौपाई का यही आशय है कि प्रियतम अक्षरातीत की सत्ता का अस्तित्व सर्वत्र है और वे सब कुछ जानते हैं। लोहे की सात दीवारों के भीतर होने वाली गोपनीय से गोपनीय बात भी उनसे छिपी हुई नहीं है।

जरा न हुकम सुध बिना, सबन के दम दम।

साइत ना खाली पाइए, बिना हुकम खसम॥५॥

सभी प्राणियों के अन्दर जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह सब कुछ आप के हुक्म को पता (सुध) है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक पल भी ऐसा नहीं है, जिसमें आपके आदेश (हुक्म) की लीला न हो रही हो।

एते दिन मैं यों जान्या, मैं बैठी नाहीं के माहें।

तो इत का संदेसा, हक को पोहोंचत नाहें॥६॥

आज दिन तक मैं यही जानती थी कि मैं तो इस नश्वर जगत में बैठी हूँ और ऐसे संसार में रहकर मेरे हृदय की पुकार आप तक नहीं पहुँच पाती है।

भावार्थ- धर्मग्रन्थों के कथनानुसार मन और वाणी की गति परमधाम तक नहीं है। इसी कारण श्री इन्द्रावती जी

के मन में भी यही धारणा थी, किन्तु अखण्ड निस्वत के कारण सब कुछ सम्भव है।

सो तेहेकीक तुम कर दिया, जो खेल नूर से उपजत।

इलम खुदाई हुकम बिना, कहूं खाली ना पाइए कित॥७॥

किन्तु आपने मेरे मन में इस बात की दृढ़ता करा दी कि अक्षर ब्रह्म के मन से जो स्वप्न में ब्रह्माण्ड बनते हैं, उन सबमें आपके ही ज्ञान के प्रकाश और हुक्म की लीला है। आपके आदेश और ज्ञान के बिना तो सृष्टि में कुछ भी सम्भव नहीं है।

भावार्थ- सभी ब्रह्माण्डों में अक्षर ब्रह्म की ज्ञानधारा वेद के रूप में प्रकट होती है। जिब्रील द्वारा भी अखण्ड की सुध दी जाती है। इसे ही खुदाई इल्म के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यहाँ "खुदाई इलम" का

तात्पर्य तारतम वाणी से नहीं है , क्योंकि यह ब्रह्मवाणी इस जागनी ब्रह्माण्ड से पूर्व न तो प्रकट हुई और न खेल खत्म होने के पश्चात् कभी किसी ब्रह्माण्ड में प्रकट होगी।

सांच झूठ बड़ी तफावत, ज्यों नहीं और है।

सो हुकमें खेल बनाए के, सत गिरो को देखावें॥८॥

जितना अन्तर "नहीं" और "है" में है, उतना ही अन्तर झूठ और सत्य में है। अर्थात् झूठ वह है, जिसका कोई शाश्वत अस्तित्व नहीं है, वह मिट जाने वाला है। इसके विपरीत सत्य हमेशा ही रहने वाला है। इस प्रकार धनी के हुक्म ने इस मिट जाने वाले झूठे खेल को बनाया है और उसे अखण्ड स्वरूप वाली ब्रह्मसृष्टियों को दिखाया है।

बनाए कबूतर खेल के, ज्यों देखावे दुनियां को।

यों देखावें सत गिरो को, ए जो पैदा कुंन सों॥९॥

हे धाम धनी! जिस तरह से बाजीगर कबूतरों की रचना करके संसार के लोगों को तमाशा दिखाया करता है, उसी तरह आपने अपने हुक्म से "कुन्न" कहकर माया के जीवों को उत्पन्न किया है और परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को उनका तमाशा (झूठी लीला) दिखा रहे हैं।

भावार्थ- कुरआन के अनुसार "कुन्न" का कथन खुदा का है, जबकि भागवत आदि पौराणिक धर्मग्रन्थों के कथनानुसार "एकोऽहम् बहुस्याम्" का कथन आदिनारायण (महाविष्णु) का है। इनके कथन में सामञ्जस्य कैसे स्थापित किया जाये?

वस्तुतः अक्षर और अक्षरातीत (नूरजलाल और नूरजमाल) को कुरआन में अल्लाह के रूप में वर्णित किया

जाता है। नूरजमाल के दिल में ही "कुन्न" की बात आती है, जो हुक्म का स्वरूप होने से नूरजलाल से जोड़ी जाती है। नूरजलाल के मन का ही स्वप्न स्वरूप आदिनारायण है, जिनके संकल्प "एकोऽहम् बहुस्याम्" से सृष्टि की रचना होती है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है कि "अर्स से आवे हुकम, तिन हुकमें चले कई हुकम।"

कुरआन की तरह ही ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में अक्षर ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा गया है – "सोऽकामयत् बहुस्याम् प्रजायेति।" इस प्रकार वेद और कुरआन के कथनों में समानता दृष्टिगोचर होती है। अक्षरातीत की लीला मात्र प्रेम और आनन्द की ही होती है। इस सृष्टि में जब प्रेम और आनन्द नगण्य है, तो स्पष्ट है कि "कुन्न" या "एकोऽहम् बहुस्याम्" का कथन आदिनारायण का है,

किन्तु इसके मूल में अक्षर और अक्षरातीत का आदेश (हुक्म) है।

हम बैठे वतन कदम तले, तहां बैठे खेल देखत।

तित ख्वाब से संदेसा, तुमें क्यों ना पोहोंचत॥१०॥

हे धनी! हम तो परमधाम के मूल मिलावा में आपके चरणों में ही बैठे हुए हैं और वहाँ से इस खेल को देख रहे हैं। अब प्रश्न यह होता है कि जब हुक्म से हमारी सुरता इस खेल में आ सकती है, तो यहाँ से हमारा सन्देश आपके पास मूल मिलावा में क्यों नहीं पहुँच सकता?

ए इलम हकें दिया, किया नाहीं थें मुकरर हक।

रूह अल्ला महंमद मेहेर थें, कहूं जरा न रही सक॥११॥

मेरे प्रियतम! आपने ही मुझे अपना ज्ञान दिया, जिससे

मैं इस झूठे संसार से परे आपके स्वरूप की पहचान कर सकी। अब मैं श्री श्यामा जी की कृपा से उस ब्रह्मवाणी को कह रही हूँ, जिसमें नाममात्र के लिये भी कहीं संशय नहीं है।

भावार्थ— इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "महंमद" से तात्पर्य बशरी सूरत रसूल मुहम्मद से नहीं है, बल्कि यहाँ "महंमद" शब्द श्यामा जी के लिये प्रयुक्त हुआ है। सनन्ध ग्रन्थ में कहा गया है—

तारीफ महंमद मेहेंदी की, ऐसी सुनी न कोई क्याहें।

कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्माण्डों नाहें।।

यहाँ जिस प्रकार "महंमद" शब्द महदी की शोभा में प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार इस ११वीं चौपाई में "महंमद" शब्द रुहअल्लाह (श्यामा जी) के लिये प्रयोग किया गया है। आनन्द की वहदत की लीला में श्यामा जी

का ही प्रसंग होगा, सत् अंग अक्षर ब्रह्म का नहीं।

हम बैठे लैलत कदर में, संदेसा पोहोंचावें तुम।

इलम सूरत हमारी रूह की, पोहोंची चाहिए खसम॥१२॥

हे धनी! हम तो इस मोह की रात्रि के ब्रह्माण्ड में बैठे हुए हैं और यहाँ से अपना सन्देश आप तक पहुँचाना चाहते हैं। हमारी रूह की सुरता किस स्थिति में है ? इसका ज्ञान तो आप तक पहुँचना ही चाहिए।

भावार्थ- सामान्य रूप से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकरण की चौपाई १० एवं चौपाई १२ के कथनों में विरोधाभास है, क्योंकि चौपाई १० में कहा गया है कि "हम बैठे कदम तले" तथा चौपाई १२ में कहा गया है कि "हम बैठे लैलत कदर में।"

यथार्थता यह है कि अक्षरातीत के कथनों में

विरोधाभास कदापि नहीं हो सकता , केवल उचित सामंजस्य की आवश्यकता होती है। परमधाम में हमारे मूल तन (परआत्म) विराजमान हैं, जबकि इस मायावी जगत में परआत्म की सुरता के द्वारा धारण किये हुए तन हैं, जिन्हें आत्मा का तन कहा गया है। दोनों ही तन धनी के हुक्म द्वारा लीला को देख रहे हैं। इसे ही कहा गया है- "ए दोऊ तन तले कदम के, आत्म परआत्म।" परात्म माया की लीला को देख रही है तथा माया में भटकती हुई आत्मा धनी के ज्ञान के प्रकाश में चितवनि द्वारा जाग्रत होकर सम्पूर्ण परमधाम तथा युगल स्वरूप को देखती है।

ए तेहेकीक तुम कर दिया, मैं तो बैठी बीच नाहें।

इन विध खेल खेलावत, हक नाहीं के माहें॥१३॥

हे धनी! आपने मेरे मन में इस बात का निश्चय करा दिया है कि मैं इस झूठे संसार में उलझी हुई हूँ। इस प्रकार आप मुझे माया में भेजकर मुझसे झूठा खेल खेलवा रहे हैं।

**अब धनी जानो त्यों करो, पर इत कहूं कहूं रूह तरसत।
कोई कोई चाह जो उठत है, सो हकै उपजावत॥१४॥**

अब आपको जो भी अच्छा लगे, वही कीजिए। यद्यपि मेरी आत्मा कभी-कभी आपके दीदार के लिये तरसती है, किन्तु यह तो निश्चित ही है कि हमारे मन में आपको पाने की जो भी चाहना उठती है, वह आप ही उत्पन्न करते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में तरसने का मूल भाव है — आत्मा के अन्दर प्रियतम के दीदार की तीव्र भावना

(प्यास) का जाग्रत होना।

मैं तो बीच नहीं के, मोहे खेल देखाया जड़ मूल।

ताथें जानों त्यों करो, सरमिंदी या सनकूल॥१५॥

मेरे प्रियतम! मेरी आत्मा तो अब इस नश्वर संसार में आकर इस खेल को देख रही है। आपने मुझे यह खेल भी मूल (कारण) से ही दिखाया है। अब आपको जो भी उचित लगे, वही कीजिए। मुझे माया में फँसाकर या तो शर्मिन्दा कीजिए या अपने प्रेम में डुबोकर आनन्दित कीजिए। यह सब कुछ आपके ऊपर ही निर्भर है।

भावार्थ— इस चौपाई में जड़ और मूल शब्द समानार्थक हैं। इनका तात्पर्य "कारण" से है। खेल का मूल कारण इश्क-रब्द है, जिसके अन्तर्गत परमधाम की बादशाही (बड़ाई, महिमा) तथा वहदत के इश्क का निर्णय करने

के लिये यह खेल बनाना पड़ा। मूल से खेल दिखाने का यही आशय है।

अब क्या करूँ किन सों कहूँ, कोई रह्या न केहेवे ठौर।
 ए भी कहावत तुमहीं, कोई नाहीं तुम बिना और॥१६॥
 मेरे धाम धनी! अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ?
 अपने हृदय की व्यथा किससे कहूँ? आपके अतिरिक्त तो
 अन्य कोई है ही नहीं, जिससे मैं अपने दिल की बातें कह
 भी सकूँ। मेरे मुख से इस तरह की बातें भी आप ही
 कहलवा रहे हैं। यह तो पूर्ण रूप से निश्चित है कि आपके
 अतिरिक्त हमारा और कोई भी नहीं है।

बिन फुरमाए हक के, दिल जरा न उपजत।
 तो क्यों दिल ऐसा आवत, जो हक मांग्या ना देवत॥१७॥

यह भी सत्य है कि जब तक आप हमारे दिल में कोई बात उत्पन्न न करें, तब तक वह बात हमारे दिल में स्वतः आ ही नहीं सकती, किन्तु मेरे दिल में यह संशय पैदा होता है कि जब आप ही हमारे दिल में इच्छा पैदा करते हैं तो उसे पूर्ण भी क्यों नहीं करते?

हक उपजावत देवे को, सो हकै देवनहार।

मैं दोष हक का देख के, क्यों होत गुन्हेगार॥१८॥

धाम धनी हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये ही हमारे दिल में इच्छा पैदा करते हैं। एकमात्र वे ही सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। मेरे मन में श्री राज जी के द्वारा इच्छाओं के पूर्ण न होने का जो संशय पैदा होता है, उससे मैं अपने प्रियतम के प्रति दोष देखने का गुनाह (अपराध) ले लेती हूँ।

उपजे उपजावे सब हक, हक देवें दिलावें।

मैं जो करत गुन्हेगारी, सो बीच काहे को आवे॥१९॥

हमारे मन में जो भी इच्छा उपजती है, उसे उपजाने वाले धाम धनी ही हैं। स्वयं या किसी अन्य के माध्यम से पूर्ण कराने वाले भी वे ही हैं। ऐसी स्थिति में मैं श्री राज जी के ऊपर दोषारोपण करके अपने ऊपर अपराधों का बोझ ढो रही हूँ। मेरे और धनी के अखण्ड सम्बन्ध में तो इस तरह की बात होनी ही नहीं चाहिए।

भावार्थ- बारात के पीछे-पीछे जाते समय श्री देवचन्द्र जी के मन में यह बात आ गई कि राह में कहीं डाकू न मिल जाये। धाम धनी उन्हें उसी वेश में दर्शन देना चाहते थे, इसलिये उन्होंने उनके मन में इस प्रकार की इच्छा पैदा की और स्वयं उनके सामने पठान सिपाही (डाकू) के वेश में प्रकट हो गये।

इसी प्रकार सुन्दरसाथ की सेवा का भार उठाने के लिये श्री राज जी ने ही श्री राजाराम और झांझन भाई के मन में भाव भरा तथा उनके माध्यम से पूर्ण कराया। महाराजा छत्रसाल जी के साथ भी यही स्थिति रही। इसे ही कहा गया है "हक देवे दिलावे"। धनी के प्रेम में तो "मैं" का अस्तित्व होना ही नहीं चाहिए, जो यह समीक्षा करे कि धनी मेरी इच्छा पूर्ण कर रहे हैं अथवा नहीं। जब अनन्य प्रेम में केवल "तू ही तू" है, तो यह "मैं" कहाँ से आ जाती है, जो आत्मा के ऊपर गुनाहों का बोझ लाद देती है।

हकें पोहोंचाई इन मजलें, और दोष हक को देवत।

एही मैं मारी चाहिए, जो बीच करे हरकत॥२०॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपने मुझे इस मन्जिल पर पहुँचा दिया

है कि अब मेरी आत्मा केवल आपके प्रेम में ही डूबी रहना चाहती है, लेकिन कितने आश्चर्य की बात है कि मेरी तरफ से आपको इच्छा पूरी न करने का दोषी भी बनाया जा रहा है। इस प्रकार का उल्टा व्यवहार (हरकत) "मैं खुदी" के कारण ही हो रहा है, इसलिये इसे समाप्त कर देना आवश्यक है।

भावार्थ- सागर ग्रन्थ में निस्बत के प्रकरण में कहा गया है कि "ए निसबत इस्क सागर" अर्थात् निस्बत की स्वरूपा रुहें इश्क का सागर हैं। आत्मा उस परात्म का अक्स (प्रतिबिम्ब) है। ऐसी स्थिति में आत्मा का अपने मूल रूप में निर्विकार एवं प्रेम से परिपूर्ण होना स्वाभाविक है, किन्तु जिस प्रकार कीचड़ में लिपटा हुआ हीरा अपने मूल स्वरूप से भिन्न प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार आत्मा भी जीव एवं माया के संयोग से मैं (खुदी) के

बन्धन में फँस जाती है, जो उसके मूल स्वरूप से भिन्न की अवस्था कही जायेगी।

मैं तो बीच नहीं मिने, सो हक को पोहोंचत नाहें।

सो बीच दिल के बैठ के, गुनाह देत रूह के तांए॥२१॥

इस मैं (खुदी) का बन्धन इस नश्वर जगत में ही हुआ है। इसके कारण ही मेरा अपने प्रियतम से मिलन नहीं हो पा रहा है। यह मैं (खुदी) ही दिल के अन्दर बैठकर आत्मा को गुनाहगार बना देती है।

भावार्थ- यह जिज्ञासा होती है कि "मैं" (खुदी) क्या है? वस्तुतः जिस प्रकार कोयले को जलाने पर अग्नि की लपटों के साथ-साथ धुँआ भी निकलता है, उसी प्रकार चेतना प्रकृति के संयोग से अपने निजस्वरूप के साथ कुछ विकृत भावों को भी जोड़ लेती है, जिसे मैं (खुदी)

कहते हैं। इसका अस्तित्व उस धुँए की तरह होता है, जिसके समाप्त होने पर ही अग्नि की शुद्ध लपटें निकलती हैं। आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में तो निर्विकार प्रेम के भावों में डूबी ही रहती है, किन्तु इस खेल में वह शरीर, संसार, तथा जीव के संयोग से अपने ऐसे अस्तित्व की कल्पना कर लेती है, जो धुँए की तरह अज्ञानजनित होता है। इसे ही मैं (खुदी) की संज्ञा दी जाती है।

मैं मैं करत मरत नहीं, और हक को लगावे दोस।

अब मेहेर हक ऐसी करें, जो इन मैं थें होऊं बेहोस॥२२॥

केवल कथन मात्र से ही मैं (खुदी) समाप्त नहीं होती। यह तो मैं (खुदी) ही है, जो धाम धनी में दोष ढूँढा करती है। जब धाम धनी कृपा करेंगे, तो ही मैं "मैं" के बन्धन से अलग हो सकूँगी।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी तो "मैं" के बन्धन से सर्वथा अलग हैं। इस चौपाई में स्वयं को बन्धन में कहना सुन्दरसाथ के लिये है।

झूठ न भेदे सांच को, सांच अंग सत साबित।

बाहेर उपली अंधेर देखाए के, होए जात असत।।२३।।

आत्मा का निज स्वरूप सत्य होता है, जबकि मैं (खुदी) का बन्धन नश्वर और झूठा होता है। आत्मा के मूल स्वरूप में मैं का बन्धन, आन्तरिक रूप से प्रवेश करके, विकृत नहीं कर पाता। जिस प्रकार हीरे पर लिपटा हुआ कीचड़ हीरे के अन्दर तो प्रवेश नहीं कर पाता, बल्कि उसके ऊपरी भाग पर ही गन्दगी को दर्शाता है, उसी प्रकार माया के संयोग से आत्मा के ऊपर लगने वाला "मैं" का विकार भी मूलतः आत्मा के

अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता, किन्तु कुछ समय के लिये उसके चारों ओर अज्ञानता के अन्धकार का आवरण कर देता है। यह आवरण भी अन्ततः धनी की मेहर से समाप्त हो जाता है।

ए जो फना सब झूठ है, जो ऊपर से देखाया।

सो क्यों भेदे हक को, जो नहीं असत माया॥२४॥

धाम धनी ने हमें माया का जो यह नश्वर संसार दिखाया है, वह झूठा है। इस प्रकार माया का यह झूठा संसार प्रियतम के स्वरूप में एकरूप नहीं हो सकता।

भावार्थ— इस प्रकरण की चौपाई २३-२५ में "भेद" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका भाव है— प्राप्त होना, स्थित होना, या एकरूप हो जाना। इस चौबीसवीं चौपाई में विशेष रूप से यह बात कही गयी है कि इस असत्,

जड़, और दुःखमयी जगत का स्वरूप सच्चिदानन्द परब्रह्म के पूर्णतया विपरीत है। इस प्रकार इन दोनों का मिलन नहीं हो सकता।

सत को सत भेदत है, बीच झूठ के हक।

ए सन्देसा तब पोहोंचहीं, जब रूह निपट होए बेसक॥२५॥

इस शरीर में स्थित आत्मा (सत्य) ही अक्षरातीत (सत्य) को प्राप्त कर पाती है। जब आत्मा को धनी के सम्बन्ध में किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाता, तब अन्तरात्मा की पुकार धनी तक पहुँचती है।

ए सांच सन्देसा हक को, तोलों न पोहोंचत।

गेहेरा जल है मैंय का, आड़ा जो असत॥२६॥

मैं (अहम्) का जल बहुत गहरा है। यह हमारे और धनी

के बीच में उस झूठ के परदे की तरह है, जो प्रियतम का दीदार नहीं होने देता। जब तक इसका अस्तित्व बना रहता है, तब तक हमारी अन्तरात्मा की पुकार धनी तक नहीं पहुँच पाती।

भावार्थ— पच्चीसवीं तथा छब्बीसवीं चौपाई से यह स्पष्ट है कि बेशक होकर मैं (अहम्) का परित्याग किये बिना प्रियतम से मिलन सम्भव ही नहीं है।

सो मैं मैं झूठी दिल पर, जब लग करे कुफर।

सत सन्देशा तौहीद को, तोलों पोहोंचे क्यों कर॥२७॥

इस प्रकार, जब तक यह झूठी "मैं" दिल पर अपना आधिपत्य जमाकर गुनाह करती है, तब तक अन्तरात्मा की पुकार (सन्देश) उस स्वलीला अद्वैत परमधाम तक कैसे पहुँच सकती है।

ए मैं मैं क्यों ए मरत नहीं, और कहावत है मुरदा।

आड़े नूर जमाल के, एही है परदा॥२८॥

यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि इस "मैं" की भावना का अस्तित्व नहीं के बराबर है, फिर भी यह निकलती नहीं। अपनी आत्मा और धनी के बीच यही एकमात्र परदा है, जिसके कारण प्रियतम से मिलन नहीं हो पाता।

भावार्थ— जिस जड़ माया के संयोग से चेतन के अन्दर "मैं" की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस माया का अस्तित्व महाप्रलय के पश्चात् नहीं रहता। फिर भी यह "मैं" इतनी शक्तिशालिनी है कि किसी के अन्दर से यह निकल नहीं पाती। पहली पंक्ति में यही भाव दर्शाया गया है।

ए पट नीके पाइया, जो मैं को उड़ावे कोए।

ए दृढ़ हकें कर दिया, अब जुदा हक से होए॥२९॥

जिसने अपने अन्दर की "मैं" की प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया, एकमात्र उसके विषय में ही यह कहा जा सकता है कि वह "मैं" रूपी परदे की वास्तविकता को अच्छी तरह से जानता है। धाम धनी ने मेरे अन्दर इस बात की दृढ़ता भर दी है कि उनकी मेहर (कृपा) से ही यह "मैं" जा सकती है।

मारा कहा काढ़ा कहा, और कहा हो जुदा।

एही मैं खुदी टले, तब बाकी रह्या खुदा॥३०॥

अपने अन्दर से मैं (अहम्) की भावना को जड़-मूल से नष्ट कर देना तथा उसे निकाल देना अध्यात्म जगत् की बहुत बड़ी उपलब्धि है, किन्तु इस उपलब्धि को भी

कथनी में न आने देना अर्थात् उसे भुला देना सर्वोच्च मन्जिल है। इस प्रकार, जिसके अन्दर से "मैं" (खुदी) समाप्त हो जाती है, निश्चित रूप से उसके धाम हृदय में प्रियतम परब्रह्म का वास होता है।

भावार्थ— यदि कोई व्यक्ति अपने अहम् का परित्याग कर विनम्रता की प्रतिमूर्ति बन चुका है, पत्थर मारने या गालियाँ देने पर भी उसके मन में कोई विकार नहीं पैदा होता, किन्तु इस उपलब्धि को वह सबसे कहता फिरता है तो निश्चित रूप से अन्तर्मन में कहीं न कहीं "मैं" की ग्रन्थि बैठी हुई है। जिसने कथनी की परिधि (सीमा-रेखा) को भी पार कर लिया, अर्थात् अपने मुख से अपनी उपलब्धि को न तो कहता है और न सोचता है, निश्चित रूप से उसके धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत की बैठक होती है।

पेहेले पी तूं सरबत मौत का, कर तेहेकीक मुकरर।

एक जरा जिन सक रखे, पीछे रहो जीवत या मर॥३१॥

हे मेरी आत्मा! तू सबसे पहले मौत के इस मीठे शर्बत को पी, अर्थात् स्वयं के अस्तित्व (मैं) को पूर्णतया समाप्त कर दे। यदि तुम ऐसा कर सकती हो, तो यह बात निश्चित रूप से जान लो कि तुम्हारे धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत अपना आसन अवश्य जमाएंगे, इसमें नाम मात्र के लिये भी संशय मत रखो। एक बार उस अवस्था में आने पर तो तुम्हारे लिये जीवित रहते ही मृत्यु जैसी स्थिति बन जायेगी, अर्थात् तुम्हारे लिये इस शरीर और संसार का अस्तित्व नहीं रह जायेगा। यही अध्यात्म का चरम लक्ष्य है।

एही पट आड़े तेरे, और जरा भी नाहें।

तो सुख जीवत अर्स का, लेवे ख्वाब के माहें॥३२॥

तुम्हारे और धनी के बीच मात्र यही एक परदा है। इसके सिवाय अन्य कोई भी बाधा नहीं है। यदि तुमने अपने अन्दर से "मैं" का अस्तित्व समाप्त कर दिया, तो इस झूठे संसार में ही तुझे इसी शरीर से परमधाम के सुखों की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगेगी।

ए सुन्या सीख्या पढ़या, कह्या विचारया विवेक।

अब जो इस्क लेत है, सो भी और उड़ाए पावने एक॥३३॥

हे मेरे धाम धनी! "मैं" के परित्याग सम्बन्धी इन अनमोल वचनों को मैंने अपने अन्तःकरण से सुना है, सीखा है, और जाना (पढ़ा) भी है। इस पर विवेकपूर्वक विचार किया है तथा दूसरों से कहा भी है। अब मेरी

आत्मा प्रेम की जिस डगर पर चल रही है, उसका उद्देश्य सम्पूर्ण संसार को छोड़कर एकमात्र आपको पाना ही है।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ३१-३४ में सुन्दरसाथ को सिखापन दिया गया है। श्री महामति जी की आत्मा तो उस मन्जिल पर पहले ही पहुँच चुकी हैं। इस तैंतीसवीं चौपाई में जो सुनने, सीखने, पढ़ने, या विचारने की बात कही गयी है, वह सुन्दरसाथ के लिये है। ये बातें तो श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर स्वयं अक्षरातीत ही कह रहे हैं।

तो सोहोबत तेरी सत हुई, सांचा तूं मोमिन।

सब बड़ाइयां तुझ को, जो पोहोंचे मजल इन॥३४॥

हे मेरी आत्मा! यदि तू इस मन्जिल को प्राप्त कर लेती है, तो धनी के प्रति तुम्हारा प्रेम सत्य सिद्ध हो जायेगा

और तुम वास्तविक ब्रह्मसृष्टि के रूप में शोभा पाओगी।
तुम्हें हर तरह की बड़ाई (महिमा) भी प्राप्त होगी।

भावार्थ- इस चौपाई में "सच्चा मोमिन" कहे जाने का भाव यह है कि धनी के प्रति अपने प्रेम की कसौटी पर खरा सिद्ध होना। सुन्दरसाथ स्वयं को ब्रह्मसृष्टि तो कहते हैं, किन्तु उन्हें धनी की अपेक्षा संसार से अधिक लगाव होता है। ऐसे सुन्दरसाथ इस चौपाई के दूसरे चरण में कहे जाने वाले कथन "सांचा तू मोमिन" की शोभा को नहीं प्राप्त हो सकते।

महामत कहे ए मोमिनो, सुनो मेरे वतनी यार।

खसम करावे कुरबानियां, आओ मैं मारे की लार॥३५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! आप मेरे परमधाम के प्रेम सम्बन्धी हैं। मेरी एक अनमोल बात

सुनिये। धाम धनी आपसे अपनी "मैं" का पूर्ण रूप से त्याग (कुर्बानी) कराना चाहते हैं। इसलिए आप सभी इस "मैं" को पूर्णतः त्याग देने की राह पर अपने कदम बढ़ाइये।

भावार्थ— स्वलीला अद्वैत परमधाम के अनन्य प्रेम को यार या दोस्त की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। इस चौपाई की ही तरह अन्य जगहों पर भी "यार" शब्द का सम्बोधन है, जैसे— "जो पीछे दोस्ती करो, तो भी मेरे सच्चे यार।" इस संसार में मित्र (यार, दोस्त) के सम्बन्धों में किसी तरह की भेदभाव की रेखा नहीं होती, इसलिए वहदत के अनन्त सागर को "यार" शब्द से एक बूँद के रूप में व्यक्त करने का प्रयास भर है, अन्यथा परमधाम के अनन्य प्रेम में इस संसार का "यार" शब्द उचित नहीं है।

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥८९॥

इस प्रकरण में भी "मैं" (खुदी) के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

मैं बिन मैं मरे नहीं, मैं सों मारना मैं।

किन विध मैं को मारिए, या विध हुई इनसे॥१॥

अब यह प्रश्न होता है कि किस प्रकार से इस "मैं" को समाप्त किया जाये? तारतम ज्ञान के प्रकाश में ही यह स्पष्ट होता है कि इस "मैं" की यथार्थता क्या है। प्रियतम की "मैं" आए बिना इस संसार की "मैं" नहीं जा सकती। धनी की "मैं" से ही संसार की "मैं" को मिटाया जा सकता है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा होती है कि हक की मैं क्या है?

वस्तुतः अपने शरीर की विशिष्टताओं को देखकर

चैतन्य जीव उसे ही अपना स्वरूप समझने लगता है, जैसे- काला, गोरा, लम्बा, बुद्धिमान इत्यादि। संसार रूपी वायु के संयोग से उसके अज्ञान की अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो जाती है। वह अपनी विद्वता, सुन्दरता, निर्मलता, प्रतिष्ठा आदि में अहं की भावना करने लगता है तथा उसके बाहर नहीं निकल पाता।

हक की "मैं" इसके पूर्णतया विपरीत है। परात्म धनी का ही तन है। जिस प्रकार सच्चिदानन्द परब्रह्म पूर्णतया निर्विकार हैं तथा प्रेम और आनन्द के स्वरूप हैं, उसी प्रकार परात्म भी है। आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है। जिस समय आत्मा के अन्तःकरण में इस प्रकार का भाव आये कि मेरा निज स्वरूप तो परात्म है और धनी का ही है, मेरे और उनमें कोई भी अन्तर नहीं है, तो उसे ही हक की "मैं" कहते हैं। इस अवस्था में इस पञ्चभौतिक

शरीर, जीव, और संसार से कोई भी आन्तरिक सम्बन्ध नहीं रह जाता।

और भी हकीकत मैं की, जिन विध मरे जो ए।

सो ए खसम बतावत, बल अपने इलम के॥२॥

"मैं" की वास्तविकता और भी विस्तृत है। जिस तरह यह "मैं" समाप्त हो सके, उसे धाम धनी अपनी अमृतमयी तारतम वाणी से बता रहे हैं।

अब मैं मरत है इन विध, और न कोई उपाए।

खुदाई इलम सों मारिए, जो हकें दिया बताए॥३॥

हे सुन्दरसाथ जी! धाम धनी ने जो हमें अपना अलौकिक तारतम ज्ञान दिया है, उसके प्रकाश में ही इस "मैं" (खुदी) को समाप्त किया जा सकता है। इसके

अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

जो मैं मारत अव्वल, तो कौन सुख लेता ए।

है नाहीं के फरेब में, सुख नूर पार का जे॥४॥

हे धाम धनी! मेरी आत्मा तो इस नश्वर संसार के जाल में फँसी हुई है। यदि मैं परात्म स्वरूपा अपनी आत्मा की "मैं" को शुरू में ही समाप्त कर देती, तो अक्षर से भी परे परमधाम के इन अखण्ड सुखों का रसास्वादन कौन करता?

भावार्थ— इस चौपाई का आशय यह है कि यदि शरीर आधारित जीव की "मैं" की तरह, आत्मा के भी अस्तित्व को भुला दिया जाये, तो परमधाम के आनन्द का भोक्ता कौन होगा? संसार की "मैं" को छोड़कर स्वयं को धनी की अंगना तो मानना ही पड़ेगा।

मैं दुनी की थी सो मर गई, इन मैं को मारया मैं।

अब ए मैं कैसे मरे, जो आई है खसम से॥५॥

मेरे प्राणवल्लभ! मेरे अन्दर जो संसार की "मैं" बैठी थी, वह आपकी मेहर से पूर्णतया समाप्त हो गयी है। संसार की इस "मैं" को मैंने आपकी "मैं" से मार डाला। जब आपने मेरी आत्मा में अपनी "मैं" ही स्थापित कर दी है, तो भला उसे कैसे हटाया जा सकता है?

मैं चल आई कदमों, ऐसा दिया बल तुम।

इन विध मैं मरत है, ना कछू बिना खसम॥६॥

आपने मुझे ऐसा आत्मिक बल दिया कि मैं इस संसार को छोड़कर आपके चरणों में आ गयी। इस प्रकार ही संसार की "मैं" समाप्त होती है। हे धनी! आपके बिना तो यहाँ कुछ है ही नहीं।

जो मैं मारत आपको, तो आवत कौन कदम।

मैं ना होने में कछू ना रहया, किया कराया खसम॥७॥

यदि मैं शरीर और संसार से सम्बन्धित जीव की "मैं" के साथ-साथ आत्मा की "मैं" को भी समाप्त कर देती, तो आपके चरणों में भला कौन आता? संसार की "मैं" के समाप्त हो जाने पर अब मेरे लिये इस संसार में कुछ भी सार तत्व नहीं रह गया है। यह सब कुछ करने-कराने वाले आप ही हैं।

भावार्थ- यहाँ पर यह जिज्ञासा होती है कि आत्मा की "मैं" और जीव की "मैं" में क्या अन्तर होता है? प्रकाश हिन्दुस्तानी १६/१ में कहा गया है- "मेरे जीव सोहागी रे, जिन छोड़े पिऊ कदम।" जब यहाँ जीव स्वयं को अक्षरातीत की अर्धांगिनी मानकर रिझा रहा है, तो उसकी "मैं" त्याज्य क्यों है?

वस्तुतः इस सातवीं चौपाई में उस जीव की "मैं" को छोड़ने की बात कही गयी है, जो इस मायावी शरीर और संसार से सम्बन्धित होती है। यदि जीव तारतम ज्ञान के प्रकाश में अँगना भाव से धनी को रिझाता है, तो उसे छोड़ने का प्रश्न ही नहीं है। चेतन तत्त्व चाहे आदिनारायण का हो, या बेहद का, या परमधाम का, उसे संसार से सम्बन्ध छोड़कर निर्विकार भाव से धनी को रिझाना होगा। यही संसार की "मैं" छोड़ना है। माया का जीव भी यदि शरीर, संसार, तथा आदिनारायण से नाता तोड़कर, तारतम ज्ञान के प्रकाश में धनी के प्रेम में डूब जाता है, तो उसकी "मैं" को संसार की "मैं" नहीं कह सकते, भले ही उसकी परात्म नहीं है।

ना मैं अक्वल ना आखिर, मैं नाहीं बीच में।

बन्या बनाया आप ही, सो सब तुम हीं से॥८॥

हे धनी! मैं तो यथार्थ में न तो शुरू में थी , न बीच में थी, और न आखिर में ही हूँ। आपने ही यह सारा खेल बनाया है। आप ही सब कुछ करने वाले हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में अक्वल, मध्य, और आखिर की बात आयी है, जिसका तात्पर्य ब्रज, रास, और जागनी ब्रह्माण्ड से है। परमधाम अनादि है, इसलिये वहाँ की लीला को आदि (अक्वल) शब्द से सम्बोधित नहीं किया जा सकता। इस खेल के तीन भागों ब्रज, रास, और जागनी को ही आदि, मध्य, और अन्त कहकर वर्णित किया गया है।

इन तीनों ब्रह्माण्डों में स्वयं के अस्तित्व के न होने का भाव समर्पण की पराकाष्ठा है, जिसमें "मैं" (खुदी) होती

ही नहीं। सबको विदित ही है कि इन तीनों ब्रह्माण्डों में श्री इन्द्रावती जी ने लीला में भाग लिया है। उनके अस्तित्व को नकारना सत्य को झुठलाना है। प्रेम और समर्पण की भावना में ही यह बात कही गयी है, जो अगली नौवीं चौपाई से स्पष्ट हो जाती है।

मैं तो तुमारी कीयल, अव्वल बीच और हाल।

तुम बिना जो कछू देखत, सो सब मैं आग की झाल॥९॥

मेरे प्रियतम! मैं ब्रज, रास, और जागनी ब्रह्माण्ड में एकमात्र आपकी ही होकर रही हूँ। आपके बिना तो मुझे इस संसार में प्रत्येक वस्तु अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी प्रतीत होती है।

जब लग मैं ना समझी, तब लग थी मैं मैं।

समझे थे मैं उड़ गई, सब कछू हुआ तुम से॥१०॥

मेरे अन्दर "मैं" की प्रबल भावना तब तक ही थी, जब तक मैं आपसे अपने मूल सम्बन्ध (निस्बत), प्रेम, और हुक्म को नहीं समझ पायी थी। जब मैंने इन तथ्यों को अच्छी तरह से समझ लिया, तो मेरे अन्दर से "मैं" का अस्तित्व पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। अब मेरा हृदय यही कहता है कि सब कुछ आपसे ही होता रहा है।

अव्वल आखिर सब तुम, बीच में भी तुम।

मैं खेली ज्यों तुम खेलाई, खसम के हुक्म॥११॥

मेरे धाम धनी! ब्रज, रास, और जागनी में सब कुछ आप ही करते रहे हैं। आप अपने हुक्म से जैसे मुझसे करवाते रहे हैं, मैं वैसा ही करती रही हूँ।

भावार्थ- परमधाम की सम्पूर्ण लीला श्री राज जी के दिल से जुड़ी हुई है। सखियों तथा श्यामा जी सहित सम्पूर्ण परमधाम भी श्री राज जी के ही दिल का व्यक्त स्वरूप है, अर्थात् श्री राज जी के दिल का इश्क (प्रेम) और आनन्द ही सम्पूर्ण परमधाम के रूप में लीलामग्न है। यही स्थिति ब्रज, रास, और जागनी में भी है। इन तीनों ब्रह्माण्डों में लीला में भाग लेने वाली सखियाँ उन कठपुतलियों की तरह हैं, जो बाजीगर के इशारे पर नृत्य करती हैं। ब्रज, रास, और जागनी में "केवल आप ही हैं" कहने का यही आशय है।

इन मैं को तो तुम किया, आद मध्य और अब।

और मैं तो नेहेचे नहीं, कितहूं न देखी कब॥१२॥

परमधाम की ही तरह ब्रज, रास, और जागनी में आपने

मात्र लीला रूप में ही मेरा अलग अस्तित्व खड़ा किया, अन्यथा मैं और आप तो एक ही स्वरूप हैं। यदि विज्ञान (मारिफत) की दृष्टि से देखा जाये, तो आपसे पृथक मेरा कोई अस्तित्व है ही नहीं। अपने निज स्वरूप में तो कहीं भी आपसे अलग अस्तित्व के बारे में कभी सोचा भी नहीं जा सकता।

केहेत केहेलावत तुम ही, करत करावत तुम।

हुआ है होसी तुमसे, ए फल खुदाई इलम॥१३॥

आपके तारतम ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से विदित हो गया कि मेरे धाम हृदय में विराजमान आप स्वयं ही कह रहे हैं। दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि आप मेरी आत्मा से कहलवा रहे हैं। इसी प्रकार सब कुछ करने-कराने वाले आप ही हैं। आज तक जो कुछ भी हुआ है

और भविष्य में जो कुछ होगा, सब कुछ आपके हुक्म (आदेश) से ही सम्भव है।

अब ए मैं जो हक की, खड़ी इलम हक का ले।

चौदे तबक किए कायम, सो भी मैं है ए॥१४॥

अब मेरे अन्दर केवल आपकी ही "मैं" रह गयी है, जो आपके तारतम ज्ञान के प्रकाश को लेकर आपके प्रेम में मग्न है। इसी "मैं" ने चौदह लोकों के प्राणियों को तारतम ज्ञान से अखण्ड मुक्ति का सौभाग्य प्रदान किया है।

ए मैं है हक की, ए है हक का नूर।

खास गिरो जगाए के, पोहोंचत हक हजूर॥१५॥

शरीर और संसार से परे होकर मेरी आत्मा अपनी नूरी परआत्म (परात्म) का श्रृंगार लेकर खड़ी है। वह स्वयं

को उसी रूप में मान रही है। इस प्रकार की अपनी "मैं" आपने ही दी है। हक की यह "मैं" ही ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि को जाग्रत करके धनी के सम्मुख कर रही है।

भावार्थ- नूर शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे- तारतम, अक्षर ब्रह्म, चेतन, और तेजोमयी अखण्ड स्वरूप।

परात्म धनी का ही नूर है। आत्मा जब संसार से परे होकर परात्म को देखने लगे तथा स्वयं को उसके प्रतिबिम्ब के रूप में अनुभव करे, तो उसे भी हक का नूर कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है-

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए।

सागर २०/४४

इस अवस्था में भी आत्मा को हक के नूर की संज्ञा दी

जाती है। इस स्थिति में आत्मा अन्य ब्रह्मसृष्टियों और ईश्वरीय सृष्टियों को जाग्रत करके प्रियतम की पहचान कराती है तथा उनकी सुरता को मूल मिलावा में ले जाती है। इसे ही "पोहोंचत हक हजूर" कहते हैं। यहाँ पर ही सनन्ध ग्रन्थ का यह कथन सार्थक होता है— "अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम"।

ए मैं इन विध की, सो मैं मरे क्योंकर।

पोहोंचे पोहोंचावे कदमों, जाग जगावे घर॥१६॥

इस प्रकार की हक की "मैं" को भला कैसे हटाया जा सकता है? इस प्रकार की "मैं" ही परमधाम में धनी के चरणों में पहुँचती है तथा अन्य आत्माओं की सुरता को परमधाम में पहुँचाती है। वह स्वयं निजघर पहुँचकर जाग्रत होती है तथा दूसरों को भी जाग्रत करती है।

भावार्थ- जब आत्मा स्वयं को सांसारिक भावों से हटा लेती है तथा अपने को परात्म का प्रतिबिम्ब मानकर धनी को रिझाती है, तभी उसकी दृष्टि परमधाम में पहुँचती है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन देखने योग्य है-

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥

सागर ७/४९

किन्तु उसकी वास्तविक जाग्रति तभी होती है, जब वह अपने धाम हृदय में प्रियतम को बसा लेती है। श्रृंगार ग्रन्थ ४/९ में स्पष्ट कहा गया है- "जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए।"

श्रीमुखवाणी के इन कथनों से स्पष्ट है कि श्री इन्द्रावती जी या अन्य किसी भी आत्मा का जाग्रत होना हक की

"मैं" (परात्म के भावों में भावित होने) के बिना सम्भव नहीं है।

एही मैं है हुक्म, एही मैं नूर जोस।

एही मैं इल्म हक का, एही मैं हक करे बेहोस॥१७॥

इस प्रकार की हक की "मैं" ही उनका हुक्म है और नूर का जोश है। खुदाई इल्म भी यही है। इस प्रकार की "मैं" ही संसार से बेखबर (अलग) कर देती है।

भावार्थ- हक का हुक्म, जोश, और इल्म- ये तीनों ही चीजें धाम धनी के दिल से जुड़ी हुई हैं। हक की "मैं" आ जाने पर धनी और आत्मा में कोई भेद की रेखा नहीं रह जाती है। इसलिये इस चौपाई में हक की "मैं" को इन तीनों से एकरूप किया गया है।

हक चलाए चलहीं, हक बैठाए रहे बैठ।

सोवे उठावे सब हक, नहीं हुकम आड़े कोई ऐंठ॥१८॥

हे धनी! अब तो आपके चलाने पर चलती हूँ और बैठाने पर बैठती हूँ। यहाँ तक कि आपके इशारे पर ही सोना और उठना भी होता है, अर्थात् मेरी सारी क्रियाएँ आपकी इच्छा पर निर्भर है। आपके आदेश (हुकम) के सामने मेरा कोई भी प्रतिरोध (ऐंठ) नहीं होता।

भावार्थ- इस चौपाई का तात्पर्य यह है कि धनी की "मैं" आ जाने पर आत्मा अपना व्यक्तिगत "अहम्" भुला देती है और धनी के इशारे पर वैसे ही यन्त्रवत् कार्य करती है, जैसे उसका स्वयं का कोई अस्तित्व ही न हो।

रोए हँसे हारे जीते, ईमान या कुफर।

जरा न हुकम सुध बिना, बंदगी या मुनकर॥१९॥

मेरे प्रियतम! यह तो आपके हुक्म के ऊपर ही निर्भर है कि हमें हँसना है या रोना है, हारना है या जीतना है। हमारे अन्दर आपके प्रति ईमान (दृढ़ विश्वास) होता है या बेईमानी (कुफ्र) की भावना पैदा होती है। हम आपकी बन्दगी की राह अपनाते हैं या बन्दगी न करने (मुनकिरी) की राह पर चलते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के कथन में यहाँ प्रश्न खड़ा होता है कि वहदत के स्वरूपों में अलग -अलग प्रकार की लीला क्यों होती है? किसी के तन से इस संसार में इश्क-बन्दगी की राह अपनायी जाती है, तो कोई इसके विपरीत उलटी राह पर चलता है। वहदत के सिद्धान्त के अनुसार तो सबका आचरण एक जैसा होना चाहिए।

इसका उत्तर एक दृष्टान्त द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। जिस प्रकार रंगमंच पर दो सगे भाइयों में से

एक राम बनता है और दूसरा रावण। दोनों के आचरण का अभिनय एक दूसरे के विपरीत होता है। यद्यपि वे मंच पर एक दूसरे के शत्रु नजर आते हैं, किन्तु मंच से हटते ही भ्रातृ स्नेह के बन्धन में बँध जाते हैं।

उसी प्रकार, इस खेल में वही कुछ हो रहा है, जो श्री राज जी के दिल में चल रहा है। "सुपन होत दिल भीतर" का कथन यही भाव प्रकट करता है। इस नाटक की लीला में किस-किस ब्रह्मसृष्टि से क्या-क्या लीला होनी है, वह धनी के दिल में अंकित है? परात्म की नजरें श्री राज जी के दिल रूपी परदे से जुड़ी हुई हैं। श्री राज जी जिस-जिस तन से जिस प्रकार की लीला का भाव अपने दिल में लेते हैं, परात्म के अन्दर भी वही भाव पैदा होता है और धनी के दिल रूपी परदे पर वही दृश्य अंकित रहता है, जिसकी नकल इस संसार में चलती है।

श्रीमुखवाणी में इसी को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

जैसा उत ओ देखत, तैसा करत हैं हम।

खिल्वत ४/४२

परात्म के दिल में आये बिना, आत्मा कोई भी लीला इस संसार में नहीं कर सकती। इसलिये किरंतन ८२/१३ में कहा गया है—

परआत्म के अन्तस्करण, जेती बीतत बात।

तेती इन आत्म के, करत अंग साख्यात॥

इस संसार के सिद्धान्तानुसार सभी जीव अपने-अपने संस्कारों के अनुसार ही कार्य करते हैं तथा सबके संस्कार भी अलग-अलग ही होते हैं। अतः सबके द्वारा अलग-अलग प्रकार की लीला होना स्वाभाविक है। जीव पर आत्मा विराजमान होकर इस खेल को देख रही है,

इसलिये जीवों के संस्कारवश अलग-अलग प्रकार के नाटक यहाँ दिखायी पड़ रहे हैं। किन्तु यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि धाम धनी जिस ब्रह्मसृष्टि को जिस प्रकार की लीला दिखाना चाहते हैं, उसके दिल में वैसा ही भाव भरते हैं और उसकी नजर दिल रूपी परदे पर वैसा ही दृश्य देखती है। उसकी वासना (सुरता) भी वैसे ही जीव पर विराजमान होती है, जो उस प्रकार का अभिनय कर सके। धनी के हुक्म से ही इस प्रकार की विचित्र लीला चल रही है। इसी को सिन्धी ७/२८ में कहा गया है— "इस्क बन्दगी या गुणा, से सभ हथ हुकम।"

ए जो मैं हक की, सो भी निकसे हक हुकम।

इन मैं में बंधन नहीं, बंधाए जो होवे हम॥२०॥

हे धनी! मेरे मुख से जो बारम्बार हक की "मैं", हक की "मैं" का उच्चारण हो रहा है, वह भी आपके हुक्म से ही है। इस अवस्था में आ जाने पर तो संसार का कोई भी बन्धन रहता ही नहीं। यदि हमारा आपसे कोई पृथक अस्तित्व होता, तब तो बन्धन की सम्भावना होती। जब मैं आपसे एकरूप हो गयी हूँ, तो बन्धन का प्रश्न ही कहाँ से पैदा हो सकता है?

हम बंधे बंधाए मिट गए, कछू रह्या न हमपना हम।

यों पोहोंचाई बका मिने, इन विध मैं को खसम॥२१॥

पहले हम संसार के बन्धनों में बँधे हुए थे, लेकिन आपकी "मैं" ने हमारा अस्तित्व ही मिटा दिया। अब तो हमारे अन्दर नाममात्र के लिये भी "अहंपना" नहीं रह गया है। इस प्रकार आपने अपनी "मैं" देकर मेरी नजर

को परमधाम में पहुँचाया।

अब सिर ले हुकम हक का, बैठी धनी की मैं।

जरा इन में सक नहीं, इलम हक के सैं॥२२॥

धाम धनी की वाणी से मेरे अन्दर अब इस बात का जरा भी संशय नहीं रह गया है कि मेरे अन्दर प्रियतम की वह "मैं" आ गयी है, जो उनके हुक्म को शिरोधार्य करके सब कुछ कर रही है।

जुदे सब थें इन बिध, इन विध सब में एक।

साँच झूठ के खेल में, ए जो बेवरा कहया विवेक॥२३॥

इस प्रकार सबमें धनी की "मैं" आ जाने से, हम सभी संसार के बन्धनों से अलग हो गये हैं। इस झूठे संसार में ब्रह्मसृष्टियों के आने का स्पष्ट परिणाम यही कहा जा

सकता है।

भावार्थ- इस चौपाई का मूल भाव यह है कि जो भी धनी की "मैं" को पा लेगा, वह माया के बन्धनों से अलग हो जायेगा।

हुकम जोस नूर खसम, मैं ले खड़ी इलम ए।

ए पाँचों काम कर हक के, पोहोंचे गिरो दोऊ ले॥२४॥

मेरे प्राण प्रियतम! मेरे अन्दर आपकी "मैं" आ जाने से पाँचों शक्तियाँ (हुकम, जोश, अक्षर ब्रह्म, श्यामा जी, तथा जाग्रत ज्ञान के साथ जाग्रत बुद्धि) विराजमान हो गयी हैं। जागनी का कार्य करके ये पाँचों शक्तियाँ ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि को लेकर निजधाम पहुँचेंगी।

भावार्थ- हुकम के स्वरूप में चिद्धन स्वरूप श्री राज जी की आवेश शक्ति होती है। "नूर खसम" का तात्पर्य श्री

श्यामा जी तथा अक्षर ब्रह्म से है, क्योंकि इसी प्रकरण की चौपाई ३७ में कहा गया है—

रुहें तन हादीय का, हादी तन है हक।

नूर तन नूरजमाल का, इत जरा नहीं सक।।

सागर ४/३२ में भी कहा गया है— "हादी नूर है हक का, रुहें हादी अंग नूर।" जाग्रत ज्ञान के प्रकटन का तात्पर्य ही है, जाग्रत बुद्धि का विराजमान होना।

ए सातों भए इन विध, पोहोंचे बका में जब।

आप उठ खड़े हुए, पीछे खेल कायम किया सब।।२५।।

इस प्रकार ये सातों स्वरूप (पाँचो शक्तियाँ, ब्रह्मसृष्टि, और ईश्वरी सृष्टि) जब अपने अखण्ड धाम में पहुँचे, तो अपने मूल स्वरूप को प्राप्त हो गये। उसके पश्चात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अखण्ड किया जायेगा।

भावार्थ- श्यामा जी, अक्षर ब्रह्म, तथा ब्रह्मसृष्टियों का अपने मूल तनों में जाग्रत होना निश्चित ही है। धनी की आवेश शक्ति भी उनके नूरी स्वरूप को अवश्य प्राप्त होगी। जोश (जिब्रील) तथा जाग्रत बुद्धि (इस्माफील) का मूल स्थान सत्स्वरूप है, जहाँ इन्हें पहुँचना है। इसी प्रकार ईश्वरीसृष्टि भी नूरी तन धारण करके सत्स्वरूप की दूसरी बहिस्त को प्राप्त होगी। इसे ही कहा गया है – "आप उठ खड़े हुए"।

इस चौपाई को पढ़ने पर बाह्य रूप से तो ऐसा लगता है कि यह सब कुछ घटित हो गया है। यथार्थता यह है कि यह सम्पूर्ण लीला श्री राज जी के दिल में तो घटित हो चुकी है, किन्तु व्यवहारिक रूप में छठें दिन की लीला के पश्चात् न्याय की लीला तक अभी घटित होनी है।

इसको इस दृष्टान्त से सरलता से समझा जा सकता है

कि वेदव्यास जी ने राजा जन्मेजय को भविष्य की सारी बातें बता रखीं थीं कि भविष्य में तुम्हारे साथ क्या-क्या घटना घटित होनी है। राजा का स्वर्ग की अप्सरा के साथ विवाह तथा श्रापवश कोढ़ी होने की बात व्यास जी के दिल में तो पहले से घटित थी, किन्तु जन्मेजय को प्रतीक्षा करनी पड़ी। यहाँ यही प्रसंग समझना चाहिए।

मैं तो तेहेकीक न कछू, और ना कछू मुझसे होए।

ए मैं विध विध देखिया, इन मैं में खतरा न कोए॥२६॥

हे धनी! मैं निश्चित रूप से कुछ भी नहीं हूँ और न मेरे से कुछ होने ही वाला है। इस बात को मैंने अच्छी तरह से समझ लिया है कि आपकी "मैं" आ जाने पर माया से किसी भी तरह का खतरा नहीं रह जाता।

मैं ना अव्वल ना बीच में, ना कछू मैं आखिर।

किया कराया करत हैं, सो सब हक कादर॥२७॥

सच तो यह है कि ब्रज, रास, और जागनी के इस खेल में, न तो मेरी कोई "मैं" थी, न है, और न होगी। एकमात्र आप ही सर्वसामर्थ्यवान् हैं। आपने ही सब कुछ किया है, कराते रहे हैं, और कर रहे हैं।

भावार्थ— इस प्रकार का कथन उसी के मुख से निकल सकता है, जिसके मन में नाममात्र के लिये भी अहम् की ग्रन्थि न हो।

ए तेहेकीक हकें कर दिया, हकें लई कदम।

बुलाई अपना इलम दे, कर विध विध रोसन हुकम॥२८॥

मेरे प्रियतम! यह बात तो पूर्ण रूप से निश्चित है कि आपने अपने हुकम से मेरे हृदय में अनेक प्रकार से ज्ञान

का उजाला किया। आपने अपने तारतम ज्ञान के उजाले में मुझे माया से निकाला तथा अपने चरणों में अंगीकार किया।

हकें गिरो बुलाई मोमिन, हकें कराई सोहबत।

नूर पार वचन विध विध के, हकें दर्ई नसीहत॥२९॥

आपने तारतम ज्ञान के प्रकाश में ब्रह्मसृष्टियों को माया के अन्धकार से निकाला तथा मुझसे उनका मिलन करवाया। मेरे तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण कराकर, आपने परमधाम के अनेक प्रकार के वचनों से उन्हें शिक्षा दी।

मैं नाहीं न जानों कछुए, मैं नाहीं जरा रंचक।

हकें इलम जोस देय के, करी सो हुकमें हक॥३०॥

अब तो नाममात्र के लिये भी मेरा कोई व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं रह गया है। मैं स्वयं कुछ जानती भी नहीं हूँ, फिर भी आपने मेरे अन्दर अपने हुक्म से जोश एवं तारतम ज्ञान की शक्ति देकर अपना ही स्वरूप बना लिया है।

भावार्थ- अपनी "मैं" के पूर्ण विसर्जन (त्याग) के पश्चात् ही धनी की छवि हृदय में अंकित होती है। तत्पश्चात् उनकी मेहर से ही उनका स्वरूप बना जा सकता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक ब्रह्ममुनि को अक्षरातीत श्री राज जी (प्राणनाथ जी) के रूप में मानकर उसकी भक्ति करनी चाहिए। परात्म का स्वरूप धनी का ही स्वरूप होता है और आत्मा के जाग्रत होने पर उसकी अवस्था भी परात्म जैसी ही हो

जाती है, अर्थात् परात्म की तरह ही उसके धाम हृदय में श्री राज जी विराजमान हो जाते हैं। इस अवस्था में आन्तरिक रूप से धाम की दृष्टि से उसे धनी का स्वरूप तो कहा जा सकता है, किन्तु इस संसार में अक्षरातीत के रूप में मानकर पूजा नहीं की जा सकती। यह शोभा मात्र महामति जी को ही प्राप्त है। "एकेश्वरवाद" के त्याग का दुष्परिणाम यह होगा कि संसार अज्ञानता और विनाश के घने अन्धकार में भटक जायेगा।

हकें किया हक करत हैं, और हकै करेंगे।

ए रूह को तेहकीक भई, और नजरों भी देखे॥३१॥

मैं इस बारे में पूरी तरह निश्चित हूँ कि राज जी ने ही अब तक सब कुछ किया है, वे ही करते हैं, तथा भविष्य में भी वे ही करेंगे। मैंने इस बात को अपनी आँखों से,

प्रत्यक्ष रूप से, घटित होते हुए भी देखा है।

ए सब हक करत हैं, कौल फैल या हाल।

और मुझ में जरा न देखिया, बिना नूर जमाल॥३२॥

हमारी कथनी, करनी, और रहनी का निर्देशन भी धनी के आदेश से ही होता है। अब मेरे अन्दर तो प्रियतम की छवि के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व देखा ही नहीं जा सकता।

अब इन बीच में खतरा, हक न आवन दे।

जिन दिल अर्स खावंद, तित क्यों कर कोई मूसे॥३३॥

अब धाम धनी अपनी मेहर (कृपा) से मेरे और अपने प्रेम के बीच किसी भी प्रकार का खतरा नहीं आने देंगे। जिसके धाम हृदय में स्वयं सर्वशक्तिमान अक्षरातीत ही

विराजमान हों, उस पर कोई भी मायावी शक्ति कैसे अपना आधिपत्य जमा सकती है?

भावार्थ- दिल में प्रियतम के विराजमान हो जाने पर संसार का कोई भी आकर्षण उसे वशीभूत नहीं कर सकता है।

दूजा तो कोई है नहीं, ए जो माया मन दज्जाल।

इलम देखे ए ना कछू, इत जरा नहीं जवाल॥३४॥

हमारे और धनी के प्रेम में बाधा डालने वाला एकमात्र यह मायावी मन ही है, जो दज्जाल का स्वरूप है। यदि हम तारतम ज्ञान के प्रकाश में देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि यह मन तो कुछ है ही नहीं। ऐसी स्थिति में प्रेम मार्ग में पतन होने, अर्थात् धनी से विमुख होने, का कोई प्रश्न ही नहीं है।

जब हकें इलम ए दिया, तेहेकीक रूह को तुम।

कर मनसा वाचा करमना, कोई ना बिना खसम हुकम॥३५॥

हे धाम धनी! जब आपने मेरी आत्मा के हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश किया, तो मुझे यह निश्चय हो गया कि आपके हुक्म के बिना कुछ है ही नहीं। मैं अपने मन, वाणी, एवं कर्म से इस बात में दृढ़ भी हो गयी कि सब कुछ आपके हुक्म से ही होना है।

ज्यों ज्यों एह विचारिए, त्यों तेहेकीक होता जाए।

इत जरा नूर-जमाल बिना, रूह में कछू न समाए॥३६॥

जैसे-जैसे इस बात का विचार किया जाता है, वैसे-वैसे यह स्पष्ट होता जाता है कि अब इस संसार में आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु प्रवेश नहीं कर सकती।

रुहें तन हादीय का, हादी तन हैं हक।

नूर तन नूर जमाल का, इत जरा नहीं सक॥३७॥

ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी के तन हैं और श्यामा जी श्री राज जी के तन हैं। इसी प्रकार सत् अंग अक्षर ब्रह्म भी अक्षरातीत श्री राज जी के ही तन हैं। इस बात में नाम मात्र के लिये भी संशय नहीं है।

ए मैं तैं सब हक की, ए इलम अकल धनी।

नूर जोस हुकम हक का, या विध है अपनी॥३८॥

मेरी वास्तविकता तो यह है कि मेरे मुख से जो "मैं" या "तुम" की बात निकलती है, वह भी आपके द्वारा ही कहलायी जाती है। जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का प्रकाश भी आपका ही दिया हुआ है। नूर, जोश, और हुक्म की शक्ति भी आपकी ही है।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि तथा धनी की निज बुद्धि को "बुध मूल वतन" कहकर प्रकट वाणी में सम्बोधित किया गया है। "नूर" शब्द का यहाँ अक्षर ब्रह्म से अभिप्राय है, यद्यपि "नूर" का अर्थ तारतम ज्ञान का प्रकाश भी होता है।

एह खेल हकें किया, आप भी संग इत आए।

अर्स में बैठे देखाइया, ऐसा खेल बनाए॥३९॥

धाम धनी ने अपने हुक्म से इस खेल को बनाया और आवेश स्वरूप से ब्रह्मसृष्टियों के साथ इस खेल में आये। उन्होंने परमधाम में रूहों को अपने सामने बैठाकर इस खेल को दिखाया है। धनी ने ऐसा विचित्र खेल बनाया है, जिसमें यहाँ की सुरता जीवों पर बैठकर खेल को देख रही है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों ने अपनी नूरी नजरों से इस खेल को नहीं देखा है, बल्कि हुक्म की कारीगरी द्वारा सुरता से देखा है। रूहों की इश्कमयी नजरों के सामने यह ब्रह्माण्ड भला कैसे रह सकता है?

झूठ हम देख्या नहीं, झूठ न रहे हमारी नजर।

पट आड़े खेल देखाइया, देने को इस्क खबर॥

सिनगार १९/१४७

परआत्म की नजरें धनी के दिल रूपी परदे पर सारी लीला को देख रही हैं। हुक्म की कारीगरी द्वारा सुरता जीवों पर बैठकर खेल को देख रही है—

यामें सूरत आयी स्यामा जी की सार, मतू मेहता घर अवतार।

प्र. हि. ३७/६६

ब्रह्मसृष्टियों के असल तन परमधाम में हैं तथा इस संसार में स्वप्न के तन। धाम धनी अपने दिल में जो कुछ

लेते हैं, वही इस खेल में होता है—

मोमिन आए इत थें ख्वाब में, अर्स में इनों असल।

हुक्म करे जैसा हजूर, तैसा होत मांहें नकल॥

खुलासा ४/७१

असल हमारी अर्स में, ताए ख्वाब देखावत तुम।

जैसा उत ओ देखत, तैसा करत हैं हम॥

खिलवत ४/४२

भुलाए वतन आप खसम, खेल देखाए के जुदागी।

मेहेर करी इन विध की, बैठे खेलै में जागी॥४०॥

धाम धनी ने हमें माया का खेल दिखाकर जुदायगी का अनुभव कराया है। इस खेल में आकर हम निज घर को, प्रियतम को, तथा स्वयं को भूल गयी हैं। धाम धनी ने

हमारे ऊपर तारतम ज्ञान द्वारा इस प्रकार की कृपा की है कि हम खेल में बैठे-बैठे जाग्रति का अनुभव कर रहे हैं।

जगाए लई रूहें अपनी, कदमों जो असल।

यामें संदेसा कहे, इत बैठै हैं सामिल॥४१॥

धाम धनी ने इस खेल में अपनी उन आत्माओं को जाग्रत किया है, जिनके मूल तन परमधाम में बैठे हैं। प्रियतम अक्षरातीत स्वयं उनके धाम हृदय में विराजमान हैं और उनके अन्दर से अपनी बातें कह रहे हैं।

इत ना मैं आई ना फिरी, ए तो हुकमें किया पसार।

ए मैं हुकमें मैं करी, अब हुकम देत मैं मार॥४२॥

सच तो यह है कि मैं न तो इस खेल में आयी थी और न ही लौटकर जाऊँगी। यह सारी लीला तो धनी के

हुक्म ने ही की है। धनी के हुक्म ने ही मेरी परमधाम की "मैं" को भुलाकर संसार की "मैं" में फँसा दिया था। अब हुक्म ने ही संसार की "मैं" को हटाकर धनी की "मैं" में लगा दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई को पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मसृष्टि इस खेल में न तो आई है और न जायेगी। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न खड़ा होता है कि जब ब्रह्मसृष्टि आयी ही नहीं, तो ब्रह्मलीला कैसे हुई?

इन तीनों में ब्रह्मलीला भई, व्रज रास और जागनी कही।

प्रकास हिन्दुस्तानी ३७/११४

पुनः श्रीमुखवाणी के इन कथनों का क्या अर्थ होगा—

जो कोई आत्म धाम की, इत हुई होए जाग्रत।

सागर ११/३९

सो इन सरूप के चरन लेय के, चलिए अपने घर।

सागर ८/११८

ए रूहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत।

सिनगार ८/२०

वस्तुतः इस बयालिसवीं चौपाई में नूरी तन के सम्बन्ध में कहा गया है कि न तो वह आया है और न जायेगा। धनी के हुक्म द्वारा उनके दिल रूपी परदे पर वे माया का खेल देख रही हैं। इस खेल में वही कुछ सुरता द्वारा किया जाता हुआ दिखायी देता है, जैसा धाम धनी चाहते हैं।

कहे लदुन्नी भोम तलेय की, हक बैठे खेलावत।

तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुक्म करत॥

खिलवत ५/३९

खेल में आने के सम्बन्ध में इसी तीसरे प्रकरण की ४६वीं चौपाई देखने योग्य है।

जब लग मैं सुपने मिने, नहीं खसम पेहेचान।

तब लग मैं सिर अपने, बोझ लिया सिर तान॥४३॥

इस संसार में जब तक मुझे धनी के स्वरूप की वास्तविक पहचान नहीं हुई थी, तब तक मैंने अपने सिर पर ही सारा बोझ ले रखा था, अर्थात् मैं यही समझती थी कि मैं ही सब कुछ करती हूँ।

अब खसम ख्वाब की सुध परी, और सुध परी हुकम।

तब मैं में जरा ना रही, मैं बैठी तले कदम॥४४॥

अब मुझे इस नश्वर संसार की, अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की, तथा उनके हुक्म की पहचान हो गयी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मेरे अन्दर नाममात्र की भी सांसारिक "मैं" नहीं रह गयी है। मैं यही मानती हूँ कि मैं तो मूल मिलावा में धनी के चरणों में ही बैठी हुई हूँ।

इलम खुदाई ना होता, तो क्यों संदेसा पोहोंचत।

नूर-तजल्ला के अन्दर की, कौन इसारतें खोलत॥४५॥

यदि यह ब्रह्मवाणी (श्रीमुखवाणी) नहीं होती, तो प्रियतम की बातें हमारे तक कैसे पहुँच पाती, अर्थात् नहीं पहुँच पाती। इसके बिना तो परमधाम की उन गुझ बातों को भी नहीं जाना जा सकता था, जो धर्मग्रन्थों में संकेतों में लिखी हुई हैं।

सब मेयरज की इसारतें, कौन साहेदी कलमें देत।

जो अर्स अरवाहें इत ना होती, तो मता खिलवत का कौन लेत॥४६॥

मुहम्मद साहिब को मेयरज (दर्शन) की रात्रि में अल्लाहतआला का दीदार हुआ था। ब्रह्मवाणी के अभाव में कुरआन से इसकी स्पष्ट साक्षी नहीं दी जा सकती थी। यदि ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में नहीं होतीं, तो खिल्वत की

गुझ बातों को कौन ग्रहण कर सकता था?

भावार्थ- कुरआन के पन्द्रहवें पारे "सुब्हानल्लजी" में "मेअराज" का वर्णन है, किन्तु तारतम (खुदाई) ज्ञान (इल्मे लदुन्नी) से रहित होने के कारण मुस्लिमजन आज भी बहुत सी भ्रान्तियों से ग्रसित हैं। जैसे कि किसी का कहना है कि मुहम्मद साहिब अर्शे अजीम में अपने जिस्म (शरीर) सहित गये, तो किसी का कहना है कि वे मात्र रूह से गये। किसी का यह भी कहना है कि वे जिस्म तथा रूह दोनों के साथ गये। मुहम्मद साहिब के इन कथनों को भी वे नहीं समझ पाये कि हकतआला (श्री राज जी) की दायीं ओर जो रूह अल्लाह (श्यामा जी) विराजमान हैं, उनसे मुझे बहुत प्रेम है। इसी प्रकार वे हौजकौसर, यमुना जी, रंगमहल, तथा नूरमयी नहरों के भी बारे में भी स्पष्ट रूप से कुछ नहीं जानते। इन सभी

भ्रान्तियों का निराकरण तारतम वाणी से होता है।

चौथे आसमान लाहूत में, रूह अल्ला बसत।

पेहेले बताई फुरकानें, सो मोमिन भेद जानत॥४७॥

नासूत (मृत्यु लोक), मलकूत (वैकुण्ठ), तथा जबरूत (योगमाया) से परे चौथे आकाश लाहूत (परमधाम) में परब्रह्म की आनन्द स्वरूपा श्री श्यामा जी विराजमान हैं। यद्यपि कुरआन में यह बात लिखी है, किन्तु इसके वास्तविक रहस्य मात्र ब्रह्ममुनि ही जानते हैं।

भावार्थ- इसी पारे की सूरत "बनी इसराईल" में यह प्रसंग वर्णित है। इल्मे लदुन्नी (परब्रह्म के ज्ञान) के बिना चारों आकाश तथा परब्रह्म के आनन्द अंग के विषय में स्पष्ट रूप से नहीं जाना जा सकता।

कुन्जी नूर के पार की, रूह अल्ला दर्ई मुझ।

केहे बातून मगज मुसाफ का, करों जाहेर जो है गुझ॥४८॥

श्यामा जी ने अक्षर धाम से भी परे परमधाम की पहचान कराने वाले ज्ञान की कुञ्जी (तारतम ज्ञान) मुझे दी और कहा कि इसके द्वारा तुम कुरआन के छिपे हुए अति गुह्य रहस्यों को प्रकाशित करो। अब मैं उसी को स्पष्ट कर रही हूँ।

जो रखे रसूलें हुकमें, और सबन थें छिपाए।

सो मोको कुंजी देय के, कौल पर जाहेर कराए॥४९॥

मुहम्मद साहिब ने श्री राज जी के आदेश से ३० हजार हरुफों वाले मारिफत के इल्म (आध्यात्मिक विज्ञान) की बातों को सबसे छिपा रखा था। श्यामा जी ने अपने तारतम ज्ञान द्वारा, मेरे तन से, अपने निश्चित समय पर

कुरआन के भेदों को स्पष्ट कराया।

भावार्थ- कुरआन के आम पार: तीसवाँ अमयत साअलून (३०) में सूर: तुल कद्र व सूर: तुल फज्र में यह वर्णित है कि दसवीं सदी में ईसा रूह अल्लाह (श्री देवचन्द्र जी) तथा ग्यारहवीं सदी में इमाम मुहम्मद महदी (श्री प्राणनाथ जी) प्रकट होंगे, तथा बारहवीं सदी में (वि.सं. १७४५ के पश्चात्) पूर्ण ज्ञान का सवेरा हो जायेगा। इसी कथन के अनुसार ब्रह्मवाणी के द्वारा मारिफत के ज्ञान का अवतरण हुआ।

तो गुनाह अर्स अजीम में, लिख्या सब मेयराज के माहें।
करें जाहेर अर्स दिल मोमिन, जित जबरईल पोहोंच्या नाहें॥५०॥
कुरआन में मेयराज के प्रसंग में लिखा है कि जिस परमधाम में जिब्रील भी नहीं जा सका, उसी परमधाम में

माया का खेल माँगने के कारण रूहों पर गुनाह लगा। इस भेद को वे ब्रह्ममुनि ही जाहिर करते हैं, जिनका दिल धनी का अर्श बन गया होता है, अर्थात् जिनके धाम हृदय में अक्षरातीत विराजमान हो गये होते हैं।

ए मैं बोले जो कछू, सो संदेसा रूहअल्ला जान।

ए इलम हकीकत वतनी, कहूं हक बिना न पेहेचान॥५१॥

मैं जो कुछ भी कह रही हूँ, उसमें अन्दर से श्यामा जी की ही आवाज है। यह तारतम ज्ञान परमधाम की यथार्थता का वर्णन करता है। बिना धाम धनी की कृपा के वास्तविक सत्य की कहीं भी पहचान नहीं हो सकती।

हक पैगाम भेजत है, सो देत साहेदी कुरान।

दे साहेदी खुदा खुदाए की, सो खुदाई करे बयान॥५२॥

कुरआन में इस बात की साक्षी है कि धाम धनी रूहों के दिल में अपना सन्देश भेजते हैं। इस प्रकार खुदा के कहे हुये वचनों की साक्षी एकमात्र खुद खुदा (श्री प्राणनाथ जी) ही दे सकते हैं और वही वर्णन भी करते हैं।

भावार्थ- मूल निस्वत के सम्बन्ध से ब्रह्मसृष्टियों का शाश्वत सम्बन्ध श्री राज जी से बना रहता है। वे उनके धाम हृदय में अपनी अमृतमयी वाणी को प्रकट करते हैं, इसे ही पैगाम (सन्देश) भेजना कहते हैं। कुरआन के तीसरे पारे तिलकुल रसूल में इसका वर्णन है।

अक्षर तथा अक्षरातीत के बीच होने वाली नब्बे हजार हरुफों की वार्ता का कुछ भाग ही "कुरआन" के रूप में प्रस्तुत है। श्री महामति जी के धाम हृदय में बैठकर स्वयं अक्षरातीत ही कुरआन की उन साक्षियों को स्पष्ट करते हुये परमधाम का वर्णन करते हैं। परब्रह्म की वास्तविक

पहचान तो मात्र परब्रह्म स्वरूप (श्री प्राणनाथ जी) ही करवा सकते हैं।

सो भी रूह साहेदी देत है, जो नूर-जलाल पास नाहें।

सो रोसनी नूरजमाल की, लज्जत आवत मोमिनो माहें॥५३॥

अक्षर ब्रह्म के पास भी जो ज्ञान नहीं है, उसकी साक्षी मेरी आत्मा दे रही है। इस नश्वर जगत में भी ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में अक्षरातीत के ज्ञान का प्रकाश होता है।

जब लग ख्वाब नजरो, तब लो देत देखाई यो कर।

ना तो सुख नूर-जमाल को, बैठे लेवें कायम घर॥५४॥

जब तक इस संसार का अस्तित्व है, तब तक आत्मा के अन्दर परमधाम के ज्ञान और आनन्द का स्वाद आता रहता है, अन्यथा परमधाम में अपने नूरी तनों से तो

सर्वदा ही आनन्द के सागर में डूबे रहते हैं।

भावार्थ- परमधाम में आनन्द का विलास है, जबकि इस संसार में मात्र उसका स्वाद ही लिया जा सकता है, क्योंकि यहाँ के मायावी तन उस आनन्द का पूर्ण बोझ नहीं झेल सकते।

इलहाम आवत परदे से, सो नाहीं चौदे तबक।

सो मोमिन इन ख्वाब में, लेत सुख बेसक॥५५॥

धनी के दिल रूपी परदे से रूहों के अन्दर सन्देश आता है। वह दिल रूपी परदा चौदह लोकों के इस संसार में नहीं है। ब्रह्मसृष्टियाँ इस नश्वर संसार में भी बेशक होकर धनी के सन्देशों के सुख को प्राप्त करती हैं।

भावार्थ- मूल मिलावे में धाम धनी अपने दिल रूपी परदे पर ब्रह्मसृष्टियों को माया का खेल दिखा रहे हैं। इस

नश्वर जगत में स्वप्न के तन हैं, जिनसे आत्माएँ इस खेल में मग्न हैं। श्री राज जी के दिल की बातें इस खेल में मोमिनों के दिल में आती हैं क्योंकि—

सिफत ऐसी कही मोमिन की, जाके अक्स का दिल अर्स।
हक सुपने में भी संग कहे, इन विध रुहें अरस परस॥

सिनगार २१/८१

श्री राज जी के दिल से इस खेल में आत्माओं के दिल में सन्देश आना ही परदे से आना है।

झूठ न सुन्यो कबूँ इत थें, जिन करो झूठी उमेद।

ए गुझ हक के दिल का, आवत तुमको भेद॥५६॥

हे साथ जी! परमधाम में रहते हुये हमने कभी झूठे संसार के विषय में नहीं सुना था, इसलिए इस मायावी संसार में आने के पश्चात् झूठी तृष्णाओं के जाल में नहीं

फँसना चाहिए। यह धाम धनी की अपार मेहर है कि इस संसार में तुम्हें वाणी से उनके दिल के गुझ भेदों की जानकारी मिल रही है।

भावार्थ- इश्क-रब्द के प्रसंग में, माया का खेल देखने की इच्छा से पहले, ब्रह्मसृष्टियों को इस संसार के बारे में कोई भी जानकारी नहीं थी। इस चौपाई के पहले चरण में कथित "झूठ न सुन्यो कबूँ" का यही भाव है।

आवत संदेसे परदे से, बीच गिरो मोमिन।

क्यों ना विचारो अकल सों, कर पाक दिल रोसन॥५७॥

प्रियतम के दिल रूपी परदे से ज्ञान की अमृतधारा ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में प्रवाहित होती है। हे सुन्दरसाथ जी! इस बात का अपनी बुद्धि से विचार करके अपने हृदय को पवित्र क्यों नहीं करते हो, जिससे

आपका हृदय अखण्ड ज्ञान से प्रकाशित हो जाये।

इतथें अर्ज भेजत हैं, सो पोहोंचत है हक को।

जो असल अकलें विचारिए, तो आवे दिल मों॥५८॥

अपने दिल से जो भी प्रार्थना करते हैं, वह धाम धनी तक अवश्य ही पहुँचती है। यदि हम जाग्रत बुद्धि या निज बुद्धि के प्रकाश में विचार करें, तो हृदय में यह बात स्पष्ट हो जाती है।

तेहेकीक अर्ज पोहोंचत है, जो भेजिए पाक दिल।

ऐसी पोहोंचाई हक ने, दिल पोहोंचे मोहोल-असल॥५९॥

यदि पवित्र हृदय से प्रार्थना की जाती है, तो वह निश्चित रूप से धनी तक पहुँचती है। धाम धनी ने हमें उस मन्जिल पर पहुँचा दिया है कि अब दिल की उड़ान

अखण्ड परमधाम तक होने लगी है।

ए जो पाक दिलें विचारिए, देखो आवत इलहाम ए।

पर उपली नजरों न देखिए, ए जो पोहोंचत हकीकत जे॥६०॥

यदि पवित्र हृदय से विचार किया जाये, तो यह स्पष्ट होता है कि धाम धनी का सन्देश (छिपी हुई वाणी) हम तक पहुँचता (पहुँचती) है। बाह्य दृष्टि से इस वास्तविकता को नहीं जाना जा सकता (अनुभव किया जा सकता)।

आवत जात जो खबरें, सो परदे से देखत।

बैठी तले कदम के, लेवत एह लज्जत॥६१॥

हमारी परात्म मूल मिलावे में धनी के चरणों में बैठी हुई है। वह धनी के दिल रूपी परदे पर सब कुछ देख रही है

कि किस प्रकार से राज जी के दिल की बातें रूहों के दिल तक पहुँचती हैं? वह वहीं बैठे-बैठे इस लीला का स्वाद (लज्जत) लेती रहती है।

महामत कहे मैं हक की, पोहोंची बका में।

ए मैं असल अर्स की, ए मैं मोमिनो हक से॥६२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मेरे अन्दर जो धनी की "मैं" आ गयी है, वह अपने मूल घर परमधाम तक पहुँच गयी है। ब्रह्मसृष्टियों की यह "मैं" धाम धनी की है तथा इसका मूल ठिकाना (स्थान) भी परमधाम ही है।

भावार्थ— जब लौकिक भावों का पूर्णतया परित्याग हो जाता है तथा आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर अपने आत्मिक स्वरूप में स्थित हो जाती है, तो उसे ही

"हक की मैं" लेना कहा जाता है। इस अवस्था में परमधाम तथा अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सूझता।

प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥१५१॥

ज्यों जानो त्यों रखो, धनी तुमारी मैं।

ए केहेने को भी ना कछू, कहा कहुं तुमसे॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे प्राणवल्लभ! मेरी आत्मा केवल आपकी ही है। आप मुझे जिस स्थिति में रखना चाहते हैं, उसमें ही रखिए। मैं आपसे क्या कहूँ? मुझे इस तरह की बातें कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता।

भावार्थ— समर्पण की पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) को पार करने के पश्चात् ऐसी अवस्था आ जाती है, जिसमें प्रियतम से कुछ भी कहना सम्भव नहीं होता। जिस हाल में वह राजी हो, उसी में अपनी रजा होती है। इस चौपाई में वही बात दर्शायी गयी है।

कछू कछू दिल में उपजत, सो भी तुमहीं उपजावत।

दिल बाहेर भीतर अंतर, सब तुम हीं हक जानत॥२॥

मेरे दिल में कोई-कोई बात उत्पन्न भी होती है, तो आप ही उसे उत्पन्न करते हैं। मेरी वाणी में, दिल में, और आत्मा में क्या है, उसे आप अच्छी तरह से जानते हैं।

भावार्थ- सागर और उसकी लहरों, तथा चन्द्रमा और उसकी चाँदनी में, जो एकरूपता होती है, वही एकरूपता मेरे दिल और आपके दिल में है। इसलिये मेरे दिल में कोई भी बात आपकी इच्छा के बिना नहीं उपज सकती।

वाणी से जो भी बात कही जाती है, वह दिल के बाहर की मानी जाती है। जो नहीं कही जाती, वह दिल के भीतर अव्यक्त होने से छिपी हुई मानी जाती है। इससे भी परे आत्मा में वह बात स्थित होती है, किन्तु आत्मा में वही बात आती है, जो परात्म में होती है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि परात्म में वही बात आती है, जो

श्री राज जी के दिल से प्रेरित होती है। इस सम्बन्ध में यह चौपाई देखने योग्य है—

परआत्म के अन्तस्करण, जेती बीतत बात।

तेते इन आत्म के, करत अंग साख्यात॥

किरन्तन ८२/१३

यही कारण है कि दिल के भीतर तथा आत्मा और परात्म में छिपी हुई बात को भी राज जी पूर्णरूपेण जानते हैं।

जो लों रखी तुम होस में, तब लग उपजत ए।

ए मैं मांगे तुमारी तुम पे, तुम मंगावत जे॥३॥

इस तरह की बातें भी मेरे अन्दर तभी उत्पन्न हो रही हैं, जब आपने मुझे होश में रखा है। आपने मेरे अन्दर जो अपनी "मैं" स्थापित कर रखी है, वही आपसे कुछ माँग

रही है, किन्तु यह भी तभी सम्भव हो रहा है, जब आप मँगवा रहे हैं।

भावार्थ- इस खेल में इश्क का विलास नहीं है, किन्तु ब्रह्मवाणी के अवतरित हो जाने से इल्म का विलास अवश्य है। इसी को होश की संज्ञा दी गयी है। इल्म न होने पर माया की फरामोशी रहती है, ऐसी स्थिति में भी माँगना सम्भव नहीं होता। इश्क या वहदत में डूब जाने पर तो बेहोशी की स्थिति हो जायेगी। समर्पण के सागर को पार कर लेने के पश्चात् जो अस्तित्व विहीनता की स्थिति होती है, उसमें भी कुछ माँगने की बात आश्चर्य प्रकट करती है, किन्तु यह माँगना धनी की ही प्रेरणा पर निर्भर है, स्वतः नहीं। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

मैं मांगत डरत हों, सो भी डरावत हो तुम।

मैं मांगे तुमारी तुम पे, ना तो क्यों डरे अंगना खसम॥४॥

मैं आपसे कुछ भी माँगने से डरती हूँ, किन्तु डराने वाले भी आप ही हैं। आपने जो मुझे अपनी "मैं" दी है, वह ही आपसे कुछ भी माँगती है, अन्यथा जब मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ, तो आपसे कुछ माँगने में क्यों डरूँ?

भावार्थ- परमधाम में परात्म का स्वरूप भी अक्षरातीत का ही स्वरूप है। वहदत में सभी का एक स्वरूप होने से डरने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, किन्तु इस नश्वर जगत में आत्मा अपने को शरीर, जीव, और संसार से अलग मानकर परात्म से एकरूपता स्थापित करती है। जब परात्म और अक्षरातीत का एक ही स्वरूप हैं, तो कौन किससे माँगेगा और कौन किसकी इच्छा पूर्ण करेगा?

इस अपूर्ण संसार में माँगना स्वाभाविक है। इसी कारण भय की स्थिति बन जाती है कि मैं राज जी से कुछ माँगकर इश्क और वहदत के अपने मूल स्वरूप की गरिमा पर धब्बा तो नहीं लगा रही हूँ, क्योंकि स्पष्ट रूप से यह मान्यता है कि स्वलीला अद्वैत के स्वरूप में माँगने का प्रश्न ही नहीं होना चाहिए।

हजरत ईसे मांगया, हक अपनायत कर।

तिन पर ए गुनाह लिख्या, ए देख लगत मोहे डर॥५॥

श्री श्यामा जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) ने अपनेपन की भावना से आपसे जागनी की शोभा माँगी थी, लेकिन उन्हें गुनाह लग गया। इसी कारण मुझे डर लग रहा है।

भावार्थ— प्रेम की पहली कक्षा ही वहाँ से प्रारम्भ होती

है, जिसमें कुछ भी माँगा नहीं जाता, बल्कि दिया ही जाता है। अपनी बन्दगी के बदले श्री राज जी से जागनी की माँग करना प्रेम और समर्पण की उज्ज्वल भावना के विपरीत प्रतीत होता है।

रुहें तो श्यामा जी की अंगरूपा हैं। अर्धांगिनी के रूप में श्यामा जी जिस तन में विराजमान होकर लीला कर रही हैं, यदि उस तन से ही यह भूल हो जाये तो छठे दिन की लीला में सुन्दरसाथ क्या करेगा? इसलिये सबको सिखापन के रूप में श्री श्यामा जी से इस प्रकार की लीला करायी गयी, ताकि कोई भी सुन्दरसाथ छठे दिन की लीला में वैसी भूल न करे। आनन्द स्वरूपा श्यामा जी को तो माँगने की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनकी गरिमा सबसे अधिक है।

फुरमान देख के मैं डरी, देख रूह अल्ला पर गुना।

ए खासी रूह खुदाए की, मोमिनों रह्या न आसंका॥६॥

श्री राज जी की आह्लादिनी शक्ति श्यामा जी के ऊपर गुनाह लगने का वर्णन कुरआन में पढ़कर मुझे बहुत डर लग गया कि कदाचित् मैं भी गुनाह के बन्धन में न फँस जाऊँ। जब श्यामा जी के ऊपर गुनाह लग सकता है, तो सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियों) के ऊपर गुनाह लगने में कोई संशय नहीं है अर्थात् गुनाह अवश्य लगेगा।

भावार्थ- कुरआन पार: ६ सूरत ४ आयत १५६-१६२ में यह वर्णन है कि हजरत ईसा रूहअल्लाह (श्यामा जी) के ऊपर गुनाह लगा। इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "फुरमान देख के मैं डरी" से यह संशय पैदा होता है कि क्या श्री महामति जी ने कुरआन को पढ़कर इस चौपाई को कहा है?

इसका समाधान यह है कि परब्रह्म के आवेश से अवतरित ब्रह्मवाणी में किसी ग्रन्थ को पढ़कर कुछ कहने या लिखने का प्रश्न ही नहीं है। महामति जी ने खुलासा १५/५ में स्पष्ट कहा है—

पढ़या नहीं फारसी, ना कछु हरुफ आरब।

सुन्या न कान कुरान को, और खोलत माएने सब॥

प्रकास हिन्दुस्तानी ४ / १४ के कथन "ए वचन महामति से प्रगट न होय" से भी यह सिद्ध होता है कि कहीं से पढ़कर या सुनकर इस ब्रह्मवाणी में कुछ भी नहीं लिखा गया है, यहाँ वर्णन की शैली ही ऐसी है।

गुनाह का तात्पर्य अपराध या हाँसी होने से है। प्रेम में असफल होने या पिछड़ने पर गुनाह अवश्य लगेगा। कोई भी ब्रह्मसृष्टि हाँसी से नहीं बच सकती। चौथे चरण का यही आशय है। चाहे श्यामा जी हों या अन्य सुन्दरसाथ,

पहचान न होने पर हाँसी तो होनी ही है।

पेहेचान बिना गिरो क्या करे, या यार या सिरदार।

तो डर बड़ा मोहे लगत, जो गुनाह कहया इन पर।

माफक रूह अल्लाह के, कोई मरद नहीं बराबर॥७॥

श्यामा जी के ऊपर गुनाह लगने के बाद, अब मुझे बहुत ही डर लगने लगा है। श्यामा जी के बराबर शक्ति वाला तो कोई है ही नहीं।

भावार्थ— इस चौपाई में श्यामा जी को "मर्द" कहने का भाव "शक्तिमत्ता" से है। अर्धांगिनी के अन्दर तो प्रियतम ही बसा होता है, इसलिये उसकी शक्ति प्रियतम की ही शक्ति होती है। अध्यात्म जगत में लौकिक स्त्री या पुरुष भाव के लिये कोई भी स्थान नहीं होता।

पुरुष का तात्पर्य यही है कि "पुरिशयनात् इति पुरुषः"

अर्थात् ब्रह्मपुरी में सर्वत्र पूर्ण होने से परब्रह्म को पुरुष कहा जाता है। लीला रूप में वे ही श्यामा जी एवं सखियों के रूप में हैं। इस प्रकार परमधाम में मारिफत की दृष्टि से श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं। खुलासा १६/८४ में स्पष्ट रूप से कहा गया है –

खिलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

एक जरा कहिए जो दूसरा, जो हक बिना होए इतदाए॥

ए खावंद है अर्स अजीम का, हादी हमारा सोए।

इस मानंद चौदे तबक में, हुआ न होसी कोए॥८॥

श्यामा जी तो परमधाम की स्वामिनी हैं और हमें निर्देशित (हिदायत) करने वाली हैं। उनके बराबर तो इस चौदह लोक में न कोई हुआ है और न होगा।

भावार्थ– जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत के सत् अंग

हैं और उनकी लीला बेहद में होती है, उसी प्रकार श्यामा जी भी अक्षरातीत की आनन्द अंग हैं तथा उनकी आनन्द लीला परमधाम के अन्दर होती है। इसी कारण उन्हें "अर्स का खाविन्द" कहा गया है। हादी का तात्पर्य है हिदायत (निर्देशित) करने वाला। यद्यपि श्रीमुखवाणी में अवश्य कहा गया है—

इमाम ज्यादा तिनसे, जिन सबों पहुंचाए हक।

किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि श्यामा जी ही दूसरे जामें में इमाम मुहम्मद महदी के रूप में सुशोभित हुईं। श्री इन्द्रावती जी के अन्दर बैठकर उन्होंने ही लीला की।

ए इलम ले रूह अल्ला आया, खोल माएने इमाम केहेलाया।

मैं नेक बात याकी कहूं, पाक रूहों सुनो सब मिल।

मैं की खुदी सखत है, ए लीजो देकर दिल॥९॥

परम पवित्र हे साथ जी! आप सभी मिलकर मेरी बात सुनिए। मैं श्यामा जी के विषय में थोड़ी सी बात कहती हूँ। "मैं" का बन्धन बहुत ही कठोर होता है। इसे दिल देकर ध्यानपूर्वक सुनना (ग्रहण करना)।

रूह-अल्ला करी बन्दगी, तिन में उनकी मैं।

तो गुनाह कहया इन पर, इन मैं मांग्या हक पे॥१०॥

श्यामा जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) ने चालीस वर्ष की अवस्था तक अपने प्राणवल्लभ को पाने के लिये भक्ति (बन्दगी) का मार्ग अपनाया, जिसके कारण उनमें "मैं" की प्रवृत्ति हो गयी कि मैंने भक्ति की है। इसी से अधिकारपूर्वक उन्होंने जागनी की माँग की। उनके ऊपर

गुनाह (दोष) लगने का यही कारण है।

भावार्थ- बिना विरह और प्रेम के मैं का बन्धन समाप्त नहीं हो सकता। श्री देवचन्द्र जी ने भिन्न-भिन्न पन्थों की उपासना पद्धतियों को अपनाकर प्रियतम को पाना चाहा था। ये पद्धतियाँ विरह-प्रेम की राह से अलग थीं। फलतः उनके जीव में यह भावना आ गयी कि जब मैंने इतनी भक्ति की है, तो मुझे उसके बदले में जागनी की शोभा क्यों नहीं मिलेगी ? गुनाह का यही कारण है। आत्मा तो निर्विकार है। जीव के अन्दर ही अहं की भावना जोर पकड़ती है, किन्तु उसका दोष आत्मा के साथ जुड़ जाता है।

मेरे ना कछू बन्दगी, ना कछू करी करनी।

ओ मैं मुझमें ना रही, ए तो मैं हकें करी अपनी॥११॥

न तो मैंने कुछ भक्ति की और न कोई करनी करके ही दिखाई। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे अन्दर इस प्रकार की "मैं" पनपी ही नहीं कि मैंने धनी को पाने के लिये इतना कुछ किया है। धनी ने मेरी "मैं" को अपने स्वरूप से एकाकार कर लिया।

भावार्थ— श्री मिहिरराज जी ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से परमधाम का ज्ञान प्राप्त कर सीधे युगल स्वरूप का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप उन्होंने प्रेम की राह अपनाकर अपनी "मैं" को परआत्म की "मैं" में विलीन कर दिया। इसके विपरीत श्री देवचन्द्र जी ने धनी को पाने के लिये भिन्न-भिन्न पन्थों की मान्यताओं के अनुसार भक्ति और धर्माचरण के अनेक मार्गों का अनुसरण किया, जिसे इस चौपाई में "बन्दगी और करनी" कहा गया है।

मूल निस्वत के कारण आत्मा का धनी से अपनापन तो अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा, किन्तु जीव अपनी और संसार की "मैं" को छोड़कर अवश्य ही धनी के अपनेपन को प्राप्त कर सकता है। इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि परात्म का भाव आ जाने पर हक की "मैं" आ जाती है।

मैं थी बीच लड़कपने, धनी तुमारी पढ़ाएल।

मेरे उमेद न आसा बंदगी, हक तुमारी निवाजल॥१२॥

हे धनी! आपके प्रेम में मैं भोलेपन के भावों में डूबी रही और आपके निर्देशों पर चलती रही। मैं समर्पण की दृष्टि से आपके ऊपर इतनी आश्रित रही कि मुझमें आपकी भक्ति करने की इच्छा ही नहीं हुई और मेरे से इस प्रकार की आशा भी नहीं की जा सकती थी।

भावार्थ- इस चौपाई में "लड़कपन" का तात्पर्य नासमझ नहीं बल्कि भोलेपन से होगा, क्योंकि प्रेम में समर्पित हो जाने पर हानि-लाभ का विचार ही नहीं रहता। समर्पण के पर्वत से ही विरह और प्रेम के झरने फूटते हैं। उस अवस्था में भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति का मूल्य तो मोक्ष या किसी अन्य माँग के रूप में माँगा जा सकता है, किन्तु जिसने अपना सर्वस्व ही समर्पित कर दिया है, वह क्या माँगेगा? उसका तो अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रहता।

मैं जो मांगी बेखबरी, सो उमेद पूरी सब तुम।

तब उस खुदी की मैं को, दिल चाह्या दिया हुकम॥१३॥

हे धनी! मैंने आपसे यही माँगा था कि मैं आपके प्रेम में इतनी डूब जाऊँ कि इस संसार से बेखबर हो जाऊँ।

आपने मेरी इस इच्छा को यथार्थ रूप में पूर्ण किया। तब मेरे अन्दर जो परात्म की "मैं" आयी, आपने मेरी इच्छानुसार उसे हुक्म दिया।

भावार्थ— संसार से बेखबर हो जाने का अर्थ है— संसार की कोई सुध न रह जाना। यह मात्र प्रेम के द्वारा ही सम्भव है। शरीर और जीव भाव से ऊपर होकर अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर ही आत्मा अपने प्रियतम के विरह में डूबती है। इसी को तीसरे चरण में "खुदी की मैं" कहा गया है, अर्थात् स्वयं के अस्तित्व की "मैं" जो परात्म का स्वरूप है। श्री इन्द्रावती जी के दिल में मात्र धनी के दीदार की चाहना थी, जागनी की नहीं। हब्से में विरह के क्षणों को उन्होंने इस रूप में प्रस्तुत किया है—

आपोपूं ज्यारे नाखिए आंख मीची, त्यारे तमने आवे सरम।

खटरुती ७/१८

यद्यपि श्री इन्द्रावती जी ने धनी का प्रेम और दीदार ही माँगा था, किन्तु धनी ने उन्हें जागनी का हुक्म दिया। जिस हुक्म को श्री देवचन्द्र जी ने रो-रोकर माँगा था, उसे महामति जी को जबरन सौंपा गया।

यों विलख विलख वचन लिखे, सो ले ले रुहें पोहोंचाए।

सनन्ध ४१/२१

रास लीला के अन्दर ही धाम धनी ने श्री इन्द्रावती जी को अपनी शोभा देने का निर्णय कर लिया था। यह प्रसंग पुराण संहिता के अध्याय ३१ श्लोक ३५-३९ में वर्णित है। श्री राज जी ने अपने दिल की इच्छा के अनुसार ही जागनी करने का हुक्म दिया। चौथे चरण का यही आशय है।

दूसरे शब्दों में, यदि हुक्म को धनी की इच्छा माना जाये, तो इस चौथे चरण का अभिप्राय यह होता है कि

श्री इन्द्रावती जी के अन्दर धनी के दीदार की जो इच्छा थी, उसे श्री राज जी ने पूरा करने का निर्णय लिया।

अब मांगूं सिर हुकम, हुज्रत लिए खसम।

अब क्यों न होए सो उमेद, दिया हाथ हुकम॥१४॥

हे धनी! अब मैं आपकी अर्धांगिनी का दावा लेकर आपके आदेश को सिर चढ़ाये रखने की कृपा माँगती हूँ। जब आपने मुझे जागनी करने का आदेश दे ही रखा है, तो मेरी आत्मिक इच्छाओं को आप पूर्ण क्यों नहीं करेंगे?

भावार्थ— आदेश को शिरोधार्य करने का भाव यह है कि हे धाम धनी! आप अपनी मेहर की छाँव तले मुझे ऐसा किये रहना कि यह माया मेरे ऊपर कभी हावी न होने पाये और सुन्दरसाथ की जागनी कार्य में कभी बाधा न

पड़े।

धनी के अन्दर विराजमान होने की स्थिति में भी अमदाबाद (अहमदाबाद) की जेल में कान्ह जी भाई के दबाव में माया से हार खानी पड़ी थी। इस तरह की स्थिति कहीं जागनी कार्य में बाधा न उत्पन्न करे , इसलिये इस प्रकार की प्रार्थना (माँग) की गयी है।

खसम खसम तो करत हों, पर खसम न आवत भार।

ना हुज्रत रूह अर्स की, तो होत ना दिल करार॥१५॥

मैंने प्रियतम-प्रियतम की रट अवश्य लगा रखी है, किन्तु अष्ट प्रहर आपको अपने दिल में प्राथमिकता नहीं दे पा रही हूँ। जब तक मैं परमधाम की आत्मा का दावा नहीं ले लेती, तब तक मेरे हृदय में ठण्डक नहीं हो सकती (सुकून नहीं मिल सकता)।

भावार्थ- मन-वाणी के धरातल पर प्रियतम की बातें करना सरल है, किन्तु अष्ट प्रहर आत्मिक दृष्टि से उनमें खोये रहना सम्भव नहीं है। विरह की अवस्था में तो यह हो जाता है, किन्तु जागनी कार्य में पूर्णरूपेण सम्भव नहीं हो पाता, क्योंकि प्राकृतिक नियमों के अनुसार शरीर को भूख, प्यास, निद्रा, तथा चलने आदि की क्रियाओं में भाग लेना पड़ता है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि पञ्चभौतिक तन से बँधी होने के कारण आत्मा पल-पल धनी के प्रेम में नहीं डूब पाती। कहीं न कहीं संसार सामने आ ही जाता है।

"भार" शब्द का तात्पर्य महत्ता, प्राथमिकता आदि है, जो श्रीमुखवाणी की इन चौपाइयों में स्पष्ट है।

इस चौपाई का सम्बोधन वस्तुतः सुन्दरसाथ के लिये है, महामति जी के लिये नहीं, क्योंकि वे तो धनी से

एकरस हो चुकी हैं।

जो मांगूं हक जान के, अर्स रूह कर हुआत।

तो तब हीं उमेद पोहोंचहीं, जो दिल में यों उपजत॥१६॥

मेरे दिल में ऐसा विचार आता है कि यदि मैं स्वयं को परमधाम की आत्मा का दावा करके धनी से कुछ भी माँगू, तो वह अवश्य ही पूरी होगी।

भावार्थ— इस चौपाई के कथन पर यह संशय होता है कि क्या श्री देवचन्द्र जी ने स्वयं को अँगना मानकर नहीं माँगा था, जो उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने स्वयं को अँगना तो अवश्य माना, किन्तु धनी से जागनी की माँग करते समय उनका जीव-भाव आगे हो गया और आत्म-भाव पीछे रह गया।

अपनी भक्ति का वास्ता देकर ६९ से अधिक पत्रों द्वारा अपनी माँग करना यह स्पष्ट करता है कि उन्होंने अपनी निस्बत की पूरी पहचान नहीं की। निस्बत की पूरी पहचान हो जाने के पश्चात् तो जिद का प्रश्न ही नहीं होता।

जैसा हक है सिर पर, तैसा तेहेकीक जानत नाहें।

बिसर जात है नींद में, दृढ़ होत न ख्वाब के माहें॥१७॥

सर्वसमर्थ अक्षरातीत हमारे सिर पर जिस प्रकार विराजमान हैं, उसकी पूर्ण पहचान हमें नहीं हो पाती है। उनकी पहचान इस मोह के ब्रह्माण्ड में भूल जाया करती है। इस सपने के संसार में उनकी पहचान में दृढ़ता नहीं हो पाती है।

भावार्थ— सिर पर विराजमान होने का तात्पर्य है —

शाहरग (प्राणनली) से भी नजदीक होना। श्रीमुखवाणी को पढ़ने एवं सुनने से यह बात ज्ञात तो होती है, किन्तु माया के प्रभाव से उनकी अनुभूति नहीं हो पाती, जिसका परिणाम यह होता है कि हम यही मान बैठते हैं कि श्री राज जी हमसे बहुत दूर हैं।

जो मांग्या है ख्वाब में, सो हकें पूरा सब किया।

सो बोहोत ना मोहे सुध परी, जो ख्वाब के मिने दिया॥१८॥

इस संसार में मैंने धनी से जो कुछ भी माँगा है, उसे उन्होंने अवश्य पूरा किया है। इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी प्रियतम ने मुझे इतना अधिक दिया है कि मैं उनकी अधिकांश न्यामतों (नेमतों) को पहचान ही नहीं पायी।

भावार्थ— निस्वत के अधिकार से प्रेम में डूबकर श्री इन्द्रावती जी ने धनी से माँगा, इसलिये उनकी प्रत्येक

माँग स्वीकार की गयी। यह सौभाग्य प्रत्येक सुन्दरसाथ को प्राप्त है, किन्तु कोई विरला ही इसका लाभ उठा पाता है।

जो मैं मांगूँ जाग के, और जागे ही में पाऊँ।

तो कारज सब सिद्ध होवहीं, जो फैलें नींद उड़ाऊँ॥१९॥

यदि मैं धनी के द्वारा कहे हुए वचनों को आचरण में लाकर अपने अन्दर की नींद (माया) को समाप्त कर लूँ और जाग्रत होकर धनी से माँगूँ तथा जाग्रत अवस्था में ही उसे पा लूँ, तो यह निश्चित रूप से कहा जायेगा कि मेरे सभी कार्यों का लक्ष्य पूर्ण हो गया।

भावार्थ— युगल स्वरूप की छवि को अपने धाम हृदय में बसा लेना ही आत्मिक रहनी है। ऐसा करने पर ही हृदय से माया हटती है एवं दिल में धनी विराजमान होते हैं।

इस अवस्था में धनी से कुछ भी (परार्थ) माँगने पर अवश्य ही प्राप्त होता है और जीवन का यही प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए।

ए जो नींद उड़ाई कौल में, जो कदी फैल में उड़त।

तो निसबत इन की हक सों, आवत अर्स लज्जत॥२०॥

जिस प्रकार ज्ञान के कथन द्वारा माया की नींद उड़ायी गयी है, उसी प्रकार यदि आचरण के द्वारा उड़ा (समाप्त कर) दी जाती, तो अपना सम्बन्ध अक्षरातीत से जुड़ जाता और परमधाम का स्वाद आने लगता (अनुभूति होने लगती)।

भावार्थ— श्रीमुखवाणी के चिन्तन-मनन द्वारा ज्ञान दृष्टि से यह मान लेना कि हमारे मूल तन परमधाम में विराजमान हैं जिस पर माया के विकारों का कोई भी

असर नहीं पड़ सकता, और हमारी आत्मा भी उसी परात्म की सुरता है जिस पर माया का कोई भी प्रभाव वस्तुतः नहीं पड़ेगा, इस प्रकार की स्थिति कथनी द्वारा माया की नींद को उड़ाना है। अपनी आत्मिक दृष्टि से अपने मूल तन एवं युगल स्वरूप का दीदार करके नींद उड़ाना आचरण (करनी) द्वारा नींद समाप्त करना है। चौपाई का यह कथन सुन्दरसाथ के लिये है, महामति जी के लिये नहीं।

जो पाइए इत लज्जत, तो होवे सब बिध।

कायम सुख इन अर्स के, सब काम होवें सिध॥२१॥

यदि परमधाम के अखण्ड सुखों का स्वाद इस संसार में मिल जाये, तो यही मानना पड़ेगा कि सभी काम हर प्रकार से पूर्ण हो गये हैं।

भावार्थ- अक्षरातीत के प्रेम और आनन्द को प्राप्त करना ही जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है। इस लक्ष्य को प्राप्त करना ही हमारा सर्वोपरि उद्देश्य होना चाहिए। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

तो न पाइए इत लज्जत, जो फैल न आवत हाल।

हाल आए क्यों सेहे सके, बिछोहा नूर-जमाल॥२२॥

यदि करनी से रहनी की स्थिति नहीं होती , तो इस संसार में परमधाम के सुखों का अनुभव होना कठिन है। रहनी में आ जाने पर तो आत्मा के लिये अपने प्रियतम अक्षरातीत का वियोग सहन करना असम्भव है।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई २० में कहा गया है कि कथनी से करनी में आने पर ही परमधाम की लज्जत (स्वाद) आती है, तो चौपाई २२ में कहा गया है कि

करनी से रहनी में आये बिना लज्जत नहीं मिलती। इस प्रकार के कथन से विरोधाभास की आशंका जतायी जा सकती है, किन्तु तत्त्वतः ऐसा नहीं है। करनी का परिपक्व रूप ही रहनी है।

रहनी में यथार्थ रूप से स्थित हो जाना ही करनी की पराकाष्ठा (चरम सीमा) है। रहनी में स्थित हुए बिना केवल करनी से आंशिक लाभ की ही सम्भावना है, क्योंकि माया के प्रभाव से करनी से फिसलने (च्युत हो जाने) का भी डर रहता है। इस प्रकार दोनों चौपाइयों (२०, २२) के कथनों में किसी भी प्रकार का विरोधाभास नहीं है।

ऐसा हक है सिर पर, कर दर्ई हक पेहेचान।

ऐसी हक की मैं जोरावर, क्यों रहे दीदार बिन प्रान॥२३॥

मेरे सिर पर सर्वसमर्थ मेहेर के सागर अक्षरातीत विराजमान हैं। उन्होंने ही मुझे अपनी तथा मेरे निज स्वरूप की पहचान दी है। अब मेरे अन्दर हक की "मैं" आ गयी है, अर्थात् मुझे अपने परात्म स्वरूप की पहचान हो गयी है। ऐसी स्थिति में धनी का दीदार किये बिना इस शरीर में प्राणों का रह पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ— परात्म तथा धनी का स्वरूप एक ही है, क्योंकि वहदत में किसी भी प्रकार की विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। इसी को हक की "मैं" कहते हैं। शरीर तथा जीव भाव का परित्याग कर देने पर प्रियतम की विरह की ऐसी अवस्था आ जाती है कि दर्शन के बिना एक-एक पल व्यतीत करना बहुत कठिन हो जाता है।

ए जो मैं खुदाए की, क्यों रहे दीदार बिन।

क्यों रहे सुने बिना, मीठे पिउ के वचन॥२४॥

मेरे अन्दर प्रियतम की "मैं" आ गयी हैं, जिससे न तो अब मैं उनके दर्शन किये बिना रह सकती हूँ और न ही उनके मीठे वचनों को सुने बिना शरीर रख सकती हूँ।

भावार्थ- यह स्थूल शरीर और जीव भाव विरह में बाधक हैं, क्योंकि जन्म-जन्मान्तरों की वासनायें इस शरीर से जुड़ चुकी हैं। परात्म का बोध होने पर शरीर एवं संसार स्वप्नवत् लगते हैं तथा हृदय में विरह की रसधारा प्रवाहित होने लगती है।

एक पल जात पिउ दीदार बिना, बड़ा जो अचरज ए।

ए जो मैं है हक की, सो क्यों खड़ी बिछोहा ले॥२५॥

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रियतम के दीदार के

बिना एक-एक पल कैसे बीता जा रहा है? मेरे अन्दर धनी की "मैं" आ गयी है तथा विरह की अवस्था भी है, किन्तु आश्चर्य है कि धनी के बिना इस संसार में मैं क्यों रह रही हूँ?

भावार्थ- इस चौपाई में निज स्वरूप की पहचान (धनी की मैं) ज्ञान दृष्टि द्वारा कही गयी है। ज्ञान के द्वारा ही ईमान (अटूट विश्वास) और समर्पण का भाव आता है, जिससे विरह का रस प्रकट होता है। विरह-प्रेम में डूबने पर ही अपनी परात्म का साक्षात्कार होता है, जो अपने निजस्वरूप की वास्तविक पहचान है।

छल में आप देखाइया, दिया अपना इलम।

मैं आप पेहेचान ना कर सकी, न कछू चीन्ह्या खसम॥२६॥

हे धनी! आपने हमें इस छल रूपी प्रपञ्च में भेजकर

माया का खेल दिखाया है। आपने मेरे धाम हृदय में बैठकर अपना ज्ञान भी दिया है। फिर भी न तो मैं अपने स्वरूप की पूरी पहचान कर सकी और न ही आपकी पहचान कर सकी।

भावार्थ- इस चौपाई में "आप देखाइया" का तात्पर्य स्वयं को दिखाने से नहीं, बल्कि स्वयं को खेल दिखाने से है। यद्यपि इस खेल में ही निजस्वरूप की वास्तविक (मारिफत की) पहचान हुई है, किन्तु यहाँ वह प्रसंग नहीं है।

धनी मेरा अर्स का, मैं तुमारी अरधंग।

भेख बदल सुनाए वचन, दिया दीदार बदल के अंग॥२७॥

मेरे प्राण प्रियतम! आप मेरे धाम के धनी हैं और मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। आपने श्री देवचन्द्र जी के धाम-

हृदय में विराजमान होकर तारतम ज्ञान का प्रकाश दिया और उस तन को भी छोड़कर हब्सा के अन्दर आवेश स्वरूप से दर्शन दिया।

भावार्थ- हब्सा में दर्शन देने वाला स्वरूप परमधाम के ही श्रृंगार में था। श्री इन्द्रावती जी ने अपने आत्म-चक्षुओं से युगल स्वरूप को साक्षात् देखा।

मैं बीच फरामोसी के, तुम आए सूरत बदल।

पेहेचान क्यों कर सकूं, इन वजूद की अकल॥२८॥

इस स्वप्नमयी संसार में आप अपना रूप बदलकर आये थे, इसलिये अपनी माया की बुद्धि से भला मैं आपकी पहचान कैसे कर सकती थी?

भावार्थ- परमधाम का स्वरूप नूरमयी एवं किशोर है, जबकि इस संसार में धाम धनी श्री देवचन्द्र जी के तन में

चालीस वर्ष की अवस्था में विराजमान हुए थे। पञ्चभौतिक तन में कोई न कोई मायाजन्य दोष (विकार) भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में, बिना प्रियतम की कृपा के, उस तन में बैठे हुए स्वरूप को पहचानना बहुत कठिन है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

तालब तो भी तुमसे, इस्क नहीं तुम बिन।

सब्द सुख भी तुम से, तुम ही दिया दरसन॥२९॥

कुछ माँगने की इच्छा भी आपसे है। आपके बिना अन्य कहीं पर इश्क भी नहीं है। अमृत के समान मीठी बातों का सुख भी केवल आप ही देते हैं और मधुर दर्शन (शर्बत-ए-दीदार) भी आप ही देते हैं।

ए उपजावत तुमहीं, तुमहीं दिखलावत।

तुमहीं खेल खेलावत, तुमहीं समें बदलत॥३०॥

समर्पण के रस में सनी हुई इस तरह की मधुरतम भावनायें भी आप ही उपजाते हैं तथा आप ही स्वयं अपना स्वरूप भी दिखलाते हैं। माया का यह सम्पूर्ण खेल आपके ही निर्देशन में खेलाया जा रहा है। अलग-अलग परिस्थितियों में आप अध्यात्म की अलग-अलग अनुभूतियाँ कराते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय पैदा हो सकता है कि जब श्री राज जी वहदत की मारिफत के स्वरूप हैं, तो वे सभी को एकसाथ ही अपने स्वरूप का दीदार क्यों नहीं करा देते क्योंकि इस चौपाई में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आप स्वयं ही अपनी मेहर की दृष्टि से अपने स्वरूप का दीदार कराते हैं?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि "मेहर सब पर मेहेबूब की, पर पावें करनी माफक।" इस खेल में अपनी करनी के अनुसार ही सबको फल मिलता है। परमधाम में परात्म का स्वरूप वहदत में है, वहाँ सबकी जागनी एकसाथ होनी है, किन्तु यहाँ पर अलग-अलग समय पर अपनी करनी के आधार पर जागनी होनी है। यही कारण है कि सबको एकसाथ दीदार नहीं दिया जा सकता। इश्क की कसौटी पर खरा उतरने पर ही दीदार होगा— "ल्याओ प्यार करो दीदार।"

"समें" का शुद्ध रूप "शमां" है, जिसका भाव होता है— वह आध्यात्मिक अनुभव जिसमें आत्मा आनन्द में डूब जाये।

मैं को तुम खड़ी करी, मैं को देखाई तुम।

मैं को तले कदम के, खड़ी राखी माहें हुकम॥३१॥

मेरे प्रियतम! आपने इस संसार में मेरी "मैं" को खड़ा किया, अपने तारतम ज्ञान से उसकी पहचान करायी, तथा आपने ही अपनी मेहर की छाँव तले अपने हुकम द्वारा मेरी "मैं" को अपने चरणों में रखा।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि यहाँ किसकी "मैं" का प्रसंग है- परात्म की, आत्मा की, या जीव की?

परात्म की "मैं" तो वहदत में है, जो हक का ही स्वरूप है। जीव की "मैं" शरीर और संसार से जुड़कर अज्ञान की अवस्था में है। इसलिये यहाँ इन दोनों से भिन्न आत्मा की "मैं" का प्रसंग है, जो तारतम ज्ञान से धनी की कृपा की छाँव तले परात्म का श्रृंगार सजकर धनी के चरणों में

होती है।

तुमहीं साथ जगाइया, तुम दर्ई सरत देखाए।

तुमहीं तलब करावत, तो दरसन को हरबराए॥३२॥

आप ही सुन्दरसाथ को जाग्रत कर रहे हैं और आपने ही कियामत के समय की पहचान करायी है। आप ही हमारे अन्दर यह इच्छा पैदा कर रहे हैं कि आपका दीदार करें। इसी कारण हमारे मन में आपके दीदार के लिये व्याकुलता पैदा हो रही है।

तुमहीं दिल में यों ल्यावत, मैं देखों हक नजर।

सो पट तुमहीं से खुले, तुमसे टले अन्तर॥३३॥

मेरे दिल में आप ही इस प्रकार की भावना लाते हैं कि मैं आपका दीदार करूँ। हमारे और आपके बीच में जो

माया का पर्दा है, वह आपकी कृपा से ही हट सकता है, तथा हमारे और आपके बीच में एकाकार होने में जो बन्धन है, वह भी आपकी मेहर से ही समाप्त हो सकता है।

श्रवनों सब्द सुनाए के, दिल दीदे दीदार।

अनेक हक मेहेरबानगी, सो कहां लो कहूँ सुमार॥३४॥

हे धनी! आपने मेरे कानों में ब्रह्मवाणी के अमृतमयी शब्द उड़ेल दिये और अपने दिल के नेत्रों से मैंने आपका दीदार भी कर लिया। आपने इस प्रकार इतनी मेहर बरसायी है, जिसकी कोई भी सीमा नहीं है। उसे मैं अपने शब्दों में कहाँ तक कह सकती हूँ।

भावार्थ— सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से श्री राज जी ने श्री मिहिरराज जी को ब्रह्मज्ञान रूपी अमृत का

(कानों से) रसपान कराया, यहाँ यही बात दर्शायी गयी है। श्री इन्द्रावती जी ने अपने प्राणवल्लभ का हब्सा के अन्दर दर्शन किया, जिसे दिल की आँखों से देखना कहा गया है।

वस्तुतः दिल (हृदय) ही आत्मा का चक्षु है, जिससे प्रियतम का दर्शन किया जाता है। यद्यपि जीव का दिल त्रिगुणात्मक होता है, उससे ब्रह्म का दर्शन कदापि सम्भव नहीं होता, किन्तु आत्मा का दिल जीव के दिल से पूर्णतया भिन्न होता है। जिन साधनों से आत्मा की क्रियाशीलता दृष्टिगोचर होती है, उन्हें ही अन्तःकरण या दिल (हृदय) कहते हैं। इस प्रकार आत्मा के दिल को परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब कहा जाता है।

इसी कारण सागर ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है – "ताथे हिरदे आत्म के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।" यह

कथन स्पष्ट करता है कि आत्मा के दिल (नेत्रों) से ही धनी को देखना है और उस शोभा को आत्मा के दिल (नेत्रों) में बसाना है।

जोस इस्क और बंदगी, चलना हक के दिल।

ए बकसीस सब तुम से, खुसबोए वतन असल॥३५॥

आपकी मेहर का ही यह फल है कि मैं आपके इश्क के जोश तथा प्रेम-भक्ति में डूबी रही और आपके दिल की तरफ लगी रही। आपकी ही मेहर से मुझे अखण्ड परमधाम की सुगन्धि भी मिलती रही।

भावार्थ- हक के दिल के अनुसार चलने और हक के दिल की ओर चलने के भावों में अन्तर है। हक के दिल की इच्छा तो हुक्म (आदेश) है, जिसका उल्लंघन करने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। हक के दिल में डूबना

तो प्रेम की उन गहराइयों में प्रवेश करना है, जिसके द्वारा एकरूपता की स्थिति प्राप्त की जाती है। श्री राज जी के दिल में इश्क, वहदत, इल्म, निस्बत आदि के अनन्त सागर हैं। उनमें डुबकी लगाने के लिये संसार से मुख मोड़कर धनी की तरफ लग जाना ही हक के दिल की तरफ चलना कहा जायेगा।

और कई इनाएतें तुम से, सो कहाँ लो कहूं वचन।

सो कई आवत हैं नजरोँ, पर कह्यो न जाए सुकन॥३६॥

इस प्रकार आपने मेरे ऊपर अनेक प्रकार से मेहर की, जिसको शब्दों में वर्णन करना मेरे लिये सम्भव नहीं है। उसमें कुछ मेहर तो प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर भी होती हैं, किन्तु उसको वाणी से यथार्थ रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भावार्थ- मेहर और कृपा में सूक्ष्म अन्तर होता है। मेहर का सम्बन्ध आत्मिक भावों में होता है , जबकि कृपा (इनायत) का सम्बन्ध जीव भाव से होता है। वस्तुतः मेहर का मूल अर्थ होता है – इश्क, वहदत, निस्बत, और खिल्वत आदि का उद्गम (श्रोत)। संक्षेप में ऐसा भी कहा जा सकता है कि अक्षरातीत के हृदय से उमड़ने वाले आठों सागरों का रस ही मेहर है। जीव परमधाम की इन न्यामतों को पूर्ण रूप से नहीं, बल्कि आंशिक रूप में ही आत्मसात् कर पाता है, जिसे कृपा की संज्ञा दी जा सकती है।

मैं अपनी अकलें केती कहूं, तुम करावत सब।

बाहेर अंदर अन्तर, या तबहीं या अब॥३७॥

मेरे धाम धनी! मैं अपनी बुद्धि से आपकी मेहर का वर्णन

कैसे कर सकती हूँ? मेरे तन से सब कुछ करवाने वाले तो आप ही हैं। चाहे परमधाम से बाहर की ब्रज लीला हो, या योगमाया के अन्दर की रास लीला, या इनसे भिन्न जागनी की लीला हो। इसके अतिरिक्त परमधाम में आनन्दमयी लीला का प्रसंग हो या अब की लीला हो, सब कुछ करवाने वाले आप ही हैं।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में जो कहा गया है कि "सब कुछ करवाने वाले आप ही हैं" का भाव यह है कि ब्रज-रास में अक्षर ब्रह्म की आत्मा से तथा इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री श्यामा जी और श्री इन्द्रावती जी की आत्मा से जो कुछ भी ब्रह्मलीला हुई है, उसे करवाने वाले स्वयं धाम धनी ही हैं।

इस चौपाई में बाहर, अन्दर, तथा अन्तर का भाव पिण्ड, ब्रह्माण्ड, और परमधाम से न होकर ब्रज, रास,

और जागनी से होगा, क्योंकि ब्रज लीला परमधाम से बाहर कालमाया में खेली गयी तथा रास योगमाया के ब्रह्माण्ड में खेली गयी। ये दोनों लीलायें स्वप्न के समान हैं। इन दोनों से भिन्न जागनी की लीला है, जो इस खेल में ही परमधाम का अहसास कराती है। इसलिये जागनी लीला को अन्तर (भिन्न) शब्द से सम्बोधित किया गया है। कलस हिन्दुस्तानी २३/७५ में जागनी के प्रकरण में ब्रज-रास को स्वप्न के समान माना गया है—

एक सुख सुपन के, दूजा जागते ज्यों होए।

तीन लीला पेहेले ए चौथी, फरक एता इन दोए।।

अर्थात् ब्रज, रास, और श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला स्वप्न के समान है, तथा श्री जी के द्वारा होने वाली जागनी लीला प्रत्यक्ष रूप से परमधाम की तरह है।

जानो तो राजी रखो, जानो तो दलगीर।

या पाक करो हादीपना, या बैठाओ मोहे तकसीर॥३८॥

यह तो आपकी मौज (इच्छा) पर निर्भर करता है कि आप मुझे आनन्दित रखें या उदास रखें। मेरे हृदय को पवित्र करके उसमें विराजमान होकर मुझे हादी की शोभा देना भी आपके ही हाथों में है तथा मेरा गुन्हेगारों की पंक्ति में खड़ा रहना भी आपकी इच्छा पर निर्भर है।

अब मेरा केहेना ना कछू, तुमहीं केहेलावत ए।

मेरे कहे मैं रेहेत है, पर सब बस हुकम के॥३९॥

अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है। यह सारी बातें तो आप ही मेरे तन से कहलवा रहे हैं। यदि मैं यह कहूँ कि मैं कह रही हूँ, तो इसमें मेरी "मैं" (खुदी) झलकती है। अतः यह स्पष्ट है कि सब कुछ आपके हुकम से ही हो

रहा है।

अब सब के मन में ए रहे, इत दिल चाह्या होए।

तो पाइए खेल खुसाली, हक जानत सब सोए॥४०॥

हे धनी! अब तो सब सुन्दरसाथ की यही इच्छा है कि जिसके दिल में जो भी इच्छा हो, वह पूर्ण हो जाए। यदि ऐसा होता है तो निश्चित रूप से इस खेल का आनन्द लिया जा सकता है। निश्चय ही धाम धनी हमारे मन की सारी इच्छाओं को जानते हैं।

ए भी तुम केहेलावत, कारन उमत के।

अर्स वजूद के अंतर में, तुम पेहेले उपजावत ए॥४१॥

ब्रह्मसृष्टियों को सुख देने के लिये ही आप इस तरह की बात हमसे कहलवाते हैं। सबसे पहले इस तरह की बात

आप परमधाम के परात्म के तनों में ही डालते हैं। इसके पश्चात् आत्मा के तन द्वारा इस संसार में इच्छा व्यक्त की जाती है।

भावार्थ— यद्यपि "अंतर" का अर्थ भिन्न होता है, किन्तु इस चौपाई के तीसरे चरण में प्रयुक्त यही शब्द "अन्तर्गत" का सूक्ष्म रूप है, जिसका तात्पर्य भीतर ही होता है। श्री राज जी के द्वारा मूल तन में जो भावना भरी जाती है, आत्मा के तन द्वारा इस संसार में वही बात प्रकट हो जाती है।

असल हमारी अर्स में, ताए ख्वाब देखावत तुम।

जैसा उत ओ देखत, तैसा करत हैं हम॥४२॥

हमारे मूल तन परमधाम में हैं, जहाँ वे श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर इस मायावी खेल को देख रहे हैं। वहाँ

पर उन्हें जैसा दिखायी देता है, वैसे ही हमारी आत्मा भी यहाँ पर कार्य करती है।

भावार्थ- परदे दो हैं- १. श्री राज जी का दिल रूपी परदा, २. फरामोशी का परदा।

श्री राज जी ने परात्म की नजर को अपनी नजर में लेकर अपने दिल रूपी परदे पर इस सम्पूर्ण खेल (ब्रज, रास, और जागनी) को दिखाया है। जिस प्रकार कमरे के अन्दर बैठे-बैठे दूरदर्शन के परदे पर हजारों कि.मी. दूर का दृश्य देखा जाता है, उसी प्रकार मूल मिलावा में बैठे-बैठे श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर इस सम्पूर्ण खेल को देखा जा रहा है। परात्म का स्वरूप और दिल भी श्री राज जी का ही स्वरूप और दिल है, इसलिये श्री राज जी ने अपने दिल में जो पूर्व नियोजित कार्यक्रम (master plan) ले रखा है, वह परात्म के दिल में आना

स्वाभाविक ही है। आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है। इस प्रकार आत्मा के तन से इस खेल में वही सब होगा, जो परात्म चाहेगी।

संक्षेप में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि खेल का निर्देशन श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर हो रहा है, जबकि वह दिख रहा है फरामोशी के परदे (कालमाया के ब्रह्माण्ड) में। परात्म श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर खेल को देख रही है तथा आत्मा फरामोशी के परदे में जीव के ऊपर विराजमान होकर खेल को देख रही है।

इन विध गुनाह हम पर, लागत नहीं कोए।

मैं तो इत नहीं कितहूं, इत उत किया हक का होए॥४३॥

इस प्रकार देखा जाये तो हमारे ऊपर किसी भी प्रकार का गुनाह नहीं लगना चाहिए, क्योंकि मैं तो इस संसार में

कुछ हूँ ही नहीं। इस संसार में और परमधाम में जो कुछ भी हो रहा है, वह सब श्री राज जी ही तो कर रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में आत्मा के ऊपर गुनाह न लगने की बात इसलिये कही गयी है क्योंकि यदि आत्मा अपनी "मैं" को लेकर कुछ करती, तब तो गुनाह लगता। जब धनी के निर्देशन में परात्म की भावना के अनुसार ही आत्मा सब कुछ करती है, तो गुनाह (अपराध) का प्रश्न ही कहाँ होता है?

भुलाए दिया तुम हम को, आप वतन खसम।

ताथें खुदी मैं ले खड़ी, झूठे खेल में आतम॥४४॥

मेरे प्राण प्रियतम अक्षरातीत! आपने हमें इस माया में भूल-भुलैया में डाल दिया है, जिसके कारण हम स्वयं को, आप को, तथा निजघर को भी भुला बैठी हैं। इस

झूठे खेल से सम्बन्ध जुड़ने के कारण ही आत्मा "मैं खुदी" लेकर खड़ी हो गयी है।

भावार्थ- वस्तुतः आत्मा में किसी भी प्रकार की "मैं" नहीं होती, किन्तु जीव और माया (शरीर + इन्द्रिय + अन्तःकरण + संसार) के संयोग से उसमें "मैं" के अस्तित्व का भान होता है। अपने शुद्ध स्वरूप में तो वह परात्म का प्रतिबिम्ब है, जिसमें किसी भी प्रकार की "मैं" होने की सम्भावना ही नहीं है।

आप छिपाया तुम हम सैं, झूठे खेल में डार।

फेर कर तुम खड़ी करी, करके गुन्हेगार॥४५॥

आपने हमें इस झूठे खेल में डाल दिया तथा स्वयं को हमसे छिपा लिया। माया में अपने प्रियतम को भूल जाने का दोष लगाकर आपने पुनः ज्ञान द्वारा ईमान पर खड़ा

भी कर दिया है।

भावार्थ- खड़ा करने का तात्पर्य धनी के प्रति अटूट विश्वास कराने से है। जब आत्मा संसार को पीठ देकर धाम धनी को अपना सर्वस्व मानने लगे, तो उसे ईमान पर खड़ा हो जाना कहते हैं। खेल में आते समय भी धनी ने सावचेत किया था और इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी वाणी के ज्ञान द्वारा पुनः ईमान पर खड़ा किया है। इस चौपाई के तीसरे चरण में यही भाव दर्शाया गया है।

फेर तुम हमको अकल दर्ई, मैं खुदी पकड़ी सोए।

जो जैसी करेगा, तैसी पावेगा सोए॥४६॥

मैं इस संसार में मैं खुदी का शिकार बन गयी। उससे छूटने के लिये आपने हमें पुनः जाग्रत बुद्धि भी दी। अब तो जो जैसी करनी करेगा, उसके अनुसार ही उसको

वैसा फल मिलेगा।

भावार्थ- मैं खुदी का बन्धन अज्ञान के कारण ही होता है। जाग्रत बुद्धि के द्वारा ही "मैं" का बन्धन समाप्त होता है। खिलवत ३/३ में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

अब मैं मरत है इन बिध, और न कोई उपाए।

खुदाई इलम सो मारिए, जो हकें दिया बताए॥

अज्ञानता के कारण "मैं" के बन्धन में बँधे रहने वालों को तो क्षमा हो सकती है, किन्तु जाग्रत बुद्धि के ज्ञान को पाकर भी जो अपराध (गुनाह) करेंगे, उनके लिये क्षमा नहीं है। उन्हें अपने कर्मों के अनुसार भुगतना पड़ेगा। इसे श्रीमुखवाणी में इस प्रकार दर्शाया गया है-

जब लग भूली वतन, तब लग नाहीं दोष।

जब जागी हक इलमें, तब भूली सिर अफसोस॥

किरंतन ११८/६

आप भी भेख बदल के, आए अपना दिया इलम।

सब बातें कही वतन की, पर पेहेचान ना सकें हम॥४७॥

हे धाम धनी! आप स्वयं भी भेष बदलकर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में एक मानव तन में आये। उस स्वरूप में आपने जाग्रत बुद्धि का ज्ञान दिया और परमधाम की सारी बातें कहीं, किन्तु माया की फरामोशी के कारण हम आपकी पहचान नहीं कर सके।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय हो सकता है कि माया की फरामोशी का प्रभाव तो अब भी है, किन्तु इस समय जागनी लीला की बात क्यों की जाती है, जबकि श्यामा जी के पहले तन में जागनी लीला को नकारा जाता है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि उस समय परमधाम की वाणी (खिलवत, परिक्रमा, सागर,

और श्रृंगार) का अवतरण नहीं हुआ था। इसके बिना जागनी कदापि सम्भव नहीं थी।

ब्रह्मसृष्टि हुती बृजरास में, प्रेम हुतो लछ बिन।

सो लक्ष्य अव्वल को ल्याए रुहअल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन॥

जोलों मुतलक इलम न आखिरी, तोलों क्या करे खास उमत।

पेहेचान करनी मुतलक, जो गैब हक की खिलवत॥

सिनगार १/४७,४८

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली आड़िका लीला के प्रवाह में सभी सुन्दरसाथ बह गये। परमधाम की वाणी के अवतरित न होने से निस्वत, इश्क, और वहदत की मारिफत की पहचान नहीं हो सकी। ऐसी स्थिति में जागनी सम्भव नहीं। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन के ओझल होते ही सबने यही मान लिया कि हमारे धाम धनी परमधाम चले गये हैं।

इत भी गुनाह सिर पर हुआ, याद न आया असल।

तुम रोए लखीज कहया, तो भी रही ना मूल अकल॥४८॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप में आपने रो –
रोकर तथा लड़-झगड़कर मुझे बहुत समझाया, फिर भी
मुझे मूल सम्बन्ध की सुधि (याद) नहीं रही। उस समय
मेरे अन्दर परमधाम वाली निज बुद्धि ही नहीं थी कि मैं
आपको यथार्थ रूप में पहचान पाती। मेरे ऊपर इस बात
का बहुत बड़ा गुनाह लग गया।

भावार्थ- रोना या खीझना मानवीय स्वभाव है,
अक्षरातीत का नहीं। इस चौपाई में धाम धनी को जो रोने
और खीझकर जगाने का प्रयास करने वाला कहा गया
है, वह मात्र सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के जीव का
स्वभाव है। अक्षरातीत का आवेश कूटस्थ होकर ही
लीला करता है। वह मानवीय स्वभाव से सर्वथा परे है,

किन्तु श्री इन्द्रावती जी ने श्रद्धा के वशीभूत होकर सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी के उस व्यवहार को भी श्री राज जी के साथ संयुक्त करके प्रस्तुत किया है।

इस चौपाई में गुनाह लगने की बात कही गयी है, किन्तु इसी प्रकरण की ४३वीं चौपाई में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आत्मा को कोई भी गुनाह नहीं लगता।

इसका मूल कारण यह है कि आत्मा जब हक की "मैं" लेकर खड़ी होती है तथा धनी की प्रेरणा से कुछ भी कार्य करती है तो उसे गुनाह नहीं लगता, किन्तु जब जीव और शरीर से संयुक्त होकर संसार की "मैं" लेकर कार्य करती है तो गुनाह अवश्य लगता है, क्योंकि नाम तो उसने परात्म का ले रखा है जबकि कार्य लौकिक भावों में डूबकर कर रही है। यद्यपि परमधाम में भी परात्म के तनों का कोई नाम नहीं है, किन्तु उनको लक्ष्य

करके इस संसार में जो नाम रखे जाते हैं, उन्हें ही परात्म का नाम मान लिया जाता है।

यहाँ यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि सभी लौकिक एवं विरह आदि में डूबने का कार्य जीव ही करता है। आत्मा मात्र दृष्टा है। वह परात्म के गुणों के अनुसार मात्र धनी से प्रेम करती है, उनका दीदार करती है, तथा आनन्द में डूबती है। उस आनन्द का कुछ अंश जीव को देती है और अपनी राह पर चलने के लिए उसे प्रेरित करती है। शेष सब कुछ जीव को ही करना पड़ता है।

वयों गुनाह अनेक भांत का, हुआ हमारे सिर।

हम कछू ना कर सके, तो भी खबर लई हकें फेर॥४९॥

इस प्रकार हमारे ऊपर अनेक प्रकार का गुनाह लग गया। हम आपकी पहचान करके प्रेम और समर्पण के क्षेत्र

में कोई कदम नहीं बढ़ा सके। पुनः आपने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मेरी सुध ली।

कई सुख हमको अर्स के, भांत भांत दिए अपार।

तो भी नींद हमारी न गई, इत भी हुए गुन्हेगार॥५०॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से मुझे परमधाम के कई प्रकार के सुखों का अनुभव कराया, जिनके आनन्द की कोई सीमा नहीं है। इतना होने पर भी हमारे अन्दर से माया की नींद नहीं समाप्त हो सकी, जिसका अपराध हमारे ऊपर है।

कर मनसा वाचा करमना, सब अंगों कर हेत।

केहे केहे हारे हमसों, पर मैं न हुई सावचेत॥५१॥

आपने मुझे जाग्रत करने के लिये अपने सम्पूर्ण हृदय से

प्यार किया। मुझे मन, वाणी, और कर्म से तरह-तरह से समझाया। समझाते-समझाते सद्गुरु के रूप में आप थक कर हार गए, किन्तु मैं अपनी आत्म-जाग्रति के प्रति सावचेत नहीं हो सकी।

भावार्थ- सभी अंगों से लाड-प्यार करने का अभिप्राय है- सम्पूर्ण अन्तःकरण अर्थात् मन, चित्, बुद्धि, एवं अहंकार से स्नेह करना।

मानसिक संकल्प से जाग्रत होने के लिये प्रेरित करना मन से समझाना है, चर्चा सुनाकर समझाना वाणी से समझाना है, तथा चितवनि कराकर जाग्रति के लिये प्रयास करना कर्म द्वारा जाग्रति का प्रयास है। हारने की बात मात्र सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के लिये है, मूल स्वरूप के लिये नहीं। यहाँ भी ४८वीं चौपाई जैसा प्रसंग समझना चाहिए।

यों कई गुनाह केते कहूं, सब ठौरों गई भूल।

कई देखाए गुन अपने, ताको तौल न मोल॥५२॥

मुझसे तो इतने अधिक गुनाह हुए हैं कि मैं उनका वर्णन ही नहीं कर सकती। मैं हर स्थिति एवं घटनाक्रम में आपको भूली रही, फिर भी आप मेरे ऊपर मेहर की ऐसी वर्षा करते रहे हैं कि न तो कोई उसका मूल्यांकन कर सकता है और न उसका बदला दे सकता है।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "ठौर" शब्द का बाह्य अर्थ यद्यपि स्थान होता है, किन्तु इसका मूल भाव विभिन्न घटनाक्रमों से है। इश्क, इल्म, निस्बत का अखण्ड सम्बन्ध आदि धनी के गुण हैं, जिनका समावेश मेहर शब्द में हो जाता है।

मोल (खरीदने) का भाव यह है कि जिस प्रकार हमारे ऊपर धाम धनी मेहर की वर्षा करते हैं, उसके प्रत्युत्तर

में हम न तो पूर्ण रूप से समर्पित हो पाते हैं और न ही उनके विरह-प्रेम में डूब पाते हैं।

सो गुन देखे मैं नजरों, जिनको नहीं सुमार।

तो भी पेहेचान न हुई, ना छूटी नींद विकार॥५३॥

मैंने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि धाम धनी ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से मेरे ऊपर इतनी मेहर की है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। इतना कुछ होने पर भी मैं माया के विकारों में फँसी रही और धाम धनी को पहचान नहीं सकी।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी को धनी के स्वरूप की वास्तविक पहचान हब्सा में हुई, जब उन्होंने विरह में स्वयं को डुबाया और अपने प्राणप्रियतम का प्रत्यक्ष दर्शन किया। इस चौपाई में यही शिक्षा दी गयी है कि भले

ही छठें दिन की लीला में धाम धनी प्राण की नली (शाहरग) से भी नजदीक हैं, किन्तु जब तक उनके विरह-प्रेम में डूबकर उनका दीदार नहीं किया जाता, तब तक माया के फन्दों से छूटने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

इस चौपाई में वर्णित "विकार" शब्द से अभिप्राय केवल काम-क्रोधादि विकार ही नहीं है, बल्कि इसका आशय यह है कि अक्षरातीत के दीदार से रहित होने पर ब्रह्मानन्द का अनुभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में माया का कोई न कोई सूक्ष्म बन्धन उसे बाँधे रहता है, भले ही वह कितना ही निर्मल हृदय वाला क्यों न हो।

पीछे आप जुदे होए के, भेज दिया फुरमान।

सो पढ़ा मैं भली भांत सों, करी सब पेहेचान॥५४॥

इसके पश्चात् आपने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का तन त्याग दिया और मेरे पास कुरआन भिजवा दी। मैंने उसे अच्छी तरह पढ़ा और आपकी सारी पहचान कर ली।

भावार्थ- वि. सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् श्री मिहिरराज जी आन्तरिक रूप से विरह की राह पर चल पड़े। संवत् १७१५ में तो उनकी विरहावस्था अपने चरम पर पहुँच गयी, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्वयं धाम धनी को प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनके धाम हृदय में विराजमान होना पड़ा। यहाँ से ग्रन्थ रूप में ब्रह्मवाणी का अवतरण प्रारम्भ हो गया। ऐसी अवस्था में श्री मिहिरराज जी को वेद पक्ष से धनी की पहचान तो थी, किन्तु कतेब पक्ष से नहीं थी।

वि.सं. १७३३-३४ में मेड़ता में पाँचों शक्तियों से पूर्ण हो जाने पर कुरआन के रहस्य खुलना शुरू हो गये थे।

दिल्ली में कायमउल्ला के मुख से तफसीर-ए-हुसैनी को सुनते ही उनकी अन्तर्दृष्टि वेद-कतेब का एकीकरण करने लगी। इसे ही कुरआन का पढ़ना कहा गया है। अन्य सांसारिक लोगों की तरह उन्होंने किसी व्यक्ति से कुरआन नहीं पढ़ा। खुलासा १५/५ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

पढ़या नाहीं फारसी, ना कछु हरफ आरब।

सुन्या न कान कुरान को, और खोलत माएने सब॥

जिस तन में कुरआन का सम्पूर्ण ज्ञान (९०,००० हरुफ) कहने वाले अक्षरातीत आवेश स्वरूप से विराजमान हों, सुनने वाली अक्षर की आत्मा (मुहम्मद) हो, लाने वाला जिब्रील हो, तथा उसके भेदों को खोलने वाला इस्माफील हो, और जिसके दिल के भेद ही मारिफत के ज्ञान के भण्डार हैं वह श्यामा जी ही जब

महामति जी के अन्दर विराजमान हों, तो ऐसे स्वरूप को पढ़ाने में इस ब्रह्माण्ड में कोई भी समर्थ नहीं है।

सो कुन्जी दई हाथ मेरे, कोई खोले न मुझ बिन।

सक्त नहीं त्रैलोक को, न कछु सक्त त्रैगुन॥५५॥

मेरे प्राण प्रियतम अक्षरातीत ने वेद-कतेब के छिपे हुए सभी अनसुलझे रहस्यों को स्पष्ट करने की कुञ्जी (चाबी) मुझे दी है। यह कार्य मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं कर सकता। तीनों लोकों (पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ) के सभी प्राणी या त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, और भगवान शिव) भी यदि धर्मग्रन्थों के इन रहस्यों को खोलना चाहें, तो उनके लिये भी यह सम्भव नहीं है।

भावार्थ- मात्र तारतम ज्ञान के द्वारा ही धर्मग्रन्थों में छिपे हुए रहस्यों को खोला जा सकता है। अथर्व वेद के

केन सूक्त में वर्णित ब्रह्मपुरी के रहस्य को आज दिन तक कोई भी नहीं जान सका था। इसी प्रकार स्कम्भ सूक्त में पूछे गये प्रश्नों का यथार्थ उत्तर भी तारतम ज्ञान के बिना कोई भी नहीं दे सकता। चाहे भागवत की अखण्ड महारास का प्रसंग हो या गीता के उत्तम पुरुष अक्षरातीत का, तारतम ज्ञान के बिना कोई भी इन समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। इसी प्रकार कुरआन में वर्णित अलिफ, लाम, मीम, ऐन, गैन, आदि हरुफे मुक्तेआतों का रहस्य भी कोई नहीं बता सकता।

इन विध गुन केते कहूं, कई देखे मैं नजर।

मेरे हाथ खुलाए के, करी ब्रह्मांड में फजर॥५६॥

इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाले धनी के इन गुणों (प्रेम, अपनापन, एकरूपता आदि) का वर्णन मैं

कैसे करूँ? मुझसे उनका वर्णन होना सम्भव नहीं है। प्रियतम अक्षरातीत ने तो मेरे ही हाथों से धर्मग्रन्थों के भेद खुलवाकर इस संसार में ज्ञान का उजाला कर दिया है।

भावार्थ— तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व संसार में अज्ञानता का गहन अन्धकार छाया हुआ था। वेद-कतेब का अध्ययन करने के बाद भी किसी को परब्रह्म के धाम, स्वरूप, एवं लीला की पहचान नहीं थी। ब्रह्मवाणी के प्रकट होते ही परमधाम के ज्ञान का प्रकाश फैल गया, जिसे सवेरा (प्रातःकाल) होना भी कहा गया है।

कई लिखी इसारतें अर्स की, कई रमूजें अनेक।

पेहेले पढ़ाई मुझ को, मैं ही खोलूँ एही एक॥५७॥

वेद-कतेब में परमधाम की बातें संकेतों में लिखी हुई हैं।

इनके रहस्य भरे वाक्यों में अक्षरातीत की पहचान छिपी है। धाम धनी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर सभी ग्रन्थों के गुह्य रहस्यों को बता दिया। अब धनी की कृपा से मैं ही इन ग्रन्थों के भेदों को स्पष्ट कर रही हूँ।

भावार्थ— अथर्व वेद में पहेलियों के माध्यम से अक्षरातीत तथा परमधाम की पहचान लिखी है, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१. सोने का बेंत जल में स्थित है। जो इसे जानता है, वह छिपी हुई प्रजा (ब्रह्मसृष्टि)का स्वामी है।

(अथर्व वेद १०/७/४१)

२. पाँच के अन्दर परब्रह्म है तथा परब्रह्म के अन्दर पाँच स्थित है। (यजुर्वेद २३/५२)

३. आठ चक्र और नव द्वारों वाली अयोध्या नाम की एक पुरी है, जिसके बारे में न तो कोई जानता है और न

कोई अब तक उसमें प्रविष्ट हो सका है।

(अथर्व वेद १०/२/३१)

४. उस पुरी में हिरण्य कोश है, जिसमें तीन अरे तीन में प्रतिष्ठित हैं। उसी में परब्रह्म विराजमान हैं।

(अथर्व वेद १०/२/३२)

५. यह एक ज्योति है। इससे भी श्रेष्ठ एक दूसरी ज्योति है। तुम तीसरी ज्योति के साथ मग्न रहो।

(ऋ० १०/५६/१, साम आग्नेय काण्ड १/७/३)

(इन सभी प्रश्नों का विस्तृत उत्तर "ज्ञान मंजूषा" ग्रन्थ में दिया गया है। कृपया उसका अवलोकन करें।)

इसी प्रकार कुरआन का पन्द्रहवाँ (१५) पारः सुब्हानल्लज़ी में शबे मेअराज का वर्णन है, जिसमें नासूत, मलकूत अर्थात् निराकार, एवं बेहद से परे अखण्ड परमधाम का सांकेतिक वर्णन है। पारः तीसवाँ (३०)

अम य त सा अलून के सिपारा सूरतुल् कौसर में वर्णन है कि दरियाए जोए के ऊपर एक हौज़ है, जिसके किनारे मोतियों, मणियों, याकूत इत्यादि अनमोल रत्नों से सुसज्जित है। इसका जल शहद से अत्यधिक मीठा, दूध से भी अधिक उज्ज्वल, एवं सुगन्धित, व शीतल है। उस परमधाम में दूध एवं शहद (प्रेम और ज्ञान) की नदियों का वर्णन किया गया है।

महामत कहे मैं हक की, खोले मगज मुसाफ कलाम।

और हक कलाम कौन खोल सके, जो मिले चौदे तबक तमाम॥५८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मेरे अन्दर हक की "मैं" आ गयी है, जिससे कुरआन के सभी गुह्य भेद स्पष्ट हो गये हैं। तारतम ज्ञान और हक की "मैं" के आये बिना चौदह लोकों की यह सारी सृष्टि भी यदि मिल जाये, तो

भी वह कुरआन की हकीकत और मारिफत के भेदों को नहीं खोल सकती।

प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥२०९॥

रुहों को कुदरत देखाई हक ने

इस प्रकरण में यह बताया गया है कि प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी अँगनाओं को किस प्रकार माया का यह खेल दिखाया है?

"कुदरत को माया कही, गफलत मोह अंधेर" (सनन्ध ५/३६) के कथनानुसार कुदरत को माया (प्रकृति) कहा गया है। इसी को श्वेताश्वतरोपनिषद में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है कि "मायां तु प्रकृति विद्धि मायिनं तु महेश्वरं।"

यों कई देखाई माया, और कई विध करी पेहेचान।

कई विध बदली मजलें, कई पुराए साख निसान॥१॥

धाम धनी ने हमें कई प्रकार की माया दिखाई हैं। हमने धनी की अलग-अलग लीलाओं और अलग-अलग

ब्रह्माण्डों में अलग-अलग तरीके से पहचान की है। हमने धनी की पहचान से सम्बन्धित कई मन्जिलों (स्तरों) को पार किया। धर्मग्रन्थों में इस सम्बन्ध में बहुत सी साक्षियाँ भी थीं, जिससे धाम धनी ने उचित समय पर हमें अवगत करा दिया।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म (कादर) की माया (कुदरत) के तीन स्वरूप हैं-

(१) मूल अक्षर ब्रह्म की मूल माया, जिसे मूल प्रकृति भी कहा गया है। प्रकट वाणी (प्र. हि.) में इसे इस प्रकार कहा गया है कि "निज लीला ब्रह्म बाल चरित्र, जाकी इच्छा मूल प्रकृत।" यह मूल प्रकृति प्रकास हिन्दुस्तानी की उस मूल प्रकृति से भिन्न है, जिसमें कहा गया है कि "जोगबाई जेती इन अंग की, सो सब मूल प्रकृती मांहे।" यहाँ आदिनारायण की प्रकृति को "मूल प्रकृति" कहा

गया है।

(२) अक्षर ब्रह्म के अन्तःकरण (चतुष्पाद विभूति) की प्रकृति। इसके चार भेद होते हैं—

१— अव्याकृत (मन) की सत् माया या सत् प्रकृति।

२— सबलिक (चित्त) की चिद् माया (चिद्रूप माया)।

३— केवल (बुद्धि) की आनन्द योगमाया।

४— सत्स्वरूप (अहंकार) की मूल माया या मूल प्रकृति।

परमधाम से बाहर अक्षर ब्रह्म की सारी क्रिया सत्स्वरूप से ही सम्पादित होती है, इसलिये मूल अक्षर ब्रह्म की प्रकृति की ही तरह सत्स्वरूप की प्रकृति को भी मूल प्रकृति कहते हैं।

(३) अव्याकृत के स्वाप्निक मन (आदिनारायण) की प्रकृति, जिसकी लीला ब्रह्मसृष्टियों को दिखायी जा रही

है।

इस चौपाई के पहले चरण में कई तरह की माया दिखाये जाने का आशय यह है कि ब्रज में कालमाया के ब्रह्माण्ड में पूरी नींद की लीला दिखायी गयी। रास में आनन्द योगमाया के ब्रह्माण्ड में विरह-विलास की लीला दिखायी गयी, जो वहाँ की भूमिका के अनुसार अनिवार्य थी। इस जागनी में कालमाया के शरीर पाने के बाद भी परमधाम की अनुभूति हो रही है।

तीनों ब्रह्माण्डों में तीन तरह की पहचान रही है— ब्रज में घर की और धनी की कोई पहचान नहीं थी। रास में धनी की पहचान तो थी, किन्तु घर की कोई पहचान नहीं थी। इस जागनी ब्रह्माण्ड में ब्रज, रास, और परमधाम की सर्वोच्च (मारिफती) पहचान है। यह सम्पूर्ण प्रसंग पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बुद्ध गीता, हरिवंश पुराण, एवं

कुरआन तथा बाइबल में विस्तारपूर्वक लिखा हुआ है।

हक की बातें अनेक हैं, कही ना जाए या मुख।

इन झूठे खेल में बैठाए के, कई दिए कायम सुख॥२॥

धनी की मेहर की बहुत सी बातें हैं, जिनका वर्णन इस मुख से होना सम्भव नहीं है। धाम धनी ने भले ही हमें इस मायावी जगत में भेजा है, किन्तु इस संसार में भी उन्होंने परमधाम के बहुत से सुखों का रसपान कराया है।

भावार्थ— परमधाम के सुखों के रसपान का तात्पर्य है— शरीर और संसार को भूलकर पच्चीस पक्षों तथा अष्ट प्रहर की लीला की अनुभूति के आनन्द में डूबे रहना।

मैं पेहेले केहेनी कही, किया काम दुनी का सब।

पर एक फैल रहेनीय का, लिया न सिर पर तब॥३॥

मैं पहले "कथनी" की ही बातों को कहती रही और सारे सांसारिक कार्यों में उलझी रही। उस समय मैंने करनी और रहनी को थोड़े से अंश में भी आत्मसात् नहीं किया (अपनाया नहीं)।

भावार्थ— इस चौपाई में सुन्दरसाथ को यह सिखापन दी गई है कि सांसारिक कार्यों में अपने को फँसाये रखने और परमधाम की बातें करने से कोई लाभ होने वाला नहीं है। जामनगर राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था तथा विवाह आदि के कार्यों में लगे रहने से जो अनमोल समय नष्ट हुआ, उससे श्री मिहिरराज जी को हार्दिक पीड़ा है। अपनी आपबीती बताकर उन्होंने सुन्दरसाथ को प्रबोधित किया है कि हमारी वास्तविक रहनी है –

"संसार को छोड़कर परमधाम को दिल में बसाना।" यह बात आगे की चौथी चौपाई में स्पष्ट हो जाती है।

अब आया बखत रेहेनीय का, रात मेट हुई फजर।

अब केहेनी रेहेनी हुआ चाहे, छोड़ दुनी ले अर्स नजर॥४॥

ब्रह्मवाणी का उजाला फैल जाने से ऐसा लग रहा है, जैसे कि अज्ञान की रात्रि समाप्त हो गयी है और ज्ञान का प्रातःकाल हो गया है। अब रहनी का समय आ गया है। ऐसे समय में सुन्दरसाथ को चाहिए कि वे कहनी को रहनी में बदलें, अर्थात् संसार को छोड़कर अपने आत्मिक नेत्रों में परमधाम को बसा लें।

भावार्थ— यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा तारतम ज्ञान अवतरित होने से पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान उजाला तो हो गया था, किन्तु अभी अज्ञानरूपी

रात्रि का समापन नहीं हो सका था।

ब्रह्मवाणी के अवतरण के साथ ही रात्रि का अन्धकार मिटने लगा और वि.सं. १७३५ के पश्चात् तो ब्रह्मवाणी के अवतरण को ही फज्र की वाणी का उतरना कहा गया। खुलासा ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिखा है— "श्री किताब खुलासा बानी फजर की उतरी, सो शुरु हुई।" इसे ही रात्रि का समाप्त होकर फज्र (प्रातःकाल) होना कहते हैं।

अब समया आया रेहेनीय का, रूह फैल को चाहे।

जो होवे असल अर्स की, सो फैल ले हाल देखाए॥५॥

अब "रहनी" का समय आ गया है। अब मेरी आत्मा भी "करनी" को अंगीकार करना चाहती है। जो यथार्थ में परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह करनी को रहनी में परिवर्तित करके दिखायेगी।

भावार्थ- श्री महामति जी की आत्मा अध्यात्म की उस मन्जिल पर पहुँच चुकी है जहाँ पर पहुँचना अन्य किसी के लिये भी सम्भव नहीं है, किन्तु उनका यह कथन कि "अब मेरी आत्मा 'करनी' पर चलना चाहती है", विनम्रता की पराकाष्ठा है। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में सुन्दरसाथ को जोर देकर करनी से रहनी में आने के लिये कहा गया है।

केहेनी कही सब रात में, आया फैल हाल का रोज।

हक अर्स नजर में लेय के, उड़ाए देओ दुनी बोझ॥६॥

जब तक अज्ञानता की रात्रि थी, तब तक "कथनी" की लीला चलती रही। अब तो केवल करनी और रहनी का समय है। हे सुन्दरसाथ जी! अपनी दृष्टि में केवल प्रियतम अक्षरातीत और परमधाम को ही बसाओ तथा

अपने सिर पर जो मायावी संसार का बोझ ढो रहे हो, उसे फेंक दो।

भावार्थ— यह चौपाई चितवनि (ध्यान) की महत्ता को प्रतिपादित कर रही है। परमधाम की ब्रह्मवाणी के अवतरित हो जाने के पश्चात् तो संसार में फँसे रहना बहुत बड़ी भूल है। विवेकवान सुन्दरसाथ तो इस ब्रह्मवाणी को पाकर युगल स्वरूप और परमधाम के अतिरिक्त अन्य सबको भुला ही देते हैं।

जो हकें केहेलाया सो कह्या, इत मैं बीच कहूं नाहें।

फैल हाल सब हक के, हकें सक मेटी दिल माहें॥७॥

धाम धनी ने मुझसे जो कुछ भी (ब्रह्मवाणी) कहलायी, वह मैंने कह दी। अब मेरी रहनी और करनी सब कुछ धाम धनी की ही प्रेरणा पर निर्भर है। मेरे अन्दर

विराजमान होकर मेरे प्राणवल्लभ ने मेरे सभी संशयों को समाप्त कर दिया है।

इलम दिया हकें अपना, और दर्ई असल अकल।

जोस इस्क सब हक के, सब उमत करी निरमल॥८॥

धाम धनी ने ब्रह्मज्ञान के रूप में मुझे अपना तारतम ज्ञान दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने मेरे हृदय में परमधाम की बुद्धि, जोश, तथा इश्क भी स्थापित कर दिया। प्रियतम के द्वारा दी गई इन्हीं न्यामतों से सभी सृष्टियों को निर्मल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रयुक्त "असल अकल" से तात्पर्य निज बुद्धि एवं अक्षर की जाग्रत बुद्धि दोनों से है। इसी प्रकार "सब उमत" में ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरी, एवं जीव सृष्टि तीनों का ही समावेश हो जाता है। यद्यपि ब्रह्मसृष्टि

और ईश्वरी सृष्टि मूलतः निर्विकार हैं, किन्तु ये जीव को अधिष्ठान बनाकर ही खेल को देख रही हैं, इसलिये जीव के हृदय को निर्मल करने की बात भी ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि से जुड़ जाती है।

इस चौपाई के चौथे चरण का सामान्य अर्थ यही होता है कि सारी सृष्टि निर्मल हो गयी, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह प्रसंग केवल भूतकाल का नहीं है, बल्कि भूत, भविष्य, एवं वर्तमान तीनों ही कालों के लिये प्रयुक्त होगा।

इन जड़ थें तब मैं निकसी, जब आकीन दिया आप।

सकें सारी भान के, तुम साहेब किया मिलाप॥९॥

मेरे प्राण प्रियतम! आपने हब्से में मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मेरे धाम हृदय में बैठकर मेरे सभी संशयों को

दूर कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे आप पर पूर्ण विश्वास हो गया। इसके पश्चात् ही मैं इस जड़ संसार से अलग (पार) हो सकी।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न हो सकता है कि क्या हब्से की घटना से पहले उन मिहिरराज जी में भी संशय था, जिन्होंने बीतक के उस कथन को चरितार्थ किया कि "अपना आपा देखिया, किया आकार को रद"? क्या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की सान्निध्यता में रहने पर भी श्री मिहिरराज जी में कोई संशय था?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि यद्यपि श्री मिहिरराज जी में परमधाम तथा अक्षरातीत के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का नाम मात्र भी संशय नहीं था, किन्तु "सेहेरग से नजीक हक, आड़ा पट न द्वार" (सिन्धी १६/२) की स्थिति को प्राप्त करने के लिये

दीदार होना अनिवार्य है। इस स्थिति को प्राप्त हुए बिना विषम परिस्थितियों में मन में तरह-तरह के संकल्प-विकल्प उठते हैं, जिसके कारण मन में एक प्रकार का द्वन्द्व चलता रहता है। इसे ही "सकें" (संशय) शब्द से सम्बोधित किया गया है।

ए मैं काढ़ी तुम इन विध, इन मैं मैं न आवे सक।

यों काढ़ी खुदी मैं साथ की, हकें किए आप माफक॥१०॥

हे धनी! आपने इस प्रकार मेरे अन्दर की लौकिक "मैं" को निकाला और अपनी "मैं" दी। अब आपकी इस "मैं" में जरा भी शक-संशय नहीं आ सकता। इस प्रकार अपनी ब्रह्मवाणी का अमृत देकर सुन्दरसाथ की मैं को भी निकाला और उन्हें अपने अनुकूल बना लिया।

भावार्थ- संसार की "मैं खुदी" का त्याग किये बिना

दिल धनी का अर्श नहीं बन सकता। विरह-प्रेम के साथ जब ब्रह्मवाणी का रस हृदय में प्रवेश करता है, तो धाम हृदय में प्रियतम की छवि उतर आती है। इसे ही धनी के अनुकूल (लायक) होना कहते हैं।

हुकमें हाथ पकड़ के, दिया फैल हाल बेसक।

तब जोस इस्क देखाया, जासों पाया हक॥११॥

धनी के हुक्म ने हमारा हाथ पकड़ा और हमें बेशक करके परमधाम की करनी और रहनी में स्थित कर दिया। जब हमें इश्क और जोश मिला, तो हमने अपने प्रियतम को पा लिया।

भावार्थ- हाथ पकड़ना आलंकारिक कथन है। इसका अभिप्राय होता है- अंगीकार करना, सहारा देना, अपनी कृपा की छाँव तले रखना, इत्यादि। धनी की मेहर से ही

बेशकी, करनी, रहनी में स्थिति, इश्क, एवं जोश मिलता है, जिससे प्रियतम का दीदार होता है।

जोस हाल और इस्क, ए आवे न फैल हाल बिन।

सो फैल हाल हक के, बिना बकसीस न पाया किन॥१२॥

श्री राज जी की कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति करनी तथा रहनी की उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार, बिना करनी तथा रहनी के, न तो किसी के अन्दर धनी का जोश आ सकता है और न प्रेम की रहनी ही आ सकती है।

भावार्थ— यदि किसी की करनी तथा रहनी परमधाम के अनुकूल नहीं है, तो कदापि उसके ऊपर धनी का जोश नहीं आ सकता। इश्क (अनन्य प्रेम) की सुगन्धि भी वहाँ नहीं हो सकती। विषय—विकारों से भरपूर हृदय वाले

व्यक्ति के ऊपर भला परब्रह्म का जोश कैसे लीला कर सकता है?

कलाम हक जुबान के, तिनका कहूं विवेक।

इन केहेनी से कायम हुए, दुनी पाया हक एक॥१३॥

अक्षरातीत के मुखारबिन्द से निकली हुई इस ब्रह्मवाणी की गरिमा का मैं वर्णन करती हूँ। यद्यपि यह ब्रह्मवाणी कथनी के रूप में है, फिर भी इसके द्वारा ही सबको एक परब्रह्म की पहचान हुई है तथा सबको अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भावार्थ— इस चौपाई के पहले चरण में कुरआन का कोई भी प्रसंग नहीं है। हक के कलाम का तात्पर्य परब्रह्म की वाणी श्री कुल्जम स्वरूप से है। अखण्ड मुक्ति की क्रियात्मक लीला तो योगमाया में होनी है, अभी तो ज्ञान

द्वारा केवल जाग्रति की लीला हो रही है।

जिन केहेनी किल्लीय से, खुल्या भिस्त का द्वार।

सो केहेनी छुड़ाई हुकमें, दे फैल रहेनी सार॥१४॥

ब्रह्मवाणी की जिस कथनी से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवों के लिये आठ बहिशतों का द्वार खुल गया, धाम धनी ने अपने हुक्म से हमें उस कथनी से भी छुड़ाया, और उसके सार रूप करनी और रहनी में लगा दिया।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी का ज्ञान जिस हृदय में बस जाता है, वह अक्षरातीत के युगल स्वरूप के प्रति आस्थायान हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप उसका जीव बहिशतों का अधिकारी हो जाता है। कथनी के द्वारा अखण्ड मुक्ति पाने का यही अभिप्राय है।

कहनी (कथनी) छुड़ाने का आशय यह है कि वाणी के

ज्ञान को केवल मुख से कहा ही न जाये, बल्कि धनी के प्रेम-विरह में गोता लगाया जाये, जिससे रहनी की वास्तविक स्थिति को प्राप्त किया जा सके।

ए जो केहेनी इन भांत की, किए कायम चौदे तबक।

सो छुड़ाई केहेनीय को, जासों पाया दुनियां हक॥१५॥

ब्रह्मवाणी के ये वचन भी ऐसे अनमोल हैं कि इनके ज्ञान से चौदह लोकों के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिन वचनों के कथन से सारे संसार को एक सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान हुई है, धनी ने उस कथनी को भी हमसे छुड़ा दिया।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है कि ब्रह्मज्ञान के चिन्तन-मनन से अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश होता है तथा हृदय में सत्य की

ज्योति जलती है, किन्तु यही अन्तिम लक्ष्य नहीं है।
वाणी के कथन से भी श्रेष्ठ है, उन कथनों को आचरण
(करनी) में लाना, तथा अन्ततोगत्वा परम लक्ष्य
(रहनी) को प्राप्त कर लेना।

कहे हुकम आगे रहेनीय के, केहेनी कछुए नाहें।

जोस इस्क हक मिलावहीं, सो फैल हाल के माहें॥१६॥

धनी का हुक्म कहता है कि रहनी के सामने तो कहनी
कुछ भी नहीं है। करनी और रहनी की स्थिति प्राप्त कर
लेने पर ही धनी का जोश और इश्क प्राप्त होता है,
जिससे प्रियतम का दीदार होता है।

भावार्थ— रहनी के सामने कथनी को नगण्य मानने का
यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिए कि ब्रह्मवाणी के ज्ञान
का यहाँ तिरस्कार किया गया है। श्री महामति का आशय

यह है कि ब्रह्मज्ञान को केवल कथनी का ही विषय न बनाया जाये, बल्कि उसको आचरण में लाया जाये। जिस प्रकार मात्र शक्कर-शक्कर कहने से मुख मीठा नहीं हो सकता, उसी प्रकार तारतम वाणी के शब्दों को केवल कहने मात्र से प्रियतम नहीं मिलेंगे। यह ध्यान रखने योग्य विशेष बात है कि चारों वेदों के प्रकाण्ड पण्डित रावण को राक्षस ही कहा जाता है। इसी प्रकार वेद का स्नातक दुर्योधन भी वेद की शिक्षाओं को अपने आचरण में उतार न सका और महाभारत के युद्ध का कारण बना।

दुनियां केहेनी केहेत है, सो डूबत मैं सागर।

मैं लेहेरें मेर समान में, कोई निकस न पावे बका घर॥१७॥

संसार के लोग कथनी को ही सब कुछ समझ लेते हैं, इसलिये वे अहंकार (मैं) के सागर में डूब जाते हैं।

अहंकार की लहरें तो सुमेरु पर्वत के समान ऊँची होती हैं, जिनसे बचकर कोई भी अखण्ड घर (योगमाया, परमधाम) की प्राप्ति नहीं कर पाता है।

भावार्थ- प्रियतम के प्रेम और विरह से रहित हृदय सूना (शुष्क) होता है। बुद्धि की चतुराई (चातुर्यता) से ऐसे हृदय से यदि ज्ञान की बातें कही भी जाती हैं, तो उससे उसके हृदय में केवल अहंकार ही पैदा होता है। ऐसे व्यक्तियों को "वाचक ज्ञानी" कहते हैं। ये ज्ञान को कहकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। विडम्बना तो यह है कि ये शुष्क ज्ञानी अपने को किसी परमहंस से कम नहीं आँकते।

ज्ञानी और वाचक ज्ञानी में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। शुद्ध ज्ञानी के हृदय में आध्यात्मिक प्रेम की अखण्ड धारा प्रवाहित होती है, जबकि वाचक ज्ञानी

शब्द जाल को ही अन्तिम लक्ष्य समझ बैठता है। ऐसा व्यक्ति परमधाम या प्रियतम का साक्षात्कार नहीं कर पाता।

ए खेल मोहोरे कथ कथ गए, सो जले खुदी बेखबर।

आप लेहेरें माहें अपनी, गोते खात फेर फेर॥१८॥

इस संसार के बड़े-बड़े वाचक ज्ञानी जीवन भर वेद-शास्त्रों के ज्ञान को लेकर प्रवचन करते रहे। प्रेम से रहित होने के कारण वे अक्षरातीत से अनभिज्ञ रहे तथा अहंकार की अग्नि में जलते रहे। अपने हृदय में उमड़ने वाले अहंकार के सागर में वे डूबते-उतराते रहे तथा उसकी लहरों से वे अन्त तक जूझते रहे।

भावार्थ- धर्मग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करके उसका प्रवचन करने मात्र से ही जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं होता।

सर्वोपरि लक्ष्य है, अपने हृदय-मन्दिर में प्रेम की शैय्या सजाकर उस पर प्रियतम को विराजमान करना। अहंकार की अग्नि में जलने वाले शुष्क हृदय वाले वाचक ज्ञानियों के लिये यह असम्भव है।

ओही उनों का कबला, छोड़ें नहीं ख्याल।

मैं मैं करत मरत नहीं, इनके एही फैल हाल॥१९॥

ये वाचक ज्ञानी अहंकार को ही अपना पूज्य स्थान समझते हैं, अर्थात् इनकी सारी श्रद्धा और समर्पण की भावना अहंकार पर केन्द्रित रहती है। ये अहंकार से उत्पन्न होने वाले अपने विचारों को अपने हृदय से निकाल नहीं पाते। इनकी करनी और रहनी "मैं" के लिये होती है। "मैं" के सागर में डूबने वाले इन लोगों का अहंकार कभी भी समाप्त नहीं होता।

भावार्थ- "मैं बहुत बड़ा ज्ञानी, तपस्वी, सदाचारी, जितेन्द्रिय, सेवाभावी, और प्रतिष्ठित हूँ" के भावों से वाचक ज्ञानी कभी निवृत्त नहीं हो पाते। उनका सारा जीवन अपने अहम् के इन्हीं भावों को पुष्ट करने में बीत जाता है। जबकि अध्यात्म की गंगा में गोता लगाने की पहली शर्त होती है- अपने अहम् का पूर्ण त्याग।

अब कैसी मैं बीच खेल के, जो खेलत कबूतर।

ए जो नाबूद कछुए नहीं, तो मैं केहेत क्यों कर॥२०॥

खेल के कबूतरों के समान ही संसार के जीवों का अस्तित्व है, जो महाप्रलय में आदिनारायण में लय हो जाने वाले हैं। जब उनका कोई अखण्ड स्वरूप है ही नहीं, तो वे "मैं" शब्द का उच्चारण भी क्यों करते हैं? ऐसी स्थिति में तो इस संसार में उन्हें किसी भी प्रकार

की "मैं" पालनी ही नहीं चाहिए।

खेल किया तुम वास्ते, जो देखत बैठे वतन।

सो देख के उड़ावसी, जिन विध झूठ सुपन॥२१॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप परमधाम के मूल मिलावा में बैठे-बैठे जिस खेल को देख रहे हैं, वह आपके लिये ही बनाया गया है। जिस प्रकार नींद के टूटते ही झूठा सपना समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार जब आप इस खेल को अच्छी तरह देख लेंगे, तो धाम धनी इस खेल को समाप्त कर देंगे।

जो रुहें होए अर्स की, सो तो तले हुकम।

जानत त्यों खेलावत, ऊपर बैठ खसम॥२२॥

परमधाम की जो भी ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, वे धाम धनी के

हुक्म से बँधी हुई हैं। मूल मिलावे में सिंहासन पर बैठे हुए श्री राज जी अपनी इच्छानुसार खेल दिखा रहे हैं।

भावार्थ- हुक्म का तात्पर्य श्री राज जी के दिल की इच्छा से है। रूहों का दिल श्री राज जी के दिल से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार श्री राज जी अपने दिल में जो कुछ भी लेते हैं, वही परात्म में आता है, और आत्मा भी उसी के अनुसार इस संसार में कार्य करती है।

इन में भी मैं है नहीं, जो ए समझें मूल इलम।

फैल हाल इस्क लेवहीं, तब हक की मैं आतम॥२३॥

यदि सुन्दरसाथ इस मूल बात को समझ जायें, तो उनमें "मैं" नहीं रह सकेगी। जो अपनी करनी और रहनी इश्क की कर लेगा, उसकी आत्मा धनी की "मैं" को लेकर खड़ी हो जायेगी।

भावार्थ- यदि हमें यह बोध हो जाये कि "तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुक्म करत", तो हम "मैं" के बन्धन को तोड़ देंगे। उस समय हमारे अन्दर इस संसार का कोई भी अहम् (ज्ञान, शक्ति, सेवा, सौन्दर्य आदि) नहीं रह पायेगा। जब सब कुछ धनी के हुक्म से होता है, तो अपनी मैं को लेकर खड़े होने का प्रश्न ही कहाँ होता है? ज्ञान दृष्टि से इस बात को समझने के साथ ही इश्क में डूबना पड़ेगा, अन्यथा मैं को छोड़ना केवल कथनी तक ही सीमित रह जायेगा।

तब गुनाह कछू ना लगे, जो कीजे ऐसी चाल।

सो सुकन पेहेले कहे, जो कोई बदले हाल॥२४॥

हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप अपनी चाल इस प्रकार की कर लेंगे, तो आपको इस खेल में कोई भी गुनाह नहीं

लगेगा। यह बात पहले ही बतायी जा चुकी है कि जो भी सुन्दरसाथ अपनी माया वाली रहनी छोड़कर परमधाम वाली रहनी की राह पर चलेगा, उसे कोई भी गुनाह नहीं लगेगा।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि गुनाह किसलिये लगेगा- खेल माँगने के लिये या खेल में लिप्त होने के लिये?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यहाँ पर धनी को भूलकर मायावी सुखों में लिप्त होने का गुनाह लगेगा। यद्यपि आत्मा पूर्णतः निर्विकार है, किन्तु जीव की संगति करने के कारण ही जीव के द्वारा किया हुआ गुनाह आत्मा के साथ जुड़ जाता है। यदि आत्मा के सम्बन्ध से जीव भी ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत होता है तथा अँगना भाव लेकर प्रेम की करनी और रहनी में आ जाता है, तो

"मैं खुदी" न रहने से गुनाह (पाप, अपराध) से वैसे ही वंचित रहता है जैसे गीतोक्त निष्काम कर्म करने वाला।

इन विध मैं मरत है, बैठे तले कदम।

जोस इस्क आवे हाल मैं, लेय के हक इलम॥२५॥

अपनी "मैं" को मारने का तरीका यह है कि हम हमेशा ही यह भाव रखें कि मैं मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठी हुई हूँ। इस प्रकार ब्रह्मवाणी का ज्ञान रूपी अमृत लेकर हमारी आत्मा जब रहनी में आ जायेगी, तो उसे धनी का जोश एवं इश्क प्राप्त हो जायेगा।

भावार्थ— परात्म का तन परमधाम की उस वहदत में है, जहाँ मायावी विकारों का नामोनिशान भी नहीं है। यहाँ आत्मा का तन मायावी विकारों से घिरा हुआ है। ऐसी स्थिति में निर्विकार होने के लिये यह अति आवश्यक है

कि हम अपनी आत्मा के मूल स्वरूप परात्म की भावना अपने अन्दर भरें। धनी के प्रेम में डूबने के लिये इस मायावी तन को भूलना ही होगा।

जो सुध मलकूत में नहीं, ना सुध नूर वतन।

सो गिरो दिल पूरन भई, मैं काढ़ी बकसीस इन॥२६॥

इश्क की सुध न तो वैकुण्ठ विहारी विष्णु भगवान के पास है और न अक्षर धाम में है। धनी की मेहर से ब्रह्मसृष्टियों ने श्रीमुखवाणी के ज्ञान से अपने दिल में इश्क की सुध पा ली और अपनी मैं (खुदी) को भी निकाल दिया।

इन मैं को हक बिना, कबहूँ न काढ़ी जाए।

सो मुझ पर मेहेर हकें करी, मैं जरे को देत उड़ाए॥२७॥

अक्षरातीत की मेहर के बिना इस "मैं" को आज दिन तक कोई भी अपने अन्दर से निकाल नहीं पाया है। धाम धनी की मेरे ऊपर अपार मेहेर है, जिससे मैंने अपने अन्दर नाम मात्र (जरा मात्र) की भी मैं को नहीं रहने दिया।

भावार्थ- इस सृष्टि में सम्पूर्ण प्राणिमात्र से लेकर आदिनारायण तक का सारा क्रियाकलाप मैं (अहंकार) के कारण ही चल रहा है। इसके बिना इस संसार में कोई भी लौकिक कार्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि तारतम ज्ञान तथा प्रेम से रहित होने के कारण संसार में कोई भी अपनी मैं (अहंकार) को नहीं छोड़ सका।

ना तो ए मैं ऐसी नहीं, जो निकसे किए उपाए।

मेहेनत कर त्रिगुन थके, कोई सके न मैं को फिराए॥२८॥

अन्यथा यह "मैं" कोई ऐसी सामान्य सी वस्तु नहीं है, जो किसी उपाय से सरलता से निकल जाये। इस अहम् को निकालने के लिये तो ब्रह्मा, विष्णु, और शिव भी सारे प्रयास करके थक गये, किन्तु कोई भी "मैं" को निकालने में सफल नहीं हो सका।

भावार्थ- इस चौपाई में "त्रिगुण" से तात्पर्य ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के अतिरिक्त प्रकृति के बन्धन में फँसे हुए अन्य ऋषि-मुनियों, देवी-देवताओं, तथा मनुष्य आदि से भी है।

ए दुनियां चौदे तबक में, किन जान्यो न मैं को बल।

किन मैं को पार न पाइया, कई दौड़ाए थके अकल॥२९॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में किसी ने भी "मैं" की शक्ति को नहीं पहचाना। बड़े-बड़े मनीषियों ने भी इस

अहम् का परित्याग करने के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण करने में अपनी बुद्धि का बहुत प्रयोग किया , किन्तु कोई भी सफल नहीं हो सका (पार नहीं पा सका)।

भावार्थ- अहम् सूक्ष्म रूप से मानव के अन्दर इस तरह छिपा होता है कि महान विभूतियाँ भी इसके बन्धन में फँसी रहती हैं। जीव समुदाय में अहम् के पर्दे से बाहर निकलने वाला आज तक कोई भी नहीं हुआ।

इन मैं में डूब्या सब कोई, याको पार न पावे कोए।

याको पार सो पावहीं, जाको मुतलक बकसीस होए॥३०॥

इस अहम् (मैं) के सागर में सृष्टि का प्रत्येक व्यक्ति (ऋषि, मुनि, देवी, देवता, अवतार, तीर्थंकर, और पैगम्बर आदि) डूब गया। कोई भी इसके फँदे से बच नहीं

सका। इसके परे तो वही हो पायेगा, जिस पर धाम धनी की सच्ची मेहर हो।

भावार्थ- धनी की मेहर से प्रेम में डूबे बिना कोई भी व्यक्ति अपनी लौकिक उपलब्धियों (शक्ति, विद्या, और सौन्दर्य आदि) के अहम् से बच नहीं सकता।

ए बानी मैं मारेय की, सुनी होए मोमिन।

दुनी तरफ की जीवती, कबहूँ न रहेवे इन॥३१॥

यह ब्रह्मवाणी (तारतम वाणी) मैं को मारने के लिये है। यदि ब्रह्ममुनि सुन्दरसाथ इसका श्रवण करके आत्मसात् कर लेंगे, तो वे कभी भी संसार की तरफ से जीवित नहीं रहेंगे, अर्थात् उनके अन्दर संसार की कोई भी "मैं" नहीं रहेगी।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी अक्षरातीत के स्वरूप की पहचान

कराकर उनके प्रेम में डूबने के लिये प्रेरित करती है। धनी के प्रेम में डूब जाने वाला व्यक्ति तो निश्चित रूप से अपने अहम् पर विजय प्राप्त कर लेगा, क्योंकि अहम् का विनाश होने पर ही प्रेम की सुगन्धि मिलती है।

ए मैं इन गिरोह की, काढ़ें एक धनी धाम।

ए मरे पेड़ से हुकमें, ले साहेब के कलाम॥३२॥

इस संसार में ब्रह्मसृष्टियों की "मैं" को एकमात्र धाम धनी ही निकालते हैं। जब ब्रह्ममुनि धनी की वाणी को अपने अन्दर आत्मसात् कर प्रेम की राह अपनाते हैं, तो श्री राज जी के हुक्म से यह जड़ से ही समाप्त हो जाती है।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जब धनी की पहचान करके उन्हें अपने दिल में बसाया जाता है, तो अहम्

(मैं) का पर्दा जड़-मूल से समाप्त हो जाता है। मात्र ज्ञान के द्वारा तो अहम् थोड़े समय के लिये ही हट सकता है।

इलम खुदाई लदुन्नी, बकसीस असल रोसन।

जोस इस्क ले बंदगी, निसबत असल वतन॥३३॥

तारतम वाणी का ज्ञान अक्षरातीत परब्रह्म के द्वारा दिया गया है। इस ब्रह्मवाणी की कृपा से ही वास्तविक सत्य का प्रकाश होता है, जिससे इश्क और जोश लेकर धनी को रिझाने पर अपनी मूल निस्बत (परात्म) तथा परमधाम का दीदार होता है।

भावार्थ- अटल विश्वास (ईमान) तथा विरह के द्वारा धनी का जोश प्राप्त होता है, जिसके द्वारा सुरता कालमाया को पार करके योगमाया में सत्स्वरूप तक पहुँच जाती है। इसके आगे इश्क (अनन्य प्रेम) का मार्ग

है, जिस पर चलकर आत्मा परमधाम के पच्चीस पक्षों एवं युगल स्वरूप की शोभा में विहार करती है। निस्बत के स्वरूप परात्म के तन हैं जो धनी के चरणों में बैठे हैं, किन्तु निस्बत की मारिफत के स्वरूप श्री राज जी हैं। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "निस्बत की पहचान" का यही भाव है।

अब यों हक को याद कर, ले हुकम सिर चढ़ाए।

ए हक बिना मैं दुनीय की, सो सब मैं देऊं उड़ाए॥३४॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपने प्रियतम के आदेश को शिरोधार्य करके प्रेम की राह अपना और अपने धाम हृदय में उनको बसा। मेरे हृदय में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह सकता है। अपने अन्दर छिपी हुई संसार की "मैं" को अब मैं पूर्णतया उड़ा दूँगी।

इत मैं नेक न आवहीं, खड़े हुकम तले जे।

ए मैं हक की मेहेर लेय के, कर निसंक हिदायत ए॥३५॥

जो सुन्दरसाथ धनी के आदेश के अनुसार चलेंगे, उनके अन्दर संसार की जरा सी भी मैं (अहम्) नहीं आयेगी। हे मेरी आत्मा! अब तू धनी की "मैं" लेकर, उनकी मेहर से निःसंकोच होकर, इस बात का निर्देश कर।

भावार्थ- धनी का हुकम श्रीमुखवाणी के शब्दों में पिरोया गया है। जो तारतम वाणी के कथनों को आचरण में लाते हैं, वे ही श्री राज जी के हुकम में चलने वाले माने जायेंगे, शेष नहीं।

ए सुनियो खास उमत, इन मैं को काढ़ो जड़ मूल।

ले साहेदी लदुनीय से, कौल ईसा इमाम रसूल॥३६॥

हे ब्रह्मसृष्टियों! तारतम वाणी के अन्दर तीन स्वरूपों

(सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, श्री प्राणनाथ जी, तथा रसूल मुहम्मद साहिब) के वचन हैं। ऐसी अनमोल ब्रह्मवाणी से साक्षी लेकर अपनी "मैं" को जड़ से निकाल डालो (समाप्त कर डालो)।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में प्रयुक्त ईसा इमाम रसूल का तात्पर्य उन तीन सूरतों से है, जिनका मिलन ही परब्रह्म का स्वरूप है। बशरी सूरत (रसूल मुहम्मद साहिब) के अन्दर अक्षर ब्रह्म की आत्मा (सत्) विराजमान थी। मल्की सूरत (श्री देवचन्द्र जी) के अन्दर (आनन्द अंग) श्यामा जी की सुरता थी। इसी प्रकार हकी सूरत (श्री महामति जी) के अन्दर परब्रह्म की आवेश शक्ति (चिद्धन) विराजमान थी। इस प्रकार श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में सत्+चित्+आनन्द तीनों ही विराजमान हैं। तारतम वाणी में परब्रह्म स्वरूप श्री

प्राणनाथ जी के वचन हैं, जिनके अन्दर तीनों ही सूरतें विराजमान हैं।

हकें किया हुकम वतन में, सो उपजत अंग असल।

जैसा देखत सुपन में, ए जो बरतत इत नकल॥३७॥

धाम धनी परमधाम में अपने दिल में जो लेते हैं, वह सखियों के परात्म के तनों में आता है। परात्म का तन स्वप्न की स्थिति में जो कुछ भी देखता है, आत्मा का नकली तन इस संसार में वैसा ही आचरण करता है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि क्या परात्म का तन अपनी नूरी आँखों से इस झूठे संसार की लीला को देखता है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परात्म की नूरी नजरोँ के सामने यह ब्रह्माण्ड रह ही नहीं

सकता।

झूठ हम देख्या नहीं, झूठ न रहे हमारी नजर।

पट आड़े खेल देखाइया, देने को इस्क खबर॥

वस्तुतः श्री राज जी अपने दिल रूपी परदे पर माया का खेल दिखा रहे हैं। परात्म की नजरें भी श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर हैं। श्री राज जी के हुक्म ने सुरता का रूप धारण कर रखा है, जबकि परात्म की नजर श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर देख रही है। उस परदे पर जैसा दिखता है, वैसा ही आत्मा यहाँ करती है।

असल हमारी अर्स में, ताए ख्वाब देखावत तुम।

जैसा उत ओ देखत, तैसा करत हैं हम॥

खिलवत ४/४२

अपनी सूरतें हुकम, खेलावत हुकम।

खेलत सामी हुकमें, ए देखावत तले कदम॥

सिन्धी १६/४

जिस प्रकार टी.वी. के परदे पर खेल देखते-देखते हम खेल के मैदान में सुरता द्वारा पहुँच जाते हैं जबकि हमारी नजरें कमरे में रखे टी.वी. के परदे पर होती हैं, उसी प्रकार हम हुक्म की सुरता द्वारा यहाँ खेल में आ गये हैं। "हुकमें लिया भेख रूह का" सिनगार २७/७ तथा "यों उपजे हम बृज वधू जन" प्रकास हिन्दुस्तानी ३७/२६ का यही आशय है।

यद्यपि परात्म की नजर अनादि काल से श्री राज जी की ओर देखती रही है, लेकिन उनकी सुरता कभी भी खेल में नहीं आयी। हुक्म की कारीगरी द्वारा वह जीव के ऊपर बैठकर खेल को देख रही है, इसलिये उसे "हुक्म की सुरता" कहा गया है।

श्री राज जी के हुक्म द्वारा धारण की गई सुरता परात्म

का नाम लेकर जिस तन पर बैठेगी, उसे परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा, सुरता, या वासना कहा जाता है।

यहाँ मन में संशय होता है कि खेल के मैदान में जो कुछ घटित होता है, वही तो टी.वी. के परदे पर दिखता है, किन्तु श्रीमुखवाणी का कथन है कि दिल रूपी पर्दे पर जैसा दिखता है, आत्मा इस संसार में वैसे ही कार्य करती है, तो यह कैसे सम्भव है? यह बात तो वैसे ही है जैसे यह कहा जाये कि टी.वी. के परदे पर जैसा दिखता है, खेल के मैदान में खिलाड़ी वैसे ही खेलते हैं। तार्किक दृष्टि से यह बात अटपटी सी लगती है।

जिस प्रकार कम्प्यूटर के स्मृति कोश (memory chip) में सारा दृश्य एवं ज्ञान संग्रहित रहता है तथा बाद में परदे पर दिखायी देने लगता है, उसी प्रकार श्री राज जी के

दिल में ब्रज, रास, और जागनी की सारी तस्वीर पहले से सुरक्षित है। उनकी प्रेरणा से परात्म में वही दृश्य उभरता है, जिसे वह श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे के माध्यम से देखती हैं। इस खेल में आत्मा उसके अनुसार ही आचरण करती है।

इस प्रकार श्रीमुखवाणी के कथनों में कोई भी विरोधाभास नहीं है। टी.वी. के पर्दे का दृष्टान्त तो सुरता के खेल में आने के तथ्य को समझाने के लिये है। इस बात को श्रीमुखवाणी के इन कथनों से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है—

प्रतिबिम्ब के जो असल, तिनों हक बैठे खेलावत।

तहां क्यों न होए हक नजर, जो खेल रूहों देखावत॥

आड़ा पट भी हकें दिया, पहले ऐसा खेल सहूर में ले।

जो खेल आया हक सहूर में, तो क्यों न होए काएम ए॥

सिनगार २१/८६,८७

मोमिन आए इतथें ख्वाब में, अर्स में इनों असल।

हुकम करे जैसा जहूर, तैसा होत मांहे नकल॥

खुलासा ४/७१

इस सम्पूर्ण प्रसंग में दिल रूपी परदे को कोई लौकिक परदा नहीं समझना चाहिए।

ए करो तेहेकीक विचार के, जो होए अर्स उमत।

यों असल में हक जगावत, तैसा बदलत बखत॥३८॥

जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि है, वह विचार करके इस बात का निश्चय करे कि धाम धनी परात्म के तनों में जैसी जाग्रति करते हैं, उसके अनुसार ही इस संसार में आत्मा की जाग्रति की अवस्था बदलती है।

भावार्थ- परात्म के तन वाहिदत में हैं। उनकी जागनी तो एकसाथ ही होगी। इस संसार में आत्माओं की जागनी चल रही है। इस चौपाई का यह आशय कदापि नहीं समझना चाहिए कि धाम धनी परात्म के तनों को अलग-अलग समय पर जगाते हैं।

इस चौपाई से पूर्व की चौपाइयों में यह बात कही जा चुकी है कि परमधाम की सम्पूर्ण लीला श्री राज जी के दिल से निर्देशित होती है। श्री राज जी जिस आत्मा को जिस रूप में जाग्रत करना चाहते हैं, उसकी परात्म में वैसी ही प्रेरणा भरते हैं, जिसे हुक्म कहा जाता है। इस हुक्म के अनुसार ही आत्मा की कथनी, करनी, या रहनी होती है। सिन्धी ग्रन्थ में इसी बात को दर्शाया जाता है—
"इश्क बन्दगी या गुनाह, सो सब हत्थ हुकम।"

धाम धनी किसी आत्मा को जागनी के जिस स्तर पर

पहुँचाना चाहते हैं, उसकी परात्म में वैसी ही भावना (हुक्म) भरते हैं, और उसके अनुसार ही इस परामोशी में आत्मा जाग्रत होती है। इसे ही मोटे शब्दों में कहा गया कि धाम धनी परात्म को जितने अंश में जाग्रत करते हैं, उतने ही अंश में यहाँ आत्मा की जाग्रति होती है। इस चौपाई का आशय यह है कि धाम धनी परात्म के तनों को अलग-अलग रूपों में जाग्रत होने की प्रेरणा देते हैं, जिसके अनुसार आत्माएँ भी अलग-अलग रूपों में जाग्रत होती हैं।

कहे लदुन्नी भोम तलेय की, हक बैठे खेलावत।

तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुक्म करत॥३९॥

तारतम वाणी कहती है कि प्रथम भूमिका के मूल मिलावा में श्री राज जी सिंहासन पर विराजमान हैं तथा

रूहों को अपने चरणों में बिठाकर खेल खिला (दिखा) रहे हैं। वे अपने दिल में जो कुछ भी लेते हैं, इस खेल में वैसा ही होता जाता है।

भावार्थ- खेल खिलाने का भाव यह है कि आत्मा ब्रज, रास, और जागनी के ब्रह्माण्ड में लीला में संलग्न है और दिखाने का भाव यह है कि परात्म इस खेल को देख रही हैं। इसी प्रकार संसार के खेल में जीव संलग्न है तथा उसकी लीला को आत्मा भी दृष्टा होकर देख रही है।

मोहे दिया लदुन्नी रूह अल्ला, सो मैं कह्या बेवरा कर।

ए किया उमत कारने, जो विचारो दिल धर॥४०॥

हे सुन्दरसाथ जी! श्यामा जी ने मुझे तारतम ज्ञान दिया, जिसका निरूपण (विस्तार, विवरण, व्याख्या) करके मैंने आपसे कहा है। यदि आप अपने दिल में

विचार करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह सब कुछ आप (ब्रह्मसृष्टियों) के लिये ही किया गया है।

ए रसूल अर्स अजीम से, ले आया फुरमान।

मैं जो कहया तुमें लदुन्नी, सो जोड़ देखो निसान॥४१॥

मुहम्मद साहिब रसूल के रूप में परमधाम से कुरआन का ज्ञान लेकर आये। धाम धनी ने मेरे द्वारा जो ब्रह्मवाणी कहलवायी है, उसे कुरआन के साथ मिलाकर देखिए। उससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि परब्रह्म के प्रकटने के सभी संकेत (चिह्न) प्रकाश में आ गये हैं।

कहे विध विध की साहेदी, या फुरमान या हदीस।

और भेजे नामे वसीयत, सो गिरो पर बकसीस॥४२॥

ब्रह्मसृष्टियों पर कृपा करके धनी ने कुरआन एवं हदीसों

में अनेक प्रकार की साक्षियाँ लिखवायी हैं। इसके अतिरिक्त सबको विश्वास दिलाने के लिये मक्का-मदीना से वसीयतनामों भी भिजवाये हैं।

इत तीन सूरत आए मिली, भांत भांत साहेदी ले।

सो लगाए देखो तुम रूह सों, ए इलम लदुन्नी जे॥४३॥

हे सुन्दरसाथ जी! मेरे धाम हृदय में तीन सूरतें बसरी, मल्की, तथा हकी (कुरआन के अलिफ़, लाम, मीम पारः पहला (१) के हरुफे मुक्तेआत्) आकर विराजमान हो गयी हैं। उन्होंने तरह-तरह की साक्षियाँ दी हैं। तारतम वाणी के प्रकाश में आप अपनी आत्मिक दृष्टि से इस बात पर विचार करके देखिए।

एह करत सब हुकम, ले अव्वल से आखिर।

इत मैं बीच काहू में नहीं, मैं ल्यावे सो काफर॥४४॥

शुरू से लेकर अन्त तक सारा कार्य धनी का हुक्म ही करता है। इस लीला में तो मेरी "मैं" कहीं भी नहीं रही है। मैं की भावना करने वाला काफिर ही कहा जायेगा।

भावार्थ— परमधाम से बाहर इस खेल के तीन भाग हैं, जिन्हें ब्रज, रास, और जागनी के नाम से जाना जाता है। इसे ही अव्वल (प्रारम्भ) से लेकर आखिर (अन्त) तक की संज्ञा दी जाती है। परमधाम से लेकर इन तीन लीलाओं में या कहीं भी प्रेम की राह पर चलने वाला "मैं" के बन्धन में नहीं फँसेगा।

विचार देखो इतदाए से, ले अपना तारतम।

अपन सोवत हैं नींद में, खेल खेलावत खसम॥४५॥

हे साथ जी! अपने तारतम ज्ञान से इस बात को विचार करके देखें तो यह विदित होगा कि हम तो ब्रज लीला के समय से ही अब तक माया की नींद (फरामोशी) में सोते रहे हैं। धाम धनी मूल मिलावा में बैठे-बैठे हमें सारा खेल खिला रहे हैं।

भावार्थ- ब्रज में पूरी नींद थी। रास में आधी जाग्रति और आधी नींद थी। इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी जाग्रति से पूर्व नींद का आवरण रहता ही है। इस चौपाई के तीसरे चरण में यही बात दर्शायी गयी है। यद्यपि तीनों लीलाओं में श्री राज जी अपने नूरी स्वरूप से मूल मिलावा में बैठे रहे हैं, किन्तु आवेश स्वरूप से एक पल के लिये भी अपनी आत्माओं से अलग नहीं हुए हैं।

ए जो सूते तुम देखत हो, खसम देखावत ख्याल।

सो अब हीं देत उड़ाए के, होसी हाँसी बड़ी खुसाल॥४६॥

आपको धाम धनी इस समय सपने के ब्रह्माण्ड की लीला दिखा रहे हैं और आप माया की नींद में इसे देख रहे हैं। प्रियतम अक्षरातीत अपनी ब्रह्मवाणी के द्वारा जब आपकी नींद समाप्त कर देंगे, तो आप जाग्रत होकर इस खेल में परमधाम की लज्जत लेंगे। अपनी परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् तो हँसी की बहुत ही अधिक आनन्दमयी लीला होगी।

भावार्थ— आत्म-जाग्रति इस खेल में होगी और परात्म-जागनी परमधाम में। आत्म-जाग्रति के लिये धाम हृदय में प्रियतम का विराजमान होना अनिवार्य है।

अब मैं काहू में नहीं, ए जो लेत सिर मैं।

ए हाँसी होसी ज्यों कर, जो करत हैं मैं तैं॥४७॥

सुन्दरसाथ अपने सिर पर संसार की "मैं" का बोझ ढोते फिर रहे हैं। ब्रह्मवाणी के अवतरित होने के पश्चात् तो अब किसी के भी अन्दर संसार की मैं आनी ही नहीं चाहिए। जो भी सुन्दरसाथ इस खेल में "मैं" और "तुम" के बन्धन में पड़े हुए हैं, परात्म में जाग्रत होने पर उनकी बहुत अधिक हँसी होगी।

ताथें जो मैं हक की, रहत तले हुकम।

मैं दुनी की मार के, रही देख खेल खसम॥४८॥

इसलिये जिसके अन्दर हक की "मैं" आ जाती है, वह हमेशा ही धनी के हुकम से बँधी रहती है। वह संसार और शरीर की "मैं" को मारकर मात्र दृष्टा के रूप में इस खेल

को देख रही होती है।

भावार्थ- वैसे तो सब कुछ धनी के हुक्म से ही होता है, किन्तु इस चौपाई में धनी के हुक्म के अधीन रहने का भाव यह है कि वह प्रियतम की इच्छा में ही अपने को समर्पित कर देती है। वह अपनी किसी भी लौकिक कामना के लिये न तो धनी से कभी प्रार्थना करती है और न कष्ट आने पर गिले-शिकवे ही करती है।

ताथें मैं इन धनी की, करत हक का काम।

ए खेल खुसाली लेय के, जाग बैठे इत धाम॥४९॥

इस प्रकार श्री राज जी के द्वारा निर्देशित जागनी का कार्य तभी यथार्थ रूप से सम्पन्न होता है, जब हृदय में धनी की "मैं" आ जाये। तभी इस खेल का आनन्द भी लिया जा सकता है और यहीं बैठे-बैठे परमधाम में

जाग्रत होने जैसे आनन्द की अनुभूति की जा सकती है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यहाँ परमधाम में जाग्रत होने की बात कही गई है। "इत" का अर्थ यहाँ (संसार में) और उत का अर्थ वहाँ (परमधाम में) होता है। इस संसार में मात्र आत्मा की जागनी होनी है। खेल में परात्म की जागनी की बात कहना वाणी के सिद्धान्तों की अवहेलना है।

जब आत्मा जाग्रत हो जाती है, तो वह परात्म की तरह ही परमधाम के आनन्द का रसपान करने लगती है। उसे यह लगता ही नहीं कि मैं झूठे संसार में हूँ। इस सम्बन्ध में सागर ग्रन्थ का यह कथन देखने योग्य है-

अन्तस्करण आतम के, जब ए रहयो समाय।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराय॥

प्रकटवाणी में भी यह बात इस प्रकार व्यक्त की गयी है-

इतहीं बेठे घर जागे धाम, पूरे मनोरथ हुए सब काम।

ए सब लेवे रोसनी, पेहेचान के निसबत।

ए मैं बका हक की, करे हिदायत महामत॥५०॥

श्री महामति जी सुन्दरसाथ को निर्देश (उपदेश) देते हुए कहते हैं कि हे साथ जी! जब आत्मा में धनी की अखण्ड "मैं" आ जाती है, तब ही वह अपनी निस्बत के वास्तविक स्वरूप की पहचान करती है और ब्रह्मवाणी के इन गुझ रहस्यों को समझ पाती है।

भावार्थ- मात्र वाणी पढ़कर अपने को धनी की अँगना मानना निस्बत की वास्तविक पहचान नहीं है। प्रियतम की "मैं" को अपने हृदय में धारण किये बिना निस्बत (मूल सम्बन्ध) की वास्तविक पहचान असम्भव है।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥२५९॥

पंच रोसनी का मंगला चरन

पंच रोसनी का तात्पर्य है – अक्षरातीत का पाँचों शक्तियों सहित श्री महामति जी के धामहृदय में विराजमान होकर खिलवत की रोशनी करना। यह छठा प्रकरण मंगलाचरण से सम्बन्धित है और दसवाँ प्रकरण "कलश पंच रोशनी" का है। इस प्रकरण के पश्चात् इश्क-रब्द आदि का प्रकरण है।

गैब बातें मेहेबूब की, बीच बका खिलवत।

हकें भेजी मुझ ऊपर, रूह-अल्ला ल्याए न्यामत॥१॥

परमधाम के अन्दर मूल मिलावा में विराजमान श्री राज जी के दिल की गुह्य बातें आज दिन तक छिपी हुई थीं। धाम धनी ने श्यामा जी के द्वारा उन सारी न्यामतों को मुझे प्राप्त कराया।

भावार्थ- श्री राज जी के दिल में उमड़ने वाले आठों सागरों के गुह्य रहस्य की बातों से संसार अनजान था। श्री श्यामा जी जब अपने दूसरे जामें (श्री मिहिरराज जी के तन) में विराजमान हुई तो खिलवत, परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार ग्रन्थ के रूप में आनन्द का अखण्ड रस फूट पड़ा। इसे ही इस चौपाई में श्री राज जी के द्वारा श्यामा जी के माध्यम से दिया हुआ कहा गया है।

रूह-अल्ला आया रूहन पर, उतर चौथे आसमान।

सब सुध लाहूती ल्याइया, जो लिख्या बीच फुरमान॥२॥

चौथे आकाश परमधाम से श्यामा जी सब सुन्दरसाथ के लिये परमधाम का सारा ज्ञान लेकर आयीं। यह सारा प्रसंग कुरआन के अन्दर वर्णित है।

भावार्थ- कुरआन के पारा २८ सूरा ६१ (सफ) आयत

६ में यह प्रसंग आया है। इसके अतिरिक्त तफ्सीर -ए- हुसैनी के पृष्ठ ५०९ पर भी श्यामा जी के प्रकटन का उल्लेख है। चार आकाश इस प्रकार हैं- १-मृत्युलोक (नासूत) का आकाश, २-वैकुण्ठ (मलकूत) का आकाश, ३-अक्षर की योगमाया (जबरूत) का आकाश, और ४-परमधाम (अर्श-ए-अजीम) का आकाश। यहाँ "आकाश" शब्द से तात्पर्य मात्र पञ्चभूतों वाले आकाश से नहीं, बल्कि क्षेत्र विशेष के विस्तार से है।

इलम लदुन्नी हक का, कुन्जी बका की जे।

मेहेर करी मुझ ऊपर, खोल दिए पट ए॥३॥

श्री राज जी का तारतम ज्ञान परमधाम की कुँजी है, अर्थात् इस तारतम ज्ञान के द्वारा ही परमधाम की

पहचान होती है। धाम धनी ने मेरे ऊपर मेहर कर श्यामा जी के माध्यम से तारतम ज्ञान दिया, जिसने माया के सभी पदों को हटाकर परमधाम की पहचान करा दी।

भावार्थ- तारतम ज्ञान को परमधाम की कुँजी कहने का अभिप्राय यह है कि इस ज्ञान के बिना आज दिन तक कोई भी व्यक्ति परमधाम के बारे में नहीं जानता था। यद्यपि "परमधाम" शब्द का प्रयोग तो होता था, किन्तु वह कहाँ है और कैसा है इसके बारे में किसी को भी कोई जानकारी नहीं थी।

अथर्ववेद के केन सूक्त तथा ऋग्वेद के मण्डल १० सूक्त ११३ मन्त्र ७११ में परमधाम का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद में परमधाम को "दिव्य ब्रह्मपुर" कहकर वर्णित किया गया है। इसका सांकेतिक वर्णन कठोपनिषद में भी है। कुरआन के पन्द्रहवें पारे

"सूरा तुल मेयराज" में भी मुहम्मद साहिब के द्वारा नासूत, मलकूत, और जबरूत को पार करते हुए अर्श-ए-अजीम में जाकर अल्लाह तआला के दीदार का वर्णन है, किन्तु तारतम ज्ञान के बिना कोई भी मतावलम्बी परमधाम के विषय में कुछ भी नहीं जान सका।

मोसों मिलाप कर कहया, मैं आया रूहन पर।

अरवाहें जेती अर्स की, तिन बुलावन खातिर॥४॥

मुझसे मिलकर श्री श्यामा जी ने कहा कि परमधाम से जो भी ब्रह्मसृष्टि इस माया का खेल देखने के लिये आयी है, मैं उन्हें जाग्रत कर वापस परमधाम ले चलने के लिये आयी हूँ।

मोहे कहया तेरी रूह, आई अर्स अजीम सों।

कुन्जी देत हों तुझको, पट खोल दे सब को॥५॥

मुझसे श्यामा जी ने कहा कि तू इन्द्रावती की आत्मा है और परमधाम से माया का खेल देखने के लिये आयी है। मैं तुम्हें तारतम ज्ञान की कुञ्जी देती हूँ। इसके द्वारा तुम सभी धर्मग्रन्थों के भेद खोलकर माया के परदे हटा दो, जिससे सभी को अक्षरातीत एवं परमधाम की पहचान हो जाये।

न्यामत ल्याए सब रात में, लैलत-कदर के माहें।

बुलाए ल्याओ रूहें फजर को, वतन कायम है जाहें॥६॥

लैल-तुल-कदर के इस तीसरे तकरार जागनी ब्रह्माण्ड की रात्रि में श्री श्यामा जी तारतम ज्ञान की न्यामत लेकर आयीं। उन्होंने श्री इन्द्रावती जी को आदेश दिया कि तुम

तारतम ज्ञान से रात्रि का अन्धकार मिटाकर ज्ञान का सवेरा करो और सबको जाग्रत करके परमधाम लेकर आओ।

भावार्थ- लैल-तुल-कद्र का अर्थ होता है- इस प्रकार की लम्बी रात्रि। जागनी ब्रह्माण्ड में भी अज्ञान रूपी रात्रि का अन्धकार तब तक बना रहा, जब तक वाणी नहीं उतरी थी। यद्यपि श्रीमुखवाणी में अवश्य कहा गया है कि-

सुन्दरबाई कहे धाम से, मैं साथ बुलावन आई।

धाम से ल्याई तारतम, करी ब्रह्माण्ड में रोसनाई॥

इस चौपाई में "रोशनाई" का तात्पर्य पूर्णमासी के चन्द्रमा की रोशनी से है। सूर्य के उगे बिना न तो रात्रि मिटेगी और न ही ज्ञान का सवेरा (फज्र) होगा। यही कारण है कि कियामतनामा १२/४ में सद्गुरु धनी श्री

देवचन्द्र जी को पूर्णमासी का चन्द्रमा तथा श्री प्राणनाथ जी को दोपहर का सूरज कहा गया है। "वह चांद ए सूरज, आखिरी इमाम।" अन्यत्र मारफत ४/७१ में कहा गया है— "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी दिन" अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है जो सबके हृदय में परमधाम के ज्ञान का उजाला करेगा।

अर्स चौदे तबकों, नजर न आवत किन।

सो सेहेरग से नजीक, देखाया बका वतन॥७॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आज तक परमधाम का दर्शन किसी को भी नहीं हो सका था। धाम धनी ने तारतम वाणी के द्वारा उसे प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट दिखा दिया।

भावार्थ- तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण बड़े-बड़े ऋषि, मुनियों, योगियों, एवं पैगम्बरों को भी निराकार-बेहद से आगे का मार्ग नहीं मिल सका। तारतम ज्ञान के द्वारा सुन्दरसाथ ने परमधाम का ज्ञान प्राप्त कर लिया और निस्बत के सम्बन्ध से इश्क के द्वारा उसे अपने धाम हृदय में बसा लिया। अनन्त परमधाम उन्हें अपने धाम हृदय में ही नजर आने लगा। इसे ही शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट कहा गया।

एह इलम जिन आइया, सेहेरग से नजीक ताए।

ए पट नजरों खोल के, लिए अर्स में बैठाए॥८॥

श्रीमुखवाणी का यह ब्रह्मज्ञान जिसके हृदय में बस जाता है, उसके लिये तो परमधाम अपनी प्राणनली से भी अधिक नजदीक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त यह

आत्मिक दृष्टि खोलकर माया के सभी परदे हटा देता है तथा परमधाम का दीदार करा देता है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "लिए अर्स में बैठाए" का कथन आलंकारिक है। इसका भाव है अर्श (परमधाम) का दीदार कराना। परमधाम में तो अपने मूल तन से बैठे ही हुए हैं। दोबारा बैठने का भाव आत्मिक दृष्टि का वहाँ पहुँचकर दीदार करने से है। "हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन भी इसी सन्दर्भ में है।

ए नेक हकीकत केहेत हों, है बात बिना हिसाब।

सो जाने जो लेवे कुन्जी, खोले माएने मगज किताब॥९॥

अक्षरातीत के आवेश से अवतरित इस ब्रह्मवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) की महिमा अनन्त है। मैंने तो इसकी

थोड़ी सी गरिमा की ही वास्तविकता बतायी है। इसकी महत्ता तो वही समझता है, जो इसे ग्रहण करके सभी धर्मग्रन्थों के गुझ रहस्यों को जान जाता है।

सब किताबन की, जब पाई हकीकत।

तब तिन सब जाहेर हुई, महंमद हक मारफत॥१०॥

जब तारतम ज्ञान द्वारा सभी धर्मग्रन्थों में छिपे हुए यथार्थ सत्य का बोध हो जाता है, तो मारिफत के स्वरूप श्री राज जी तथा हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की भी वास्तविक पहचान विदित हो जाती है।

भावार्थ— पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बुद्ध गीता, बुद्ध स्तोत्र, कुरआन-हदीसों, तथा बाइबल आदि में श्री प्राणनाथ जी एवं स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान संकेतों में दी गई है, किन्तु उसे तारतम ज्ञान के

द्वारा जाना जा सकता है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

एह न्यामत जब आई, तब खुले सब द्वार।

जो पट कानों ना सुने, सो खोले नूर के पार॥११॥

जब तारतम वाणी की यह न्यामत सुन्दरसाथ में आयी, तो सबको परमधाम के दर्शन का मार्ग मिल गया। अक्षर से भी परे अक्षरातीत और परमधाम के जिन गुह्य भेदों को आज दिन तक किसी ने अपने कानों से सुना नहीं था, वे भी स्पष्ट हो गये।

भावार्थ- "द्वार खुल जाना" या "द्वार बन्द हो जाना" मुहावरे हैं, जिनका अर्थ होता है- मार्ग मिल जाना या अवरुद्ध (बन्द) हो जाना। तारतम ज्ञान के अवतरण से पहले किसी को भी परमधाम के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त

नहीं था, जो आज प्राप्त है। अक्षरातीत की खिलवत, निस्बत, वाहिदत, तथा इश्क की हकीकत एवं मारिफत का भी कोई ज्ञान नहीं था, किन्तु आज यह सरलता से उपलब्ध है।

बादल रुह-अल्लाह का, बरस्या वतनी नूर।

अर्स बका का नासूत में, हुआ सब जहूर॥१२॥

श्री श्यामा जी रूपी बादल से परमधाम के तारतम रूपी ज्ञान की वर्षा हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि इस नश्वर जगत् में भी अखण्ड परमधाम का अलौकिक ज्ञान प्रकाश में आ गया।

जब थें दुनी पैदा हुई, अब लग थें अव्वल।

बका पट किने न खोल्या, कई गए ब्रह्मांड चल॥१३॥

जब से सृष्टि के पैदा होने की प्रक्रिया शुरू हुई है, तब से लेकर आज दिन तक असंख्य (कई) ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं और लय हो गये हैं, लेकिन किसी ने भी अखण्ड का दरवाजा आज दिन तक नहीं खोला था।

भावार्थ- इस चौपाई के कथन से यह स्पष्ट होता है कि मोह सागर का विस्तार अनन्त हैं, जिसमें पानी के बुलबुलों की तरह चौदह लोकों जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड पैदा होते हैं और लीन होते हैं। इन ब्रह्माण्डों में जन्म लेने वाले प्राणी इस मोह सागर (निराकार) के परे के बारे में कुछ भी नहीं जानते।

अव्वल पैदा होए के, दुनी हो जात फना।

तिनमें कछुए ना रहे, ज्यों उड़ जात सुपना॥१४॥

जिस प्रकार नींद के टूटते ही सपना टूट जाता है और

सपने में देखी हुई कोई भी वस्तु बचती नहीं है, उसी प्रकार प्रारम्भ से ही आदिनारायण के स्वप्न में यह सृष्टि पैदा होती रही है और लय होती रही है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय पैदा होता है कि स्वप्न कौन देखता है- आदिनारायण या अव्याकृत में स्थित सुमंगला पुरुष?

वस्तुतः नींद में ही स्वप्न शुरू होता है। मोह सागर ही नींद का स्वरूप है, इसलिये स्वप्न भी आदिनारायण को ही होगा। चाहे सुमंगला पुरुष हो या सबलिक स्थित चिदानन्द लहरी पुरुष, ये साक्षात् मोह सागर रूपी नींद में नहीं पड़ सकते। ये सृष्टि रचना के गहन चिन्तन में खो गये, जिसे स्वप्न के माध्यम से वर्णित किया गया है। यद्यपि सुमंगला पुरुष की सुरता मोहसागर में अवश्य प्रविष्ट हुई, किन्तु चिन्तन के द्वारा, न कि नींद के

आवरण में। वास्तविकता यह है कि इनका स्वप्न आदिनारायण के स्वप्न से भिन्न है। इनके स्वप्न को मन का विलास कहा गया है, जैसे— इत अक्षर को विलस्यो मन, पांच तत्व चौदे भवन (प्रकटवाणी)।

ऐसे खेल कई हुए, सो फना ही हो जात।

एक जरा बाकी ना रहे, कोई करे न बका की बात॥१५॥

मोह सागर में इस ब्रह्माण्ड जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड बनते रहते हैं और लय होते रहते हैं। महाप्रलय में एक कण भी नहीं बचता। इस नश्वर जगत् में कोई भी अखण्ड धाम की बात नहीं करता है।

दौड़े कई पैगंमर, कई तीर्थकर अवतार।

अव्वल से आखिर लग, किन खोल्या न बका द्वार॥१६॥

अनेक पैगम्बरों, तीर्थकरों, तथा अवतारों ने अखण्ड धाम का साक्षात्कार करने के लिये बहुत प्रयास किया, किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक कोई भी अखण्ड धाम की प्राप्ति नहीं कर सका।

द्रष्टव्य— यह कथन मात्र जीव सृष्टि के लिये है, अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं के लिये नहीं। अक्षर ब्रह्म की इन पाँच सुरताओं के लिए भी परमधाम अप्राप्य ही रहा।

चौदे तबकों बका का, कोई बोल्या न एक हरफ।

तो ए क्यों पावे हक सूरत, किन पाई न बका तरफ॥१७॥

चौदह लोक में रहने वाले किसी भी व्यक्ति ने आज दिन तक परमधाम के बारे में एक शब्द तक नहीं कहा है। जब किसी को भी यह पता नहीं चल पाया कि परमधाम कहाँ है, तो वे उसमें विराजमान अक्षरातीत के स्वरूप को कैसे

जान सकते हैं?

जो हक पैदा होए नासूत में, तो होय सबे हैयात।

इलम अपना देय के, करें जाहेर बका बिसात॥१८॥

अक्षरातीत के इस ब्रह्माण्ड में प्रकट होने पर सभी प्राणियों का अखण्ड मुक्ति पाना निश्चित है। धाम धनी अपने तारतम ज्ञान द्वारा परमधाम की शोभा एवं लीला को जाहिर कर रहे हैं।

सो इलम रूहअल्ला, ले आया हक का।

सेहेरग से नजीक देखाए के, माहें बैठावत बका॥१९॥

श्री राज जी के उस तारतम ज्ञान को श्यामा जी लेकर आयी हैं। उन्होंने इस ज्ञान से परमधाम और धाम धनी को प्राणनली से भी नजदीक होने का अहसास कराया है

तथा आत्मिक दृष्टि को परमधाम में पहुँचा दिया है।

ए बात सुनो तुम मोमिनों, अपनी कहूं बीतक।

मेहेर करी मुझ ऊपर, ए इलम खुदाई बेसक॥२०॥

हे सुन्दरसाथ जी! मेरी एक बात सुनिए! मैं अपनी आपबीती कह रही हूँ। तारतम वाणी के रूप में प्रियतम अक्षरातीत ने अपना ब्राह्मी ज्ञान देकर मेरे ऊपर बहुत बड़ी मेहर की है। इस वाणी ने मुझे बेशक कर दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट विदित होता है कि स्वयं को संशय रहित करने के लिये ब्रह्मवाणी के ज्ञान को अपने दिल में बसाना अनिवार्य है।

कौल अलस्तो-बे-रब का, किया रूहों सों जब।

हक इलम से देखिए, सोई साइत है अब॥२१॥

परमधाम से इस खेल में आते समय श्री राज जी ने
 रुहों से कहा था कि "क्या मैं तुम्हारा खाविन्द नहीं हूँ"
 (अलस्तो बिरब्ब कुंम)। यदि श्रीमुखवाणी के ज्ञान की
 दृष्टि से देखा जाये, तो मूल मिलावा में अभी भी वही
 समय है और वही "वले न भूले हम" की आवाज गूँज
 रही है।

वले जवाब रुहों कह्या, अजूं सोई आवाज बीच कान।

खुलासा ३/७

भावार्थ- कुरआन में "अलस्तो बिरब्ब कुंम" का प्रसंग
 आया है। यद्यपि इस जागनी ब्रह्माण्ड में आये हुए लगभग
 ४०० वर्ष से अधिक का समय हो गया है, फिर भी मूल
 मिलावा में एक पल भी नहीं बीता है और उतने ही समय
 में व्रज-रास की लीला बीत चुकी है तथा जागनी
 ब्रह्माण्ड भी अन्तिम चरण में है। यहाँ तक कि जब हम

अपने मूल तनों में उठेंगे, तब भी वही (वले न भूले हम)
आवाज सुनायी पड़ेगी।

दुनियां दिल मजाजी, कहया सो कछुए नाहें।

और दिल हकीकी मोमिन, हक अर्स कहया इनों माहें॥२२॥

संसार के जीवों का दिल झूठा होता है। यथार्थ में स्वप्नमयी होने के कारण वह होता ही नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों का दिल सच्चा होता है, जिन्हें धनी का अर्थ कहलाने की शोभा प्राप्त है।

द्रष्टव्य— इस चौपाई में यह संशय होता है कि क्या गौतम, कपिल, और कणाद जैसे ऋषियों, तथा हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर जैसे धर्मात्माओं का भी हृदय झूठा था? वर्तमान सुन्दरसाथ में तो उपरोक्त महापुरुषों जैसी धार्मिकता का दसवाँ अंश भी नहीं है, अतः उनके दिल

को अर्श कैसे कहा जा सकता है?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यद्यपि उपरोक्त महापुरुषों ने जीवन भर सत्य, धर्म, योग, और तप का आचरण किया, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण वे अक्षरातीत की शोभा को अपने दिल में न तो बसा सके और न निराकार-बेहद से परे का ज्ञान प्राप्त कर सके। उनका अन्तःकरण मोह-अहंकार से ही बना हुआ था। इसलिये स्वप्नवत् होने से उसके अस्तिस्व को ही नकार दिया गया है। इसके विपरीत धर्म विरुद्ध कार्यों में संलग्न सुन्दरसाथ यदि १५ मिनट के लिये भी ध्यान करता है, तो युगल स्वरूप का ही करता है। उतनी देर के लिये उसका दिल अर्श की भूमिका निभाता है।

यद्यपि उसका जीव और दिल भी अन्य सांसारिक जीवों

की तरह ही होता है, किन्तु तारतम ज्ञान और अँगना भाव से उसकी आध्यात्मिक स्थिति अन्य जीवों से भिन्न होती है।

सौभाग्यवश! यदि उस सुन्दरसाथ के जीव पर परमधाम की सुरता बैठी है, तब तो उसकी स्थिति विलक्षण हो जाती है।

आत्मा "परात्म" का प्रतिबिम्ब होती है। उसके धाम हृदय में अक्षरातीत का युगल स्वरूप विराजमान होता है। संसार के किसी भी महापुरुष से उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

इलम हक और दुनी का, कही जाए ना तफावत।

ए सुकन सुन रूह मोमिन, आवसी अर्स लज्जत॥२३॥

अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी तथा संसार की स्वप्नवत् बुद्धि

के ज्ञान में इतना अन्तर है कि उसे शब्दों में कहा ही नहीं जा सकता। ब्रह्मवाणी के वचनों को सुनकर ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ को अपने धाम का स्वाद आयेगा।

बीच बका के रूहन सों, हकें करी खिलवत।

सो साथ रूह-अल्ला के, भेजे संदेसे इत॥२४॥

परमधाम के अन्दर मूल मिलावा में धाम धनी ने अपनी आत्माओं से जो बातें की, उसे उन्होंने सन्देश के रूप में श्री श्यामा जी के हाथ से भिजवाया।

रूह-अल्ला आए अर्स से, मुझ सों किया मिलाप।

कहे मैं आया तुम वास्ते, मुझे भेज्या है आप॥२५॥

श्री श्यामा जी परमधाम से आयीं। उन्होंने मुझसे (श्री इन्द्रावती जी से) मिलकर कहा कि मुझे धाम धनी ने

तुम्हारे पास भेजा है और मैं तुम्हारे लिये ही आयी हूँ।

ए न्यामत हक के दिल की, सोई जाने दर्ई जिन।

या दिल जाने मेरी रूह का, सो कहूँ आगे मोमिन॥२६॥

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने अपने दिल की जो न्यामतें मुझे दी हैं, उनकी गरिमा या तो स्वयं श्री राज जी जानते हैं या मेरा दिल जानता है। अब मैं सुन्दरसाथ से उन न्यामतों का वर्णन कर रही हूँ।

ए न्यामत वाहेदत की, हक के दिल की बात।

और कोई ना ले सके, बिना बका हक जात॥२७॥

श्री राज जी का दिल वाहिदत का सागर है, जिसमें निसबत, खिलवत, इश्क आदि का रस भरा हुआ है। इन बातों को परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के सिवाय अन्य कोई

यथार्थ रूप में ग्रहण ही नहीं कर सकता है।

रूह-अल्ला कहे अर्स से, तेरी रूह आई उतर।

मैं दई बका तोहे न्यामत, अव्वल से आखिर॥२८॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी से कहा कि तुम्हारी आत्मा परमधाम से इस माया का खेल देखने के लिये आयी है। मैंने तुम्हें परमधाम की अखण्ड न्यामत के रूप में तारतम ज्ञान दिया है, जिससे तुम्हें शुरु से लेकर आखिर तक की जानकारी मिल जायेगी।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि तारतम ज्ञान द्वारा इश्क-रब्द से लेकर ब्रज, रास, जागनी, एवं योगमाया में होने वाली न्याय की लीला तक की जानकारी मिल जायेगी।

बादल बरस्या रूह-अल्ला, ए बूंदें लई जो तिन।

और कोई न ले सके, बिना अर्स रूहन॥२९॥

श्यामा जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) रूपी बादल से परमधाम के ज्ञान की वर्षा हुई। इस अमृत वर्षा की बूँदों का लाभ परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों ने ही लिया, अन्य कोई दूसरा उसका लाभ नहीं ले सका।

भावार्थ- वैसे तो यह बात ठीक है कि ब्रह्मवाणी का वास्तविक लाभ ब्रह्मसृष्टि ही ले पाती है और सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने भी वासनाओं को परख-परख कर ही तारतम दिया। श्री जी के साथ पन्ना जी पहुँचने वाले सुन्दरसाथ में ५०० ब्रह्मसृष्टि, १५०० ईश्वरी सृष्टि, तथा ३००० जीव सृष्टि थीं।

यह तो स्पष्ट है कि ब्रह्मवाणी को आत्मसात् कर ब्रह्मसृष्टि ही हकीकत एवं मारिफत (ज्ञान एवं विज्ञान) की

राह अपना पाती हैं। जीव सृष्टि तो कर्मकाण्ड और उपासना तक ही चल पाती है, किन्तु इससे उसे अखण्ड मुक्ति तो मिल ही जायेगी। श्री जी के चरणों में हजारों की संख्या में सुन्दरसाथ का घर छोड़कर आना यह दर्शाता है कि जीव सृष्टि वाणी का अमृतपान , पूर्ण नहीं तो , आंशिक रूप में अवश्य ही कर लेती है।

जिन पिआ मस्ती तिन की, बीच दुनी के छिपे नाहें।

सो मस्ती मोमिनो जाहेर हुई, चौदे तबकों माहें॥३०॥

जिन्होंने ब्रह्मवाणी से मिलने वाले अमृत रस का पान किया है, वे संसार में छिपे नहीं रह सकते। चौदह लोक की इस झूठी दुनिया में ब्रह्मानन्द का रस क्या है? यह ब्रह्ममुनियों से ही सबको पता चला।

भावार्थ— ब्रह्मानन्द में डूबे हुए व्यक्ति का आचरण

सामान्य व्यक्तियों से अलग होता है। एक पल के ब्रह्मानन्द के सामने वह करोड़ों वैकुण्ठ के राज्य को भी तुच्छ समझता है।

कई कोट राज बैकुण्ठ के, न आवे इतके खिन समान।

किरंतन ७८/२

ये लक्षण परमधाम के उन ब्रह्ममुनियों में होता है, जो इस माया का खेल देखने आये हैं।

हकें न छोड़े अव्वल से, अपना इस्क दिल ल्याए।

आप इस्क न छोड़ी निसबत, पर मैं गई भुलाए॥३१॥

परमधाम वाला अपना इश्क दिल में लेकर श्री राज जी ने शुरु से ही (ब्रज से) हमसे प्रेम करना नहीं छोड़ा। मूल सम्बन्ध के कारण वे हमेशा ही हमसे प्रेम करते रहे, किन्तु माया के प्रभाव के कारण मैं ही अपना सम्बन्ध

भुला बैठी।

भावार्थ— इश्क के अनन्त सागर श्री राज जी इस संसार में आवेश स्वरूप से आये हैं, इसलिये उनके ऊपर माया का आवरण नहीं पड़ता। परमधाम की वाहिदत में बराबरी का इश्क रखने वाली ब्रह्मात्मायें जब इस संसार में सुरता से आयीं, तो उनके ऊपर माया का आवरण ऐसा पड़ा कि वे स्वयं को, धनी को, तथा निज घर को भी भूल गयीं।

अक्षर ब्रह्म भी यदि अपनी सुरता से इस संसार में आते हैं तो स्वयं को भूल जाते हैं, जबकि उनका ही फरिश्ता जिबरील स्वयं को नहीं भुला पाता क्योंकि वह शक्ति के रूप में आता है। अरब की घटना इसका स्पष्ट प्रमाण है, जिसमें मेयराज के समय जिबरील ही अक्षर की आत्मा को मलकूत, जबरूत, तथा अर्श-ए-अजीम की पहचान

देता है।

जगाई तो भी ना जागी, आप कहया इत आए।

मैं परी बीच फरेब के, मोहे थके जगाए जगाए॥३२॥

मेरे प्राण प्रियतम ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर मुझे तरह-तरह से समझाकर जगाया, तो भी मैं नहीं जागी। मैं माया के जाल में इस तरह फँस गयी थी कि धनी मुझे जगा-जगाकर थक गये, किन्तु मैं उस समय नहीं जाग सकी।

भावार्थ- अक्षरातीत के लिये किसी की जाग्रति में "असम्भव" शब्द नहीं होता, किन्तु यहाँ पर लीला रूप में ऐसा दर्शाया गया है। धनी के हुक्म से सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी के द्वारा जागनी में ऐसी ही घटना घटित होनी थी। यद्यपि अक्षरातीत कभी भी थक नहीं सकते,

किन्तु सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का श्री मिहिरराज जी के ऊपर जो लाड़-प्यार था, उसे लक्ष्य करके ऐसा कहा गया है।

इस्क न आवे पेहेचान बिना, सो मोको दई पेहेचान।

दई बातें हक के दिल की, हक की निसबत जान॥३३॥

बिना पहचान के धनी का इश्क नहीं आता, इसलिये श्री राज जी ने श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर मुझे अपनी पहचान दी। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने धाम की निस्बत जानकर श्री राज जी के दिल की गुह्य बातें बतायीं।

भावार्थ- नूर, नीर (रूहों की शोभा), क्षीर (वाहिदत), घृत (इश्क), मधु (इल्म) आदि सभी सागर श्री राज जी के दिल से ही प्रकट हुए हैं। श्री राज जी के दिल में इन

सागरों का जो अनन्त रस उमड़ रहा है, वह श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी को संक्षेप में बताया। उसका विस्तृत स्वरूप परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार की वाणी में उतरा।

मैं ना कछू जानी पेहेचान, मुझ पर करी मेहेनत।

मैं इस्क न जानी निसबत, ना तो मोहे दर्ई हक न्यामत॥३४॥

मुझे जगाने के लिये सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने बहुत प्रयास किया, लेकिन मैं उनके अन्दर बैठे हुए धाम धनी की पहचान नहीं कर सकी। उन्होंने तो तारतम ज्ञान के रूप में श्री राज जी की न्यामत ही मुझे दी थी, फिर भी मैं धनी के इश्क और निस्बत (मूल सम्बन्ध) को नहीं पहचान सकी।

इस्क पेहेचान ना निसबत, सब फरेबें दिया भुलाए।

हकें इस्क अपना, आखिर लो निबाहे॥३५॥

मायावी प्रपञ्चों ने हमें धनी की पहचान, इश्क, और मूल सम्बन्ध को भी भुलवा दिया है। इतना कुछ होने पर भी मेहर के सागर धनी अपना प्रेम आखिर तक निभा रहे हैं।

भावार्थ— परमधाम की सम्पूर्ण लीला श्री राज जी के दिल से होती है। व्रज में सखियों द्वारा कटु शब्द कहे जाने पर धनी ने अपना प्रेम निभाया। रास में सखियों में "मैं" आने पर भी अपना प्रेम निभाया। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में दोनों तनों (श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज जी) के अन्दर विराजमान होकर जगह-जगह के सुन्दरसाथ को जगाया, जबकि सुन्दरसाथ तो धनी को भुलाए बैठे थे। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

ए सुख शब्दातीत के, क्यों कर आवें जुबान।

बाले थें बुड़ापन लग, मेरे सिर पर खड़े सुभान॥३६॥

धनी से मिलने वाले सुख शब्दातीत परमधाम के हैं, शब्दों से उसका वर्णन नहीं हो सकता। मेरे बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक वे मेरे सिर पर खड़े रहे हैं, अर्थात् मेरे ऊपर मेहर की वर्षा करते रहे हैं।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी के लिये बाल्यावस्था वह है, जिसमें श्री मिहिरराज सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के चरणों में पहुँचे। परमधाम की ब्रह्मवाणी उतरने के साथ-साथ उनकी ज्ञानमयी अवस्था ऊँची होती गयी, जिसे वृद्धावस्था की संज्ञा दी गयी है।

तो भी घाव न लग्या अरवाह को, जो देखे अलेखे एहेसान।

न्यामत पाई बका हक की, कर दई रूह पेहेचान॥३७॥

अक्षरातीत के उन अनन्त अहसानों का मैंने अनुभव किया, जो मुझे माया के बन्धनों से निकालने के लिये किये गये थे। इतना होने पर भी मेरी आत्मा में चोट नहीं लगी, अर्थात् मेरी आत्मा धनी के प्रेम में नहीं डूब सकी। यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान के रूप में मुझे परमधाम की अखण्ड न्यामत दी थी और मुझे अपने स्वरूप की पहचान भी करा दी थी।

भावार्थ- इस चौपाई में बोलचाल की भाषा में आत्मा को चोट लगने वाली बात कही गयी है। वस्तुतः यह दिल का विषय है। आत्मा अपने मूल स्वरूप में कूटस्थ है, किन्तु जीव पर विराजमान होकर दिल के माध्यम से वह सुख-दुःख का अनुभव करती है। जीव का दिल अलग है और आत्मा का दिल अलग है। जीव अपने दिल के माध्यम से सुख-दुःख का भोक्ता है, जबकि आत्मा

अपने दिल के माध्यम से उसकी द्रष्टा है। आत्मा का दिल परात्म से जुड़ा है, जबकि जीव का दिल माया से जुड़ा है। इस सम्बन्ध में सिनगार के ये कथन बहुत महत्वपूर्ण हैं—

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नाहें।

सिनगार ११/७९

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।

कहने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥

सिनगार २७/१४

नजर से न काढ़ी मुझे, अव्वल से आज दिन।

क्यों कहूँ मेहेर मेहेबूब की, जो करत ऊपर मोमिन॥३८॥

इतना कुछ होने पर भी ब्रज से (अव्वल से) लेकर

आज तक धनी ने मुझे अपनी मेहर की नजरों से अलग नहीं किया। प्रियतम अक्षरातीत सुन्दरसाथ के ऊपर जिस प्रकार की अलौकिक मेहर करते हैं, उसे मैं शब्दों में कैसे कहूँ? यह नितान्त असम्भव है।

तन असल तले कदम के, और उपज्या तन सुपना।

ताए भी हक रहे नजीक, जो था बीच फना॥३९॥

हमारे मूल तन मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हैं और इस संसार में स्वप्न का तन प्रकट हुआ है। मृत्यु को प्राप्त हो जाने वाले इस नश्वर शरीर के अन्दर भी धनी प्राणनली (शाहरग) से अधिक निकट हैं।

भावार्थ— धाम धनी कभी भी अपनी आत्माओं से अलग नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में सिन्धी ग्रन्थ में कहा गया है—

सेहेरग से नजीक हक, आड़ा पट न द्वार।

खोली आंखे समझ की, देखती न देखे भरतार॥

सिन्धी १६/२

नींदे दिए गोते सुध बिना, ए जो सुपन का तन।

तिनको भी हकें न छोड़िया, सिर पर रहे रात दिन॥४०॥

इस स्वप्न के तन (श्री मिहिरराज जी) के अन्दर मेरी आत्मा विराजमान है। धनी के स्वरूप की वास्तविक पहचान न होने के कारण अज्ञान रूपी नींद ने मुझे इस भवसागर में बारम्बार गोते लगाने (डूबने-उतराने) के लिये विवश कर दिया। इतना कुछ होने पर भी धाम धनी ने हमें पल-भर के लिये भी नहीं छोड़ा। वे दिन-रात हमारे सिर पर खड़े रहे।

उमर अव्वल से आखिर लग, गुजरी सांई संग।

मैं पेहेले ना पेहेचाने, हक के इस्क तरंग॥४१॥

इस खेल में आने पर मेरी सारी उम्र धनी के चरणों में ही बीती है। अपने धाम हृदय में धनी के विराजमान होने से पहले मैं अपने प्रति उनके हृदय में उमड़ने वाले इश्क की तरंगों को पहचान नहीं सकी थी।

भावार्थ— हब्से में ही श्री इन्द्रावती जी को यह पहचान हुई कि धाम धनी उनसे कितना प्रेम करते हैं। इसके पहले सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन में विराजमान धनी के प्रेम को वे पहचान नहीं सके थे।

जो बात करनी है हकें, सो पेहेले लेवें माहें दिल।

पीछे सब में पसरे, जो वाहेदत में असल॥४२॥

श्री राज जी को जो कुछ भी करना होता है, उसे पहले

अपने दिल में लेते हैं। बाद में वह बात सभी के दिल में आ जाती है क्योंकि परमधाम की वाहिदत में सबका एक ही स्वरूप होता है।

एक पातसाही अर्स की, और वाहेदत का इस्क।

सो देखलावने रूहों को, पेहेले दिल में लिया हक॥४३॥

श्री राज जी ने अपने दिल में ले लिया कि मुझे अपनी आत्माओं को यह दिखाना है कि परमधाम की साहेबी कैसी है और वाहिदत में इश्क का स्वरूप क्या है?

जो पेहेले लई हकें दिल में, पीछे आई माहें नूर।

तिन पीछे हादी रूहन में, ए जो हुआ जहूर॥४४॥

श्री राज जी ने यह बात जैसे ही अपने दिल में ली, वैसे ही अक्षर ब्रह्म के हृदय में भी यही बात आ गयी। वाहिदत

के सम्बन्ध से आनन्द अंग श्यामा जी तथा सखियों में भी यही बात आ गयी। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में ही यह बात फैल गयी।

भावार्थ- श्री राज जी ने अक्षर ब्रह्म के अन्दर परमधाम की इश्क की लीला तथा सखियों के अन्दर अक्षर का खेल देखने की इच्छा पैदा की। अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत की सत्ता के स्वरूप हैं। उनके मन के स्वप्न की लीला देखने से सखियों को परमधाम की साहेबी का पता चलना है। इसलिये अक्षरातीत ने दोनों के अन्दर अलग-अलग प्रकार की इच्छा पैदा की, ताकि दोनों ही उनके स्वरूप को यथार्थ रूप में जान सकें।

वास्ते नूर-जलाल के, और हादी रुहन।

बोहोत बेवरा है खेल में, किया महंमद रुहों देखन।४५॥

अक्षर ब्रह्म, श्यामा जी, और सखियों की इच्छा पूरी करने के लिये यह खेल बनाया गया है। इसका इस संसार के धर्मग्रन्थों में बहुत अधिक विवरण है, क्योंकि यह खेल श्यामा जी और सखियों को दिखाने के लिये ही बनाया गया है।

भावार्थ- यह सृष्टि अनादि काल से बनती रही है और प्रलय को प्राप्त होती रही है। यह प्रक्रिया अनन्त काल तक चलती रहेगी, किन्तु व्रज और जागनी का यह ब्रह्माण्ड विशेषकर श्यामा जी और ब्रह्मात्माओं के लिये ही बनाया गया।

महामत कहे ऐ मोमिनोँ, हक साहेबी बुजरक।

बेसक इलम हक का, और हक का बड़ा इस्क॥४६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! श्री राज

जी की साहेबी सबसे महान है। उनके द्वारा श्रीमुखवाणी के रूप में अवतरित ब्रह्मज्ञान में किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं है। धाम धनी का प्रेम सर्वोपरि है।

प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥३०५॥

बेसकी का प्रकरण

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि अध्यात्म के जिन विषयों पर आज तक संशय बना रहा है, उनका निर्णय बहुत ही सरलता से इस ब्रह्मवाणी द्वारा हो जाता है और किसी प्रकार का कोई भी संशय किसी के मन में नहीं रह जाता।

ए इलम इन वाहेदत का, हकें सो बेसकी दर्ई मुझ।

नूर के पार द्वार बका के, सो खोले अर्स के गुझ॥१॥

परमधाम की वाहिदत से यह ब्रह्मवाणी अवतरित हुई है। इसके द्वारा धाम धनी ने मुझे पूर्ण रूप से बेशक बना दिया है। इस ब्रह्मवाणी ने तो अक्षर से भी परे उस अनादि परमधाम की पहचान करा दी है तथा परमधाम के छिपे हुए अनसुलझे रहस्यों को भी उजागर कर दिया

है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब श्री राज जी श्री महामति जी के अन्दर ही विराजमान होकर लीला कर रहे हैं, तो उन्हें अपने संशय मिटाने के लिये वाणी का सहारा क्यों लेना पड़ा?

इसके समाधान में यही कहना पड़ेगा कि इस कथन का संकेत सुन्दरसाथ के लिये है तथा छठें दिन की लीला में ब्रह्मवाणी की गरिमा को सर्वोपरि स्थान देने के लिये है।

चौदे तबकों ढूँढया, सब रहे दूर से दूर।

रूह-अल्ला के इलम बिना, हुआ न कोई हजूर॥२॥

चौदह लोकों के इस संसार में सभी खोजियों ने उस सच्चिदानन्द परब्रह्म तथा परमधाम को खोजने का प्रयास किया, लेकिन सभी दूर ही रहे। किसी को भी परमधाम

की पहचान नहीं हो सकी। श्यामा जी के तारतम ज्ञान के बिना आज दिन तक किसी को भी परमधाम तथा अक्षरातीत श्री राज जी का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका।

कई दुनियां में बुजरक हुए, किन बका तरफ पाई नाहें।

सो इलम नुकता ईसे का, बैठावे बका माहें॥३॥

इस संसार में बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी, और भक्तजन हो चुके हैं, किन्तु कोई भी परमधाम के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका। अब श्यामा जी के लाये हुए तारतम ज्ञान ने सबको परमधाम की पहचान करा दी है।

सो साहेदी देवाई महंमद की, सेहेरग से नजीक हक।

नूर के पार नूर-तजल्ला, इलम माहें बैठावे बेसक॥४॥

बसरी सूरत मुहम्मद साहिब से भी धाम धनी ने साक्षी दिलवायी कि प्रियतम परब्रह्म प्राणनली से भी अधिक निकट है। मल्की सूरत सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का तारतम ज्ञान अक्षर से परे अक्षरातीत के परमधाम की पहचान कराता है।

भावार्थ- कुरआन में यह बात कही गयी है कि अल्लाह तआला मोमिनों (क़ल्बे मोमिनीन अर्श अल्लाहु तआला कुरआन) की शहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट है। वस्तुतः इस प्रकार का कथन आत्मा-परमात्मा के अखण्ड सम्बन्ध को दर्शाने के लिये कहा जाता है कि परमात्मा आत्मा के सबसे अधिक निकट है। बृ० आ० ३० में भी कहा गया है- "यो आत्मनि तिष्ठति अन्तरों यं आत्मा न वेद" अर्थात् जो आत्मा के अन्दर है, किन्तु जिसे आत्मा नहीं जानती।

वस्तुतः आत्म-चक्षुओं से ही अपने हृदय धाम में परब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है, इसलिये आत्मा या हृदय धाम में परब्रह्म का निवास करना धर्मग्रन्थों में कहा गया है।

गिन तूं सुख बेसक के, जो इलम दिया नसीहत।

मेहेर करी मेहेबूब ने, हकें जान निसबत॥५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! प्रियतम ने तुमसे अपना अखण्ड सम्बन्ध जानकर तुम पर अपार मेहर की है। मेहर के रूप में उन्होंने तुझे जो तारतम ज्ञान दिया है, उसकी सिखापन से तू बेशक हो गयी है। अब बेशक हो जाने के पश्चात् मिलने वाले आत्मिक सुख की पहचान कर।

सक ना तीन उमत में, सक ना खास उमत।

सक ना उमत फरिस्ते, सक ना कुंन कुदरत॥६॥

तारतम ज्ञान से तीनों प्रकार की सृष्टियों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रहा। न तो अक्षरातीत की अर्धांगिनी ब्रह्मसृष्टियों के विषय में संशय रहा और न अक्षर की ईश्वरी सृष्टि के सम्बन्ध में कोई संशय रहा। मोह सागर के अन्दर कुन्न (हो जाना) के संकल्प से प्रकट होने वाली जीव सृष्टि के सम्बन्ध में भी अब कोई संशय नहीं रहा।

द्रष्टव्य— परमधाम में प्रत्येक पदार्थ अनादि है, इसलिये धनी की अंगनाओं के साथ "सृष्टि" शब्द का प्रयोग उचित नहीं, किन्तु समझ में आ जाने के लिये ऐसा (ब्रह्मसृष्टि) कहना ही पड़ता है।

खासल खास रूहें इस्क, और खासे बंदगी दिल।

आम वजूद जदल से, जिनों नासूती अकल॥७॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि धनी को रिझाने के लिये इश्क की राह अपनाती है, तो ईश्वरी सृष्टि दिल (हृदय) से बन्दगी करती है। जीव सृष्टि की बुद्धि मृत्युलोक की होती है। वह झूठे शरीर से कर्मकाण्ड की राह पर चलती है।

भावार्थ— यद्यपि शरीर के अन्दर ही आत्मा, जीव, और हृदय का अस्तित्व होता है, किन्तु प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से होता है, भक्ति (बन्दगी) का सम्बन्ध हृदय से, और कर्मकाण्ड का सम्बन्ध इन्द्रियों (हाथ, पैर, मुख आदि) से होता है। कर्मकाण्ड को शरीर से इसलिये जोड़ा जाता है क्योंकि इन्द्रियों से ही कर्म होता है।

रुहों लई हकीकत मारफत, गिरो फरिस्तों हकीकत।

आम खलक जाहेरी, जो करम कांड सरीयत॥८॥

ब्रह्मसृष्टि ज्ञान-विज्ञान (हकीकत-मारिफत) की राह अपनाती है। ईश्वरी सृष्टि ज्ञान की राह लेती है और जीव सृष्टि दिखावे वाले कर्मकाण्ड (शरियत) के मार्ग पर चलती है।

भावार्थ- इस चौपाई में ज्ञान का तात्पर्य पुस्तकों के अध्ययन से संग्रहित होने वाले ज्ञान से नहीं, बल्कि परमसत्य के साक्षात्कार से है। विज्ञान वह अवस्था है, जिसमें आत्मा प्रियतम से एकरूप होकर स्वयं को भुला देती है।

दो गिरो पोहोंची वतन अपने, तीसरी आम जो दीन।

सो तेता ही नजीक, जिनका जेता आकीन॥९॥

ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि तारतम ज्ञान से अपने अखण्ड धाम की पहचान करके उसका साक्षात्कार कर लेती है, जबकि जीव सृष्टि कर्मकाण्ड से जुड़कर इसी संसार में फँसी रह जाती है। इन तीनों सृष्टियों में धनी पर जिसका जितना विश्वास होता है, उतना ही वह धनी के नजदीक होती है।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में आये हुए "पोहोंची" शब्द का अर्थ "अपने धाम पहुँच गयी" ऐसा नहीं होगा, बल्कि इसका भाव यह है कि ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी ने अपनी ज्ञान दृष्टि से अखण्ड धाम की लज्जत (स्वाद) ली तथा आत्मिक दृष्टि से उसका दीदार किया।

पाई तीनों की बेसकी, कुफर बंदगी इस्क।

ऐसा इलम इन दुनी में, हुई बका की बेसक॥१०॥

धाम धनी ने हमें इस संसार में ऐसा अलौकिक ज्ञान दिया है, जिसने ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि को परमधाम के सम्बन्ध में पूरी तरह से संशय रहित कर दिया है। तीनों सृष्टियों की राह – इश्क, बन्दगी, और कुफ्र- के सम्बन्ध में अब कोई भी संशय नहीं रहा।

भावार्थ- इस चौपाई में कर्मकाण्ड को कुफ्र की संज्ञा दी गई है। इससे पूर्व की चौपाई और चौपाई ९ में भी कर्मकाण्ड पर करारा प्रहार किया गया है। फिर भी आश्चर्य की बात है कि सुन्दरसाथ में अभी भी कर्मकाण्ड की ही प्रधानता है। उसके जाल से कोई विरला ही निकल पाता है।

सक ना पैदा फना की, सक ना दोजख भिस्त।

हिसाब ठौर की सक नहीं, सक ना ठौर कयामत॥११॥

यह संसार कहाँ से पैदा होता है और कहाँ लय हो जाता है, इसके बारे में अब जरा भी संशय नहीं रहा ? बहिश्त और दोजक के सम्बन्ध में भी किसी प्रकार का संशय नहीं रहा। इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों का किस जगह (योगमाया में) न्याय किया जायेगा तथा उन्हें कहाँ अखण्ड किया जायेगा, इस बारे में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहा ?

भावार्थ- योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड मुक्ति के स्थानों को बहिश्त कहते हैं। हिन्दू धर्मग्रन्थों में जिसे नर्क कहा जाता है, उसे कतेब में दोजक कहा जाता है, किन्तु यहाँ दोजक का तात्पर्य प्रायश्चित्त रूपी दुःख की अग्नि में जलने से है। जो लोग हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान नहीं करेंगे तथा विषय-वासनाओं में डूबकर बुरे कार्य करेंगे, उन्हें पश्चात्ताप की अग्नि में जलना

पड़ेगा।

सक ना आठों भिस्त में, सक ना काजी कजाए।

बेसक किए आखिर लो, अव्वल से इसदाए॥१२॥

तारतम ज्ञान के अवतरित हो जाने पर आठ प्रकार की बहिश्तों के सम्बन्ध में कोई भी संशय नहीं रहा। न्यायाधीश के रूप में परब्रह्म (अल्लाह तआला) के द्वारा किये (कराये) जाने वाले न्याय के बारे में भी कोई संशय नहीं रहा। इस ज्ञान से तो परमधाम से लेकर ब्रज, रास, जागनी, तथा योगमाया में होने वाली न्याय की लीला तक के सभी संशय समाप्त हो गये हैं।

भावार्थ- योगमाया में होने वाली न्याय की लीला में श्री मिहिरराज जी का जीव श्री राज जी का नूरी स्वरूप धारण करके सिंहासन पर विराजमान होगा। उस तन में

श्री राज जी का आवेश तो नहीं होगा , किन्तु जोश (जिबरील) और जाग्रत बुद्धि (इस्राफील) की शक्ति विराजमान होगी। चौदह लोकों के प्राणी उस स्वरूप को ही अक्षरातीत का स्वरूप मानेंगे। इसलिये धर्मग्रन्थों में न्याय करने वाले उस स्वरूप को परब्रह्म कहकर वर्णित किया गया है। पुराण संहिता, कुरआन-हदीसों, तथा बाईबल में इस विषय पर रोचक वर्णन किया गया है।

क्यों कर मुरदे उठसी, क्यों होसी हक दीदार।

क्यों कर हिसाब होएसी, ए सब रूह-अल्ला खोले द्वार॥१३॥

श्री श्यामा जी ने अपने तारतम ज्ञान से इन सारे भेदों को स्पष्ट कर दिया है कि कियामत के समय कब्रों से मुर्दे कैसे उठेंगे तथा उन्हें कैसे अल्लाह तआला का दीदार होगा? किस प्रकार से उनका न्याय किया जायेगा?

भावार्थ- तारतम ज्ञान के प्रकाश से शरीर में स्थित जीव जाग्रत होकर धनी की पहचान कर लेगा। इसे ही कब्रों से मुर्दों का जीवित होकर उठना कहते हैं। वाणी के उजाले में जाग्रत होने वाले प्रत्यक्ष (जाहेर) रूप में परब्रह्म स्वरूप श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करेंगे तथा परोक्ष (बातूनी) रूप में ध्यान द्वारा युगल स्वरूप का दर्शन करेंगे। ज्ञान दृष्टि से सबका न्याय यहाँ होगा तथा करनी के अनुसार न्याय योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगा। यह सारे भेद श्यामा जी ने अपने दूसरे जामे (श्री मिहिरराज जी के तन) में खोले।

केते दिन कयामत के, क्यों कयामत के निसान।

ए सक कछुए ना रही, जो लिखी बीच कुरान॥१४॥

कियामत में अभी कितने दिन बाकी हैं और कियामत के

सात निशान कौन-कौन से हैं? कुरआन में ये बातें संकेतों में लिखी हुई हैं, जिनके भेद खुल जाने पर अब किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है।

सक ना दाभ-तूल-अर्ज की, सक ना सूर मगरब।

बेसक हक कौल मोमिनो, रही ना सक कोई अब॥१५॥

दाभ-तुल-अर्ज जानवर के प्रकट होने के सम्बन्ध में अब किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है। इसी प्रकार परमधाम के ज्ञान रूपी सूर्य के पश्चिम में उगने तथा श्री राज जी के द्वारा कियामत के समय में प्रकट होने के बारे में भी अब किसी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है।

भावार्थ- मनुष्य के अन्दर पशुओं की वृत्ति का हो जाना ही दाब्ह-तुल-अर्ज जानवर का प्रकट होना है। जैसे-

शेर की छाती जैसे कठोर हृदय वाला होना, मुर्गे की तरह अकड़ कर रहने वाला होना, पहाड़ी बैल की तरह झगड़ा करने वाला हो जाना, सुअर की तरह बुरी दृष्टि वाला होना, और गीदड़ की पीठ की तरह धर्म मार्ग से दूर रहने वाला हो जाना।

सक ना आजूज माजूज की, आड़ी अष्ट धात दिवाल।

लिख्या टूटेगी आखिर, ए बेसक दुनी के काल॥१६॥

कुरआन में वर्णित है जब याजूज-माजूज जाहिर होंगे तो वे अष्ट धातु की दीवाल को चाटकर पतली कर देंगे। अन्त में जब वह गिर जायेगी तो सारे संसार का प्रलय हो जायेगा। ये दोनों सारे संसार के लिये काल स्वरूप हैं। इसके रहस्य भी विदित हो गये हैं और अब किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है।

भावार्थ- दिन और रात्रि ही याजूज-माजूज हैं, जो सबकी आयु को क्षीण कर रहे हैं। अष्ट धातुओं (रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, और ओज) से बना हुआ यह शरीर ही अष्ट धातु की दीवार है।

रूह-अल्ला सब रूहन को, पाक कर देवें आकीन।

कुफर दज्जाल को तोड़ के, बेसक करें एक दीन॥१७॥

श्री श्यामा जी सब सुन्दरसाथ ब्रह्ममुनियों को तारतम ज्ञान से निर्मल करके एक परब्रह्म के प्रति अटूट विश्वास दिलायेंगी। वे जीवों के मन में फैली हुई बुराइयों को नष्ट करके धनी के प्रति संशय रहित करेंगी और एक सत्य धर्म (निजानन्द मत) में स्थित करेंगी।

भावार्थ- दज्जाल का कुफ्र है- माया का अज्ञानरूपी अन्धकार, जिसके कारण जीव पाप करने के लिये विवश

हो जाता है। तारतम वाणी का रसपान करने से यह अन्धकार दूर होगा और जीव संशय रहित होकर एक परब्रह्म की शरण में आयेंगे।

ल्याया ईसा वास्ते मोमिनो, बेसक बका न्यामत।

करें हक जात पर सिजदा, इमाम मोमिनो इमामत॥१८॥

परमधाम की यह ब्रह्मवाणी सबके संशयों को नष्ट करने वाली है, जिसे श्यामा जी सब सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियों) के लिये लेकर आयी हैं। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुजमाँ श्री प्राणनाथ जी ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ का नेतृत्व करेंगे और सुन्दरसाथ उन पर सिजदा (प्रेमपूर्वक प्रणाम) करेंगे।

भावार्थ- श्री महामति (इन्द्रावती) जी के अन्दर पाँचों स्वरूपों को विराजमान हुआ देखकर सुन्दरसाथ ने उन्हें

धाम धनी का ही स्वरूप माना और उन पर सिजदा किया। इस सम्बन्ध में यह चौपाई ध्यान देने योग्य है—

नर नारी बूढ़ा बालक, जिन इलम लिया मेरा बूझ।

तिन साहेब कर पूजिया, अर्स का एही गुझ।।

किरंतन १०९/२१

बीतक साहेब ६५/९० में " मोमिन सेवे कर मरद" का कथन भी इसी तरफ है।

बातूनी रूप में मूल मिलावा में विराजमान श्री राज श्यामा जी तथा सुन्दरसाथ के परात्म स्वरूपों को अपने धाम हृदय में बसाना भी हक जात पर सिजदा करना कहा जायेगा। हक जात के सम्बन्ध में श्रृंगार प्रकरण २३ की यह चौपाई बहुत महत्वपूर्ण है—

और तो कोई हैं नही, बिना एक हक जात।

जात माहें हक वाहेदत, हक हादी गिरो केहेलात।।

सक ना किसी अर्स की, सक ना नूर-मकान।

सक ना बेचून बेचगून, सक ना चार आसमान॥१९॥

तारतम ज्ञान के अवतरित होने से तीनों धामों –
वैकुण्ठ, अक्षरधाम, परमधाम- के सम्बन्ध में कोई भी
संशय नहीं रहा। अक्षर धाम कहाँ है? निराकार क्या है?
निर्गुण क्या है? चारों आकाश (नासूत, मलकूत, जबरूत
तथा लाहूत) कहाँ हैं? इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार
का संशय नहीं है।

कहूं बेसक तिनका बेवरा, नासूती मलकूत।

ना सक आसमान जबरूत, ना सक आसमान लाहूत॥२०॥

इन चारों आकाशों का विवरण मैं बेशक होकर कर रही
हूँ। मृत्युलोक और वैकुण्ठ तो क्षर जगत से सम्बन्धित हैं।
इनके परे अक्षरधाम तथा परमधाम हैं, जिनके सम्बन्ध में

अब तो किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं है।

सक नहीं सरीयत में, न सक रही तरीकत।

सक नहीं हकीकत में, सक ना हक मारफत॥२१॥

तारतम वाणी के द्वारा इन्द्रियों से होने वाले कर्मकाण्ड तथा हृदय से होने वाली उपासना (बन्दगी) में किसी प्रकार का संशय नहीं रह गया है। यहाँ तक कि अब ज्ञान (हकीकत) और विज्ञान (मारिफत) में भी शक की कोई गुँजाइश नहीं रह गयी है।

सक ना जुदी जुदी कयामत, सक नहीं वाहेदत।

बेसक जुदी जुदी पैदास, ए जो कादर की कुदरत॥२२॥

तारतम वाणी से दोनों प्रकार की कियामत (कालमाया में ज्ञान की कायमी और योगमाया में अखण्ड बहिश्तों की

लीला) के विषय में कोई भी संशय नहीं रहा। परमधाम की एकदिली के सम्बन्ध में भी बेसकी हो गयी तथा अक्षर ब्रह्म की योगमाया के द्वारा बने हुए इस सपने के ब्रह्माण्ड में तीनों सृष्टि कहाँ से आयी हैं, इस सम्बन्ध में भी कोई संशय नहीं रहा।

सक ना पेहेचान रसूल की, जो कही तीन सूरत।

बसरी मलकी और हकी, जो जाहेर होसी आखिरत॥२३॥

रसूल मुहम्मद साहेब की पहचान के सम्बन्ध में अब कोई भी संशय नहीं रह गया। मुहम्मद साहेब की तीन सूरतें बसरी (मुहम्मद साहिब), मल्की (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी), और हकी स्वरूप (श्री प्राणनाथ जी) हैं। ये तीनों सूरतें कियामत के समय जाहिर होंगी।

भावार्थ— रसूल मुहम्मद की तीन सूरतों का अर्थ यह

नहीं समझना चाहिए कि मुहम्मद साहेब (अक्षर ब्रह्म की आत्मा) ही मल्की या हकी सूरत के रूप में प्रकट हुए। वस्तुतः रसूल शब्द का अर्थ होता है – सन्देश वाहक, और मुहम्मद शब्द उपाधि सूचक है जिसका तात्पर्य होता है – महिमा से परे। श्री राज जी के हुकम ने ही तीनों सूरतें धारण की हैं। इन तीनों सूरतों द्वारा खुदाई इल्म (ब्राह्मी ज्ञान) संसार में अवतरित हुआ है और इनकी महिमा सर्वोपरि है, इसलिए इन्हें रसूल या मुहम्मद की सूरतें कहते हैं। बसरी सूरत में अक्षर की आत्मा, मल्की सूरत में श्यामा जी की आत्मा, तथा हकी सूरत में श्री इन्द्रावती जी की आत्मा रही है, इसलिए अक्षर की आत्मा को मल्की सूरत के रूप में नहीं कहा जा सकता। वाणी के अवतरण से तीनों सूरतों की वास्तविकता जाहिर हुई है। चौथे चरण में यही बात

दर्शायी गयी है।

सक ना जबराईल में, और सक ना मेकाईल।

सक ना सूर बजाए की, सक ना असराफील॥२४॥

धनी के जोश जिबरील और ब्रह्मा जी (मैकाइल) के सम्बन्ध में कोई भी संशय नहीं रहा। अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि के फरिश्ते इस्राफील और उसके द्वारा सूर फूँकने (ज्ञान का बिगुल बजाने) के सम्बन्ध में भी कोई संशय नहीं बचा।

सक ना अरवाहें अर्स की, जो तीन बेर उतरे।

लैल में आए जिन वास्ते, कछू सक ना रही ए॥२५॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ माया का खेल देखने के लिये लैल-तुल-कद्र की रात में ब्रज, रास, और जागनी के

ब्रह्माण्ड में तीन बार उतरी हैं। इस विषय में अब सारे संशय निवृत्त हो गये हैं।

भावार्थ- यद्यपि योगमाया के ब्रह्माण्ड में कालमाया जैसी नींद (माया) नहीं है, फिर भी घर की पहचान न होने से उसे भी लैल (रात्रि) के अन्दर ही माना गया है।

सक ना आए खेल देखने, ए जो रूहें आइयां बिछड़।

कर मेला नासूत में बेसक, ले नसीहत आए अर्स चढ़॥२६॥

यह तो निश्चित है कि ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से अलग होकर इस संसार में माया का खेल देखने के लिये आयी हुई हैं। तारतम वाणी की सिखापन से वे संशय रहित हो जायेंगी और इस संसार में श्री जी के चरणों में आकर परमधाम का दर्शन कर लेंगी। महाप्रलय के पश्चात् वे पुनः अपने धाम जायेंगी।

महंमद ईसा अर्स में, पोहोंचे हक हजूर।

कर अर्ज सब मेयराज में, बेसक करी मजकूर॥२७॥

इस बात में अब किसी भी प्रकार का संशय नहीं है कि मुहम्मद के रूप में विराजमान अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान श्यामा जी की आत्मा ने परमधाम जाकर श्री राज जी का दर्शन प्राप्त किया। दर्शन के समय उन्होंने ब्रह्मसृष्टियों के सम्बन्ध में चर्चा की और धनी से प्रार्थना की।

भावार्थ- तीनों सूरतों के द्वारा होने वाले दीदार में सूक्ष्म भेद है। मुहम्मद की आत्मा ने परमधाम में अपनी आत्मिक दृष्टि से अक्षरातीत का दीदार किया और ९०,००० हरुफ बातें की।

श्यामा जी को तीन बार दीदार हुआ। "तीन बेर दिए दरसन" का कथन इसी तथ्य की ओर है। पहली बार

बारात के पीछे-पीछे चलने पर, दूसरी बार ध्यान में अखण्ड ब्रज विहारी के रूप में, तथा तीसरी बार बाह्य आँखों से ही अपने प्रियतम का दीदार किया और जाहिरी कानों से उनकी आवाज भी सुनी। जब धाम धनी दिल में विराजमान हो गये, तो उनको पल-पल परमधाम नजर आने लगा और वहाँ का वर्णन करने लगे।

श्री महामति जी ने हब्से में युगल स्वरूप का दीदार किया और धाम धनी के हृदय में विराजमान हो जाने पर उन्हें भी पल-पल परमधाम नजर आने लगा। मारिफत के जो शब्द मुहम्मद साहिब की जुबान पर नहीं चढ़ सके थे, उनका वर्णन भी श्री महामति जी के तन से श्रृंगार ग्रन्थ में हुआ। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम तथा युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का वर्णन परिक्रमा और सागर ग्रन्थ में हुआ।

महंमद ईसे किए जवाब, तिन में रही न सक।

सक नहीं पड़उत्तर में, जो हकें दिए बुजरक॥२८॥

अक्षर ब्रह्म की आत्मा तथा श्यामा जी ने उस सर्वोपरि अक्षरातीत से जो कुछ कहा और धाम धनी ने जो कुछ भी प्रत्युत्तर दिया, उसके विषय में अब किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं है।

बीच सब मेयराज के, जेती भई मजकूर।

ए सक जरा ना रही, जो खिलवत तजल्ला-नूर॥२९॥

उन दोनों की अक्षरातीत के साथ जो कुछ भी वार्ता हुई, वह ब्रह्मवाणी द्वारा जाहिर हो गयी। इसका फल यह हुआ है कि अब मूल मिलावा तथा अक्षरातीत के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह गया है।

छिपी बातें बीच अर्स के, कोई रही न माहें सक।

पाई ऐसी बेसकी, जो लई दिल की बातें हक॥३०॥

ब्रह्मवाणी द्वारा श्री राज जी के दिल की बातें जानकर मैं पूर्ण रूप से बेशक हो गयी। परमधाम की वहदत, निस्बत, इश्क आदि से सम्बन्धित जो भी गुझ बातें थी, उनके विषय में अब कोई भी संशय नहीं है।

आगूं बेसक बड़े अर्स के, नूर रोसन जोए किनार।

दोऊ तरफों जरी जोए के, नूर रोसन अति झलकार॥३१॥

परमधाम से आगे, अर्थात् परमधाम और अक्षरधाम के बीच में, यमुना जी प्रवाहित हो रही हैं जिनके दोनों किनारे नूर से प्रकाशमान हैं। यमुना जी के दोनों किनारों पर स्थित जल-रौंस मोतियों के बेल-बूटों से सुशोभित है, जिनकी नूरी शोभा बहुत अधिक झलकार कर रही है।

सक नाहीं जल उजले, मीठा ज्यों मिश्री।

सक ना गिरदवाए बाग की, कई मोहोल जवेर जरी॥३२॥

यमुना जी का जल दूध से भी अधिक उजला तथा मिश्री से भी अधिक मीठा है। यमुना जी को घेरकर बहुत सारे (केल, लिबोई, अनार, अमृत, जाम्बू, नारंगी, और बट) वन हैं। यमुना जी की जल-रौंस पर दयोहरियों के रूप में महलों की शोभा आयी है, जो हीरे-मोतियों और बेल-बूटों की चित्रकारी से युक्त हैं। इस शोभा के बारे में अब पूर्ण रूप से बेशकी है।

खुसबोए जिमी अति उज्जल, ज्यों सोने जवेर दरखत।

बेसक जंगल जवेर ज्यों, रोसन नूर झलकत॥३३॥

परमधाम की धरती बहुत उज्जवल है और सुगन्धि से भरपूर है। वृक्षों की शोभा सोने और हीरे-मोतियों की है।

वहाँ के वन ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे हीरे-मोतियों के वन हों। उनसे निकलने वाला नूरमयी प्रकाश जगमगाता रहता है। इस प्रकार परमधाम की ऐसी शोभा के सम्बन्ध में अब कोई भी संशय नहीं है।

सक नहीं हौज ताल की, इत बोहोत मोहोल बुजरक।

बिरिख पानी ताल पाल के, सब पाट घाट बेसक॥३४॥

हौज कौसर ताल की शोभा के विषय में अब कोई भी संशय नहीं रह गया है। हौज कौसर के अन्दर बहुत से महत्वपूर्ण महल (पाल के अन्दर के महल तथा टापू महल आदि) हैं। यहाँ के बड़े वन के वृक्षों, जल, ताल की पाल (चौरस पाल तथा ढलकती पाल) आदि के विषय में भी कोई संशय नहीं है। यमुना जी के ऊपर अमृत वन के सामने आये हुए पाट घाट की शोभा का भी

संशय रहित ज्ञान हो गया है।

बेसक बड़े अर्स की, क्यों कहूं बड़ी मोहोलात।

बाग बड़ा गिरदवाए का, इन जुबां कहया न जात॥३५॥

परमधाम के रंगमहल की अलौकिक शोभा के विषय में क्या कहूँ? इसके विषय में अब कोई संशय ही नहीं रहा है। रंगमहल के चारों तरफ विभिन्न प्रकार के बहुत से सुन्दर बगीचे हैं, जिनकी शोभा का वर्णन इस जिह्वा से करना सम्भव नहीं है।

इत सक मोहे जरा नहीं, बन गलियों पसु खेलत।

गिरदवाए गून्जे अर्स के, कई विध जिकर करत॥३६॥

परमधाम के वनों की गलियों में नूरी शोभा वाले पशु – पक्षी तरह-तरह के खेल करते हैं। वे हमेशा ही राज-

राज, धनी-धनी कहकर प्रियतम को रिझाते रहते हैं। उनकी मनमोहिनी, अति मधुर आवाज सम्पूर्ण परमधाम में गूँजती रहती है। अब इस विषय में मुझे जरा भी संशय नहीं है।

यों केती कहूं बेसकी, इनका नहीं हिसाब।

महामत देखावे हक इस्क, जो साकी पिलावे सराब॥३७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि तारतम वाणी से मुझे जो बेशकी हो गयी है, उसकी कोई सीमा नहीं है। मैं उसका कहाँ तक वर्णन करूँ? प्राणवल्लभ अक्षरातीत तो अपने हृदय से प्रवाहित होने वाली इश्क रूपी शराब को हमें पिला रहे हैं और इस खेल में अपने इश्क की पहचान करा रहे हैं।

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥३४२॥

सराब सुख लज्जत

इस प्रकरण में यह बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है कि धनी के इश्क रूपी शराब का रसास्वादन करने का सुख क्या है।

साकी पिलावे सराब, रूहें प्याले लीजिए।

हक इस्क का आब, भर भर प्याले पीजिए॥१॥

हे परमधाम की आत्माओं! प्राण प्रियतम अक्षरातीत आपको अपने इश्क का रस पिला रहे हैं। आपके हृदय के नेत्र ही प्याले हैं, जिनमें भर-भर कर श्री राज जी के प्रेम (इश्क) रूपी रस का पान कीजिए।

भावार्थ- साकी "पिलाने वाले" को कहते हैं। इस चौपाई में साकी अक्षरातीत को कहा गया है। यद्यपि प्रेम रस का पान नेत्रों से किया जाता है, किन्तु उसका स्थान

हृदय (दिल) ही होता है।

हक आसिक रूहन का, इन इस्क का आब जे।

इन आब में जो स्वाद है, ए रस जानें पीवन वाले॥२॥

श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों के आशिक हैं। धनी के इश्क में अपार रस है और उस रस में जो स्वाद छिपा है, उसे मात्र पीने वाले ही जानते हैं।

भावार्थ- इश्क से आनन्द का प्रकटीकरण होता है। आनन्द और रस समानार्थक हैं। इसलिये तैत्तरीयोपनिषद में उस आनन्दमय ब्रह्म को रस रूप कहा गया है। "रसो वै सः, आनन्दो ब्रह्म इति व्यजनात्" का कथन यही स्पष्ट करता है। इस चौपाई में यह बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है कि प्रेम के रस का स्वाद विरह में तड़पने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ ही ले पाती हैं।

नहीं हिसाब इस्क का, स्वाद को नहीं हिसाब।

हिसाब ना तरंग अमल के, ए जो आवत साकी के सराब॥३॥

न तो श्री राज जी के इश्क की सीमा है और न उससे मिलने वाले स्वाद की ही सीमा है। अक्षरातीत के द्वारा इश्क का रस पिलाये जाने पर जो शुद्ध आनन्द प्राप्त होता है, उससे उठने वाली लहरों का कोई माप नहीं है।

कई रस इन सराब में, ए जो पिलावत सुभान।

मस्ती पिलावत कायम, मेहेर कर मेहेरबान॥४॥

मेहर के सागर धाम धनी अक्षरातीत अपनी आत्माओं पर मेहर कर जो इश्क का रस पिलाते हैं, उसमें निस्वत, वहदत, खिलवत, और इल्म आदि के कई रस छिपे होते हैं। इस प्रकार वे परमधाम के अखण्ड आनन्द का रसपान कराते हैं।

भावार्थ- अक्षरातीत का दिल इश्क का गंजानगंज सागर है, जिसमें निस्बत, वहदत, और इल्म का सुख भी छिपा है। इश्क का प्राण इल्म है और इल्म का प्राण इश्क है। इश्क के बिना वाहिदत और खिलवत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

रुहें नींद से जगाए के, पिलावत प्याले फूल।

मुंह पकड़ तालू रुह के, देत कायम सुख सनकूल॥५॥

धाम धनी आत्माओं को माया की नींद से जगाकर सुन्दर फूल के प्याले में इश्क का रस पिला रहे हैं। वे सुन्दरसाथ (ब्रह्ममुनियों) का मुख पकड़ कर उनके तालु में इश्क का रस डाल रहे हैं। इस प्रकार वे हृदय में आह्लाद उत्पन्न करने वाले परमधाम के अखण्ड आनन्द का रसपान करा रहे हैं।

भावार्थ- फूल एक मिश्रित धातु है, जो प्रायः तांबे और टिन आदि के मिश्रण से बनायी जाती है। यहाँ फूल शब्द से अंग्रेजी भाषा का fool नहीं समझना चाहिए।

यह संशय हो सकता है कि जब इस संसार के राजा-महाराजा एवं धनवान लोग पीने के लिये सोने के बर्तनों का प्रयोग करते हैं, तो सुन्दरसाथ एवं धाम धनी के लिये कांसे के प्याले के उपयोग की बात क्यों की गई है? इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि कांसा सार्वजनिक उपयोग की वस्तु है, जबकि स्वर्ण कोई-कोई ही प्रयोग कर पाता है। इसी प्रकार अपने दिल में इश्क भरना सबके लिये अनिवार्य है, जबकि मारिफत में तो कोई-कोई ही पहुँचेगा। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने प्रेमास्पद का मुख जबरन पकड़कर उसके तालु में स्वादिष्ट मिठाई पहुँचा देता है, उसी प्रकार धाम धनी

हमारे न चाहने पर भी हमें माया से जगाकर परमधाम का आनन्द हमारे धाम हृदय में उड़ेल रहे हैं।

ए प्याले कर मेहेरबानगी, कई रूहों पिलावत।

सुख देने बका नजीक का, प्यार कर निसबत॥६॥

इश्क के इन प्यालों को श्री राज जी सुन्दरसाथ पर मेहर करके कई प्रकार से पिला रहे हैं। वे हमारी प्राणनली से भी अधिक नजदीक हैं और अखण्ड सुख देने के लिये निस्बत के सम्बन्ध से हमसे प्रेम करते हैं।

कई विध मेहेर करत हैं, मासूक जो मेहेरबान।

उलट आप आसिक हुआ, जो वाहेदत में सुभान॥७॥

मेहर के सागर माशूक श्री राज जी हमारे ऊपर कई प्रकार से मेहर करते हैं। परमधाम की वहदत (एकदिली)

में जो हमारे माशूक हैं, इस संसार में हमसे प्रेम करने के कारण वे आशिक कहलाते हैं।

भावार्थ— यद्यपि स्वलीला अद्वैत परमधाम की वहदत में आशिक और माशूक के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं होती, लेकिन इस संसार में प्रेम लीला को व्यक्त करने के लिये ऐसा कहना पड़ता है। सखियाँ परमधाम में धनी को रिझाती हैं, इसलिये उन्हें माशूक कहती हैं। इसी प्रकार जब श्री राज जी जागनी ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ को वाणी के ज्ञान द्वारा जाग्रत करते हैं तथा विरह द्वारा अनन्य प्रेम की अनुभूति कराते हैं, तो उन्हें आशिक कहा जाता है।

रूहों के दिल कछू ना हुता, कछू कहें न मांगें हक से।

ना कछू चित्त में चितवन, ना मुतलक रूहों मन में॥८॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों के दिल में श्री राजश्यामा जी के

अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था। वे न तो किसी वस्तु के लिये धाम धनी से कहती थीं और न ही कुछ माँगती थीं। प्रियतम के अतिरिक्त अन्य किसी के लिये उनके चित्त में ध्यान ही नहीं था। निश्चित रूप से उनके मन में धाम धनी के अतिरिक्त और कोई विचार नहीं था।

भावार्थ- परमधाम स्वलीला अद्वैत है। श्री राज जी ही लीला रूप में श्यामा जी, सखियों, खूब खुशालियों, एवं परमधाम के २५ पक्षों के रूप में विराजमान हैं। उस वहदत के सागर में सबका दिल एक है। ऐसी स्थिति में यह सम्भव ही नहीं है कि सखियाँ श्री राज श्यामा जी के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की कामना करें। खेल माँगने की बात तो धाम धनी की प्रेरणा से ही सम्भव हो सकी।

आस बंधाई हुकमें, हुकमें कराई उमेद।

आप इस्क की बुजरकी, कर मेहेर देखाए कई भेद॥९॥

इस खेल में आ जाने पर धनी के हुक्म से ही हमारे मन में यह आशा बनी रही कि हमें धनी अवश्य मिलेंगे तथा निजधाम के सुखों का भी अनुभव होगा। धनी ने अपने हुक्म द्वारा ब्रह्मवाणी देकर हमारी आत्मिक इच्छाओं को पूर्ण किया। अपनी मेहर से धनी ने इश्क की श्रेष्ठता और उसके कई भेदों (रहस्यों) का भी अनुभव कराया।

भावार्थ- ब्रज में प्रेम लक्ष्यविहीन था – "प्रेम हुतो लछ बिन।" सखियों को यह मालूम ही नहीं था कि श्री कृष्ण जी से हमारा प्रेम क्यों है? रास में सम्बन्ध का पता तो चल गया था, किन्तु घर का पता नहीं था। वहाँ के प्रेम में वहदत का अभाव था।

परमधाम में वहदत के इश्क का विलास है। वहाँ सबका

इश्क बराबर है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में जाग्रत होने पर वहदत और इश्क की लज्जत (स्वाद) ली जा सकती है। यहाँ इश्क का अहसास विरह में या युगल स्वरूप की शोभा में डूबकर किया जाता है। परमधाम के विपरीत यहाँ पर किसी आत्मा में धनी के प्रति कम इश्क है, तो किसी में उससे अधिक इश्क है। हाँ! अर्श दिल वाले सुन्दरसाथ में वहदत की लज्जत अवश्य है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही अभिप्राय है।

यों कई सुख दिए इस्क के, कई सुख दिए जो मेहेर।

कई सुख अपनी बड़ाई के, जासों और लगे सब जेहेर॥१०॥

इस प्रकार धाम धनी ने हमें इस जागनी ब्रह्माण्ड में इश्क के कई प्रकार के सुखों का अनुभव कराया। इसके अतिरिक्त हमें धनी की मेहर के सुखों का पल-पल

अहसास भी हुआ। प्रियतम अक्षरातीत की अनन्त महिमा का बोध होने पर सारा संसार हमें जहर के समान कष्टकारी लगने लगा और हमें अनेक प्रकार के आत्मिक सुखों का अनुभव हुआ।

कई सुख दिए अर्स के, कई सुख दिए निसबत।

कई सुख दिए इलम के, बेसक जो नसीहत॥११॥

धाम धनी ने हमें इस संसार में परमधाम के कई प्रकार के सुखों का अनुभव कराया। धनी से अपनी अखण्ड निस्बत के सुखों का भी हमने रसपान किया, अर्थात् हमें यह अच्छी तरह बोध हो गया कि हमारे प्राण प्रियतम पल-पल हमारे साथ हैं। ब्रह्मवाणी का सिखापन जो संशय रहित करने वाला है, धनी ने हमें इसका भी सुख दिया।

कई सुख दिए रूहन में, ए मेला बैठा विध जिन।

हक ऊपर आप बैठके, सुख देवें सबन॥१२॥

परमधाम के मूल मिलावा में सुन्दरसाथ जिस प्रकार एक स्वरूप होकर बैठा है तथा श्री राज जी सिंहासन पर विराजमान होकर माया का खेल दिखाकर सुख दे रहे हैं, उसकी अनुभूति कराकर धाम धनी ने सुन्दरसाथ को अनेक प्रकार से सुख दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण के कथन "सुख देवें सबन" पर यह संशय होता है कि खेल तो दुःख का है, पुनः सबको सुख की अनुभूति कैसे हो रही है?

इसका समाधान यह है कि नाटक की लीला में दृश्य कैसे भी हों, अन्ततोगत्वा सुख की अनुभूति होती ही है। इस खेल में ब्रह्मसृष्टि माया का दुःख देख रही है तथा परमधाम के सुख का स्वाद ले रही है, किन्तु खेल खत्म

हो जाने पर यहाँ की लीला का आनन्द परमधाम में होगा। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है—

और खेल की बातें सब, होसी बीच खिलवत।

लेसी खेल का सुख खिलवत में, लिया खेल में सुख निसबत॥

सिंधी १६/१६

इश्क, वहदत, तथा निस्बत की मारिफत का पता परमधाम में नहीं था। इस खेल में उसका ज्ञान हुआ है, जिसका सुख और ही है।

सुख दिए अर्स जिमीय के, सुख दिए जल जोए।

सुख दिए मोहोलात के, सब जरी किनारे सोए॥१३॥

चितवनि के द्वारा धाम धनी ने हमें परमधाम की नूरी धरती, दूध से भी अधिक उजले यमुना जी के जल, जल-रौंस पर बने हुए महलों, तथा जवेरों से जड़े हुए

किनारों की शोभा का अनुभव कराकर बेशुमार सुख दिया है।

सुख दिए जल ताल के, सुख ताल कई विवेक।

कोट जुबां ना केहे सके, तो कहा कहे रसना एक॥१४॥

हौज कोशर ताल तथा उसमें स्थित जल की शोभा का सुख ऐसा है कि उसका वर्णन करोड़ों जबान भी नहीं कर सकतीं तो मेरी एक जबान भला क्या वर्णन करेगी? धाम धनी ने चितवनि द्वारा वहाँ के सुखों का भी हमें अनुभव कराया।

सुख दिए मोहोल नूर के, सुख बाग नूर गिरदवाए।

ए समूह मोहोल सुख कैसे कहूं, इन जुबां कहे न जाए॥१५॥

अक्षर ब्रह्म के रंगमहल के चारों ओर आये हुए नूरी बागों

का सुख अनन्त है। इन सम्पूर्ण महलों के सुखों का वर्णन मैं कैसे करूँ? मेरी इस जिह्वा से उसका वर्णन होना सम्भव नहीं है। धनी ने उस सुख का भी हमें स्वाद दिया है।

कई सुख बड़े अर्स के, बन गिरद मोहोलात।

ए कायम सुख हक अर्स के, सुख हमेसा दिन रात॥१६॥

परमधाम में रंगमहल के चारों ओर सुन्दर बनों की शोभा आयी है। इसमें परमधाम के अखण्ड सुख हैं, जिनका रसास्वादन परमधाम में धाम धनी हमें दिन-रात कराते रहे हैं।

कई सुख जोए बाग के, कई सुख कुंज गलियन।

कई सुख पसु पंखियन के, मुख बानी मीठी बोलन॥१७॥

यमुना जी तथा उनके दोनों ओर आये हुए सात-सात बगीचों एवं कुञ्जों की गलियों की शोभा का सुख अनन्त है। इनमें विचरण करने वाले पशु-पक्षी अपने मुख से इतनी मीठी वाणी बोलते हैं कि उस सुख का वर्णन होना सम्भव नहीं है। धाम धनी ने अपनी मेहर से इसका भी अनुभव कराया है।

ए खेलौने सुख हक के, ए सुख दिए रूहन।

खूबी इनके परन की, आकास न माए रोसन॥१८॥

परमधाम के पशु-पक्षी श्री राज जी के खिलौने हैं। ये तरह-तरह के खेल करके रूहों को सुख देते हैं। पक्षियों के नूरमयी पंखों की शोभा इतनी अधिक है कि आकाश में उनकी ज्योति नहीं समा पाती , अर्थात् चारों ओर ज्योति ही ज्योति दिखायी पड़ती है।

देखी कायम साहेबी हक की, जिनका नहीं सुमार।

इन नासूत में बैठाए के, सुख देखाए नूर के पार॥१९॥

इस संसार में मैंने धाम धनी का अखण्ड स्वामित्व देखा, जिसकी कोई सीमा नहीं है। धनी ने अपनी मेहर की छाँव तले, इस मृत्युलोक में भेजकर, हमें अक्षर से भी परे परमधाम के सुखों का अनुभव कराया।

कई सुख दिए लैलत कदर में, जो अव्वल दो तकरार।

सुख दिए फजर तीसरे, कई सुख परवरदिगार॥२०॥

लैल-तुल-कद्र की रात्रि में धाम धनी ने हमें व्रज और रास में अनेक प्रकार का सुख दिया। इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी प्रातःकाल की लीला में धाम धनी ने तारतम वाणी से हमें जाग्रत करके अनेक सुख दिये।

भावार्थ- व्रज और रास की लीला रात्रि के अन्धेरे में

हुई है। कलश हिन्दुस्तानी २३/७४ में भी यह बात कही गयी है—

तीन लीला माया मिने, हम प्रेमे विलसी जेह।

ए लीला चौथी विलसते, अति अधिक जानी एह॥

वि. सं. १७३५ से श्यामा जी की बादशाही (स्वामित्व) के चालीस वर्ष प्रारम्भ होते हैं। इस समय जो ब्रह्मवाणी उतरी, उससे ज्ञान का सवेरा हो गया और सुन्दरसाथ ने अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को विराजमान करके परमधाम जैसा सुख लिया।

कई सुख दिए निसबत कर, ए झूठा तन कर यार।

क्यों कहूं सुख मेहेबूब के, जाके कायम सुख अपार॥२१॥

परमधाम के मूल सम्बन्ध से धाम धनी ने हमारे इन झूठे तनों से भी प्रेम किया और अर्श बनाकर इनमें विराजमान

हुए तथा अनेक सुख दिए। धनी के सुख तो अखण्ड और अनन्त हैं। उनके विषय में मैं इस जिह्वा से क्या कहूँ।

और सुख सब मेयराज में, केते कहूँ जुबान।

जुदी जुदी जंजीरों, लिखे मांहें फुरमान॥२२॥

मुहम्मद साहिब को दर्शन की रात्रि में जिस अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हुई, उसे इस जिह्वा से कैसे कहा जाये? दीदार के आनन्द का वर्णन कुरआन में अलग-अलग प्रसंगों में लिखा हुआ है।

हकें कहया उतरते, तुम जात बीच नासूत।

आप वतन जिन भूलो मोहे, मैं बैठा बीच लाहूत॥२३॥

परमधाम से इस खेल में आते समय श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों से कहा कि तुम माया का खेल देखने

मृत्युलोक में जा रही हो। वहाँ जाकर तुम मुझे और अपने परमधाम को न भूल जाना। मैं यहाँ परमधाम में बैठे हुए तुम्हें देखता रहूँगा।

तब फेर कहया अरवाहों ने, हम क्यों भूलें तुमको।

तुम पेहेले किए चेतन, खेल कहा करे हमको॥२४॥

तब पुनः ब्रह्मात्माओं ने कहा कि भला हम आपको कैसे भूल सकती हैं। जब आपने हमें पहले ही सावधान कर दिया है, तो यह माया का खेल हमारा क्या कर लेगा।

ए बातें बीच अर्स के, अव्वल जो मजकूर।

सो याद देने लिखी रमूजें, जो हुई हक हजूर॥२५॥

परमधाम में ये बातें शुरु में ही इश्क –रब्द के समय में हुई थीं। ब्रह्मात्माओं से श्री राज जी की जो बातचीत हुई

थी, उसे याद दिलाने के लिये ही धर्मग्रन्थों में संकेतों में ये बातें लिखी हुई हैं।

बैठाए बीच नासूत के, हम पर भेज्या फुरमान।

उनमें लिखी इसारतें, वाहेदत के सुभान॥२६॥

धाम धनी ने माया का खेल देखने के लिये हमें मृत्युलोक में भेज दिया और साक्षी के रूप में कुरआन का अवतरण कराया। वहदत की मारिफत के स्वरूप श्री राज जी के आदेश से उसमें संकेतों में सारी बातें लिखी हुई हैं।

भावार्थ— निस्बत, वहदत, और इश्क की मारिफत के स्वरूप श्री राज जी हैं, जबकि हकीकत के स्वरूप में श्यामा जी और सखियाँ हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है—

अर्स देख्या रूह अल्ला, हक सूरत किसोर सुन्दर।
कही वाहेदत की मारफत, जो अर्स अजीम अन्दर॥

सागर ५/३

मोमिन मेरे अहेल हैं, हकें लिख्या माहें कुरान।
खोल इसारतें रमूजें, इनों जरे जरा पेहेचान॥२७॥

धाम धनी ने कुरआन के बारहवें (१२) सिपारः में लिखवाया है कि मेरे ज्ञान को पाने के वास्तविक अधिकारी (वारिस) ब्रह्मसृष्टि ही हैं। कुरआन में संकेतों में कही हुई गुह्य बातों के रहस्य ये ही खोलेंगे। इन्हें परमधाम के जर्रे-जर्रे का ज्ञान है।

भावार्थ- जर्रे-जर्रे (कण-कण) का ज्ञान होने की बात आलंकारिक है। इसका मूल भाव यह है कि परमधाम के प्रत्येक पक्षों की शोभा का उन्हें विशद ज्ञान होगा। हाँ!

परात्म के हृदय में कण-कण का ज्ञान अवश्य है।

और जिन छुओ कुरान को, यों हकें लिखी हकीकत।

वाको नापाकी ना टरे, बिना तौहीद मदत॥२८॥

श्री राज जी ने कुरआन के बारहवें (१२) सिपारः में लिखवाया है कि मोमिनो (ब्रह्मसृष्टियों) के अतिरिक्त अन्य कोई भी कुरआन को न छुए। जीव सृष्टि (आम खलक) को जब तक स्वलीला अद्वैत परमधाम का तारतम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तब तक उसकी अशुद्धि (अपवित्रता) का नाश नहीं होता है।

भावार्थ- मोमिन (ब्रह्ममुनि) वे हैं, जो इस मायावी जगत का खेल देखने के लिये परमधाम से आये हैं। इनकी संख्या बहुत सीमित (१२,०००) है। शरियत की राह पर चलने वालों के द्वारा मात्र कलिमा पढ़ लेने से ही

स्वयं को मोमिन मानना बहुत बड़ी भूल है।

सो मदत तौहीद की, पाइए ना मोमिनो बिन।

ए दुनियाँ को चाहें नहीं, जाको हक बका रोसन॥२९॥

ब्रह्ममुनियों के अतिरिक्त संसार में अन्यत्र कहीं भी तारतम ज्ञान नहीं मिलता। इन ब्रह्ममुनियों को सांसारिक सुख की कोई भी इच्छा नहीं होती। इनके धाम हृदय में अक्षरातीत और परमधाम की शोभा विराजमान होती है।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण तथा इसके पूर्व की चौपाई के चौथे चरण में कथित "तौहीद की मदत" का तात्पर्य है— स्वलीला अद्वैत परमधाम का वह तारतम ज्ञान, जिसके द्वारा उस अक्षरातीत तथा परमधाम का बोध होता है। बिना ब्रह्मज्ञान के परब्रह्म को जानना असम्भव है।

सो पाक मोमिन कहे, जिन लिया हकीकी दीन।

सो हक बिना कछू ना रखें, ऐसा इनका आकीन॥३०॥

सच्चे धर्म (निजानन्द धर्म, नूर मत) को ग्रहण करने वाले ही पवित्र हृदय वाले ब्रह्ममुनि कहे जाते हैं। इनका अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत पर इतना दृढ़ विश्वास होता है कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी (सांसारिक वस्तु) को अपने दिल में नहीं बसाते।

भावार्थ- धर्म एक वृक्ष है और सम्प्रदाय उसकी शाखायें। सम्प्रदाय का तात्पर्य है "परम्परा" बद्ध प्राप्त ज्ञान। निजानन्द सम्प्रदाय वस्तुतः शाश्वत सत्य रूपी धर्म की वह एकमात्र शाखा है, जिसमें परमधाम के ज्ञान के साथ अखण्ड मुक्ति का फल प्राप्त होता है।

जिस प्रकार गीतोक्त "सर्वान् धर्मान् परित्यज्य" का तात्पर्य हिन्दू, मुस्लिम, और क्रिश्चियन आदि मतों से न

होकर ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, और सांख्ययोग आदि भिन्न-भिन्न मार्गों से है, उसी प्रकार यहाँ निजानन्द धर्म समझना चाहिए, जो श्री निजानन्द स्वामी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) द्वारा प्रवर्तित है। यहाँ सम्प्रदाय शब्द लगाना अनिवार्य नहीं है। सामाजिक दृष्टि से तारतम ज्ञान को ग्रहण करने वाले मूलतः हिन्दू धर्म (वैदिक धर्म) के अन्तर्गत ही हैं, किन्तु ये तारतम ज्ञान (नूर मत) द्वारा निर्देशित हैं।

हकीकत मारफत के, इनको खुले द्वार।

उतरे नूर बिलंद से, याको वतन नूर के पार॥३१॥

ये ब्रह्ममुनि (मोमिन) ही ज्ञान (हकीकत) और विज्ञान (मारिफत) के रहस्यों को समझते हैं। इनका घर अक्षर से भी परे वह परमधाम है, जहाँ से माया का खेल देखने

के लिये इस संसार में आये हैं।

जहां जबराईल जाए ना सक्या, रहया नूर-मकान।

पर जलावे नूरतजल्ली, चढ़ सक्या न चौथे आसमान॥३२॥

अक्षर ब्रह्म का फरिश्ता जिबरील भी उस परमधाम में नहीं जा सका। वह अपने निवास सत्स्वरूप (अक्षर धाम) में ही रह गया। परमधाम के तेज को वह सहन नहीं कर सका और वहाँ न जा सका।

भावार्थ- परमधाम की विशेषता यह है कि न तो वहाँ कोई नई वस्तु बनायी जा सकती और न ही नष्ट हो सकती है। वहाँ से न तो किसी को निकाला जा सकता है और न किसी नये को प्रवेश मिल सकता है, क्योंकि पूर्ण (परब्रह्म और परमधाम) में किसी भी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है।

जिबरील और इस्राफील अक्षर ब्रह्म के फरिश्ते हैं। इनका मूल निवास सत्स्वरूप है। अक्षर ब्रह्म के अहम् का स्वरूप होने से सत्स्वरूप से ही अक्षर ब्रह्म की बेहद की सारी लीला सम्पादित की जाती है। इसी कारण अक्षर धाम का तात्पर्य सत्स्वरूप को ही माना जाता है। ईश्वरी सृष्टि का निवास भी सत्स्वरूप में ही होगा। परमधाम के अन्दर स्थित अक्षर धाम में अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप का निवास अवश्य है, किन्तु उनकी लीला का स्थान बेहद ही है। उस आनन्द की वहदत में जब स्वयं अक्षर ब्रह्म नहीं जा सकते, तो जिबरील या अशराफील भला कैसे जायेंगे।

जित हक हादी रूहें, अर्स अजीम का नूर।

कौल किया रूहोंसों हकें, सो महंमद मसी ल्याए मजकूर॥३३॥

उस नूरी परमधाम में श्री राज जी, श्यामा जी, तथा सखियाँ विराजमान हैं। वहाँ पर धाम धनी ने अपनी आत्माओं से जो वायदा किया था, उसकी वास्तविकता को मुहम्मद साहिब तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने इस संसार में लाकर दर्शाया।

भावार्थ— धाम धनी ने आत्माओं से यह वायदा किया था कि तुम्हें जाग्रत करने के लिये मैं तारतम ज्ञान (इल्म-ए-लदुन्नी) भेजूँगा। मैं तुमसे एक पल भी दूर नहीं रहूँगा, बल्कि तुम्हारी प्राणनली से भी निकट तुम्हारे धाम हृदय में विराजमान होऊँगा। माया का झूठा खेल दिखाकर मैं तुम्हें पुनः वापस परमधाम लाऊँगा।

और हुज्रत न रखी किनकी, चौदे तबक की जहान।

मोमिनों ऊपर अहमद, ल्याया एह फुरमान॥३४॥

चौदह लोकों की इस दुनियां में ऐसा कोई भी नहीं हुआ, जो इन दोनों स्वरूपों (मुहम्मद साहिब तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) की तरह अखण्ड परमधाम का ज्ञान देने का दावा कर सके। ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही श्यामा जी यह तारतम वाणी लेकर आयी हैं।

द्रष्टव्य- फुरमान का तात्पर्य केवल कुरआन ही नहीं, बल्कि श्रीमुखवाणी (कुल्जम स्वरूप) भी है।

ए नाबूद वजूद जो नासूती, अर्स उमत धरे आकार।

लिख्या हकें कुरान में, ए तन मेरे यार॥३५॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों ने इस संसार में आकर माया के नश्वर तनों को धारण किया है। धाम धनी ने कुरआन में कहा है कि इन नश्वर तनों से मेरी दोस्ती है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों के नश्वर तनों से दोस्ती का भाव

यह है कि उन तनों में ब्रह्मात्मायें बैठकर इस खेल को देख रही हैं। इश्क के सागर अक्षरातीत भला उन तनों से दोस्ती क्यों नहीं करेंगे।

यों हकें लिख्या कुरान में, ए अरवाहें मेरे अहेल।

ए झूठे वजूद जो खाक के, निपट गंदे सेहेल॥३६॥

कुरआन में धाम धनी ने कहा है कि मोमिन (ब्रह्मसृष्टियाँ) ही मेरे वारिस (उत्तराधिकारी) हैं। इनके शरीर पञ्चभूतात्मक हैं, नश्वर हैं, और गन्दगी से भरे हुए हैं, फिर भी इनसे मेरा सम्बन्ध है।

भावार्थ— यह प्रसंग कुरआन के पार: एक (१) सूरत दो (२) में है।

औलिया लिह्ला दोस्त कर, नूर जमाल लिखत।

ऐसे निजस तन नासूती, कहे यासों मेरी निसबत॥३७॥

कुरआन में अक्षरातीत ने इन ब्रह्मुनियों (आत्माओं) को औलिया, लिह्ला, और दोस्त के रूप में कहा गया है। गन्दगी से भरे उनके नश्वर तनों के बारे में धनी ने कहा है कि इनसे मेरा सम्बन्ध है, क्योंकि इनमें मेरी आत्मायें बैठी हैं।

द्रष्टव्य— कुरआन में यह प्रसंग पारः एक (१) सूरत दो (२) आयत १०५ से १०७ तक अलिफ, लाम, मीम में है।

कहे नूर-जमाल कुरान में, छोड़ के एह अंधेर।

एक साद करो मुझको, मैं तुमें जी जी कहूं दस बेर॥३८॥

श्री राज जी ने कुरआन में कहा है कि हे मोमिनो

(ब्रह्ममुनियों)! यदि तुम इस माया को छोड़कर एक बार भी मुझे प्रेमपूर्वक रिझा लो, तो मैं दस बार जी! जी! कहकर तुम्हें आनन्दित करूँगा।

भावार्थ- साद करना हरुफे मुक्तेआत के अन्दर आता है। यह अरबी वर्णमाला का चौदहवाँ अक्षर है। कुरआन के सिपार: तेईसवें (२३) सूर: तूल साद में यह प्रसंग वर्णित है। माया को छोड़ने का तात्पर्य यह है कि अपने हृदय से संसार की सारी इच्छाओं और सम्बन्धों को छोड़कर केवल धनी के विरह-प्रेम में डूबना। साद करने (रिझाना) की प्रक्रिया नवधा भक्ति और योग से परे की है। यह मात्र परमधाम के प्रेम में ही सम्भव है।

यों हकें लिख्या कुरान में, हक रूहों की करें जिकर।

पीछे आपन करत हैं, रूहें क्यों न देखो दिल धर॥३९॥

धाम धनी ने कुरआन में लिखा है कि मैं अपनी आत्माओं की चर्चा (जिक्र) पहले करता हूँ, बाद में वे मेरी चर्चा करती हैं। हे सुन्दरसाथ जी! आप अपने दिल में इस बात का विचार क्यों नहीं करते हैं।

भावार्थ- आशिक सर्वदा ही अपने माशूक की सर्वप्रथम चर्चा करता है। इस चौपाई से हमें यह सिखापन मिलती है कि हमें धनी का दीदार न होने का रोना नहीं रोना चाहिए, बल्कि आत्म-निरीक्षण करना चाहिए कि हमसे चूक कहाँ हो रही है कि धनी का दीदार नहीं हो पा रहा है? हमें यह सदा ही ध्यान रखना चाहिए कि हम श्री राज जी से जितना प्रेम करने का दावा करते हैं, उससे दस गुना से भी अधिक धाम धनी हमसे प्रेम करते हैं।

हकें लिख्या कुरान में, पेहेले मेरा प्यार।

जो तुम पीछे दोस्ती करो, तो भी मेरे सच्चे यार॥४०॥

धाम धनी ने कुरआन में लिखा है कि सबसे पहले मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। यदि तुम बाद में भी उस प्रेम को निभा दो, तो मैं यही मानूँगा कि तुम मेरे सच्चे प्रेमी हो।

भावार्थ- परमधाम के प्रेम में अँगना-प्रियतम का सम्बन्ध है, दोस्त-दोस्त का नहीं। परमधाम के अलौकिक प्रेम को यहाँ के शब्दों में व्यक्त करने के लिये "दोस्त" शब्द का प्रयोग किया गया है। इस चौपाई का प्रसंग कुरआन के पारः एक (१) सूरः दो (२) आयत एक सौ एक से एक सौ सात तक (१०१-१०७) में है।

रुहें सुनो एक मैं कहूँ, जो हकें करी मुझसों।

पड़ी थी जल अंधेर में, कोई थाह न थी इनमों॥४१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! मेरी एक बात सुनिये। धाम धनी ने मेरे साथ जो लीला की है, उसे मैं आपको बताता हूँ। मेरी आत्मा ऐसे भवसागर में भटक रही थी, जिसकी गहराई की माप असम्भव है।

भवसागर जीवन को, किन पाया नहीं पार।

दुख रूपी अति मोहजल, माहें धखत जीव संसार॥४२॥

इस संसार रूपी मोह सागर से कोई भी जीव निकल नहीं पाता है। यह मोहजल बहुत ही दुःखमयी है। इसके दुःखों की अग्नि में संसार के जीव जलते रहते हैं।

लेहेरी उठे अंधेर की, पहाड़ जैसी बेर बेर।

ऊपर तले लग भमरियां, जीव पड़े फेर माहें फेर॥४३॥

इस मोह सागर के अन्दर पहाड़ों जितनी ऊँची

अज्ञानता की लहरें निरन्तर (बारम्बार) उठती रहती हैं। जल की सतह से नीचे तक जल-चक्राव के रूप में पानी घूमता रहता है, जिसमें जीव बार-बार फँसकर दुःखी होता है।

भावार्थ- यह संसार ही अज्ञान स्वरूप है। मनुष्य सहित सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के अन्दर अज्ञान का अन्धकार भरा होता है। सागर या नदियों में कुछ स्थान ऐसे होते हैं, जहाँ का पानी बहुत तेजी से घूमता रहता है। उस स्थान पर यदि कोई नौका या मनुष्य आ जाये तो डूब जाता है। इस चौपाई का आशय यह है कि जीव किसी न किसी रूप में अज्ञान के अन्धकार में भटकता रहता है।

निपट अंधेरी ला ए की, सिर ना सूझे हाथ पाए।

टापू पहाड़ों बीच में, सब बंधे गोते खाए॥४४॥

इस नश्वर जगत में चारों ओर अज्ञानता का ऐसा अन्धकार छाया हुआ है कि किसी को भी दूसरे का हाथ-पैर या सिर दिखायी नहीं पड़ता। इस मोह सागर में एक ओर ऊँचे पहाड़ हैं, तो दूसरी ओर गहरे टापू। इनमें फँस जाने वाले बाहर नहीं निकल पाते, बल्कि उसी में गोते खाते रहते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में अहंकार को पहाड़ के समान माना गया है तथा विषय-वासना को गहरे टापुओं से उपमा दी गयी है। पहाड़ों में ऊँची-नीची घाटियाँ होती हैं जिसमें चलना कठिन होता है, इसी प्रकार अहंकार के वशीभूत हो जाने पर मनुष्य अपने लक्ष्य को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। विषय-वासनाओं का जल इतना गहरा होता है कि उसकी कोई थाह नहीं मिलती, अर्थात् उसमें कभी शान्ति नहीं मिल पाती। इनके बन्धन में फँस जाने

वाला प्राणी चौरासी लाख योनियों में भटकता ही रहता है।

मगर मच्छ माहें बुजरक, वजूद बड़े विक्राल।

खेलें निगलें जीव को, एक दूजे का काल॥४५॥

इस मोह सागर में बहुत भयंकर शरीर वाले बड़े-बड़े मगरमच्छ (घड़ियाल) हैं, जो इसी में रहते हैं तथा दूसरे प्राणियों को निगल कर खा जाते हैं। वे दूसरों के लिये कालस्वरूप हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में मगरमच्छ उन सांसारिक सम्बन्धियों को माना गया है, जिनके भरण-पोषण में मनुष्य कोल्हू के बैल की तरह लगा रहता है और अपनी उम्र का एक बहुत बड़ा भाग खो देता है। उनके मोह रूपी भयंकर जबड़ों में फँसकर वह परब्रह्म के ध्यान-चिन्तन

से दूर हो जाता है और उम्र पूरी कर मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

ला मकान का सागर, लग तले तेहेतसरा।

ऐसे अंधेर अथाह बीच पैठ के, मोहे काढ़ी होए मरजिया॥४६॥

निराकार का यह मोह सागर पाताल तक फैला हुआ है। यह मोह सागर अनन्त है और अज्ञान रूपी घने अन्धकार से परिपूर्ण है। इसमें गोताखोर की तरह गोता लगाकर धाम धनी ने मुझे इसके बन्धनों से निकाला।

भावार्थ- निराकार (महामाया) का स्वरूप ही मोह, अज्ञान, और भ्रम का स्वरूप है। इसी से चौदह लोकों जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड बनते हैं, जिनमें सर्वत्र माया का अन्धकार फैला रहता है। धाम धनी की कृपा के बिना कोई भी इनके बन्धन से नहीं निकल पाता।

काढ़ के बूझ ऐसी दर्ई, मोहे समझाई सब इत का।

बेसक का इलम दिया, जासों बैठी बीच बका॥४७॥

धाम धनी ने मुझे इस मोह सागर से निकाला और इस सृष्टि का सारा रहस्य समझाया। उन्होंने सभी संशयों को दूर करने वाली ऐसी ब्रह्मवाणी दी, जिससे मेरी आत्मिक दृष्टि परमधाम में पहुँच गयी।

ए सब किया हक ने, वास्ते इस्क के।

एक जरे जरा जो दुनीय में, जो विचार देखो तुम ए॥४८॥

हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप विचार करके देखें तो यह सब कुछ राज जी ने इश्क का निर्णय करने के लिये ही किया। इस संसार में यदि एक कण भी बना है, तो वह ब्रह्मसृष्टियों को खेल दिखाने के लिये ही बना है।

भावार्थ— परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द का मूल

विषय ही था कि आशिक कौन है? लीला हकीकत में (श्यामा जी और सखियों के साथ) होती है। जिस मारिफत (श्री राज जी) से हकीकत का स्वरूप प्रकट होता है, यदि उसके बारे में ही यह कहा जाये कि उसका इश्क कम है और हमारा इश्क बड़ा है तो स्वाभाविक है कि इश्क-रब्द होता। यद्यपि परमधाम की प्रत्येक वस्तु अनादि है। वहाँ किसी भी वस्तु का प्रकटन सम्भव नहीं है, किन्तु लीला को समझने के लिये ही ऐसा कहा गया है। श्री राज जी यही दर्शाना चाहते हैं कि तुम्हारे अन्दर का इश्क मेरा ही इश्क है। वहदत में मुझमें और तुममें किसी भी प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। किन्तु इश्क का निर्णय परमधाम में सम्भव नहीं, जिसके लिये सखियों को लैल-तुल-कद्र के तीनों तकरारों (ब्रज, रास, और जागनी) से गुजरना पड़ा। वस्तुतः यह खेल भी उसी रब्द

का निर्णय करने के लिये बनाया गया।

मैं कहया नूरी अपना रसूल, तुम पर भेज्या फुरमान।

लिखी गुझ बातें दिल की, हाए हाए केहेवत यों सुभान॥४९॥

हाय! हाय! सुन्दरसाथ जी! श्री राज जी कहते हैं कि मैंने नूरी रसूल मुहम्मद साहिब को कुरआन देकर संसार में भेजा है। कुरआन के अन्दर मैंने अपने दिल की गुह्य बातों को संकेतों में लिखा है।

लिखी अन्दर की इसारतें, और रमूजें जे।

कुन्जी भेजी हाथ रुहअल्ला, जाए दीजो अपनी अरवाहों को ए॥५०॥

कुरआन के अन्दर जो रहस्यभरी बातें संकेतों में लिखी हैं, उन्हें खोलने की कुञ्जी तारतम ज्ञान (इल्म-ए-लदुन्नी) है, जिसे श्यामा जी के हाथ से भिजवाया और

कहा कि यह ज्ञान अपनी आत्माओं को दे देना।

सो कुन्जी दर्ई मुझ को, और खोलने की कल।

तिनसे ताले सब खुले, पाई आखिर अव्वल असल॥५१॥

श्री श्यामा जी ने मुझे सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को खोलने के लिये तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी और खोलने की कला दी। परिणामस्वरूप, अब सभी धर्मग्रन्थों के रहस्य स्पष्ट हो गये हैं तथा मैंने परमधाम से लेकर खेल खत्म होने और परमधाम जाने तक की वास्तविकता को मालूम कर लिया है।

और कोई ना खोल सके, तीन सूरत का हाल।

फैल हाल दोऊ उमत के, तोको लिखिया नूरजमाल॥५२॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझसे कहा था कि

मिहिरराज (इन्द्रावती)! धाम धनी ने एकमात्र तुम्हें ही यह शोभा दी है कि तुम तीनों सूरतों का विवरण तथा ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि की करनी तथा रहनी को उजागर (जाहिर) कर सकते हो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी इसके भेदों को नहीं खोल सकता है।

सुख देओ दोऊ उमत को, बीच बैठ नासूत।

चिन्हाए इस्क हक साहेबी, बुलाए ल्याओ लाहूत॥५३॥

धाम धनी ने मुझसे हब्से में कहा कि तुम इस संसार में रहकर ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि को तारतम वाणी के द्वारा सुख दो तथा मेरे इस्क और साहिबी की पहचान कराकर उन्हें निजघर लाओ।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टि का निजघर परमधाम तथा ईश्वरी सृष्टि का निजघर सत्स्वरूप है।

इन बिध सुख केते कहूँ, झूठी इन जुबान।

मेरी रूह जाने या मोमिन, या दिए जिन रहेमान॥५४॥

इस प्रकार धाम धनी ने मुझे इस संसार में इतना अधिक सुख दिया है कि मैं उसका वर्णन अपनी इस नश्वर जिह्वा से नहीं कर सकती। इस सुख को या तो मेरी आत्मा जानती है, या इसका रसपान करने वाले ब्रह्ममुनि जानते हैं, या देने वाले स्वयं प्राणवल्लभ अक्षरातीत ही जानते हैं।

दे आड़ो ब्रह्मांड सबन को, ढूँढ ढूँढ रहे सब दूर।

आगूं आए इलम दिया, जासों पोहोंची बका हजूर॥५५॥

इस ब्रह्माण्ड के आगे निराकार का पर्दा है, जिसके कारण कोई भी अखण्ड धाम में नहीं जा सका। सभी लोग खोज-खोज कर थक गये, किन्तु प्रियतम परब्रह्म

नहीं मिले। धाम धनी ने इस संसार में आकर मुझे तारतम ज्ञान दिया, जिससे मेरी आत्मिक दृष्टि ने परमधाम में पहुँचकर प्रियतम का दीदार कर लिया।

केती कहूं मेहेर मेहेबूब की, जो रूहें देखो सहूर कर।

महामत कहे मेहेर अलेखे, जो देखो रूह की नजर॥५६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से देखें तो यह स्पष्ट होगा कि अक्षरातीत की मेहर को लेखनी के द्वारा किसी भी प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यदि आप आत्म – चिन्तन करके देखें तो भी यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रियतम की मेहर का इस जिह्वा से वर्णन करना कदापि सम्भव नहीं है।

प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥३९८॥

निसबत का प्रकरण

इस प्रकरण में निस्बत की पहचान दी गई है।

देख तूं निसबत अपनी, मेरी रूह तूं आंखां खोल।

तैं तेरे कानों सुनें, हक बका के बोल॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! अब तो तू सावचेत हो जा और अपनी निस्बत की पहचान कर। खेल में आते समय परमधाम में तूने अपने कानों से धनी के शब्दों को सुना था।

भावार्थ— "आँखें खोलना" एक मुहाविरा है जिसका अर्थ है— सावधान होना या सावचेत होना। यह चौपाई उस प्रसंग में कही गयी है, जब परमधाम से खेल में सुरतायें अवतरित हो रही थीं। उस समय धनी ने कहा था कि "अलस्तो बि रब्ब कुंम" अर्थात् क्या मैं तुम्हारा

प्रियतम नहीं हूँ?

कौन जिमी में तू खड़ी, कहां है तेरा वतन।

कौन खसम तेरी रूह का, कौन असल तेरा तन॥२॥

हे मेरी आत्मा! अब तो तू इस बात पर विचार कर कि तू कौन सी धरती पर आयी है अर्थात् किस संसार में आयी है? तुम्हारा मूल घर कहाँ है? तुम्हारा अनादि प्रियतम कौन है और तुम्हारा वास्तविक तन (परात्म का) कहाँ है?

कौन मिलावा तेरा असल, तू बिछुरी क्यों कर।

तो तोहे याद ना आवहीं, जो तैं सुन्या नहीं दिल धर॥३॥

प्रियतम से तेरे मूल तन (परात्म) के मिलाप का स्थान कौन सा है? तू उनसे बिछुड़कर इस झूठे संसार में क्यों

आयी है? ऐसा लगता है कि तूने अपने प्रियतम की बातों को सावधानी से नहीं सुना था, इसलिये वे बातें तुझे याद नहीं हैं।

भावार्थ— इस चौपाई के पहले चरण का भाव यह है कि वह कौन सा स्थान है, जहाँ तुम अपने प्रियतम प्राणवल्लभ के साथ रहती रही हो? तीसरे और चौथे चरण में कहा गया है कि वे बातें तुझे इसलिये याद नहीं हैं क्योंकि तुमने उन्हें ध्यान से नहीं सुना था। इसका तात्पर्य यह है कि यह कथन लौकिक धरातल पर गिले-शिकवे की भाषा में कहा गया है, अन्यथा जाग्रत परमधाम की वाहिदत में तो ध्यान से न सुनने का प्रश्न ही नहीं होता। यहाँ परमधाम की बातें माया की फरामोशी के कारण वैसे ही भूल गयी हैं, जैसे अक्षर ब्रह्म की आत्मा धनी से ९०,००० हरुफ बातें करके जब इस माया में

आयी, तो सब कुछ भूल गयी।

सहूर तोको साहेब दिया, इलम दिया हक।

बाहेर माहें अन्तर, एक जरा न रही सक॥४॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर तुझे सहूर (समझ, विवेक) दिया और तुम्हारे धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी का अवतरण कराया। अब तो पिण्ड (माहें), ब्रह्माण्ड (बाहेर), और इससे भिन्न बेहद तथा परमधाम (अन्तर) के सम्बन्ध में नाम मात्र का भी संशय नहीं रह गया।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रयुक्त "अन्तर" शब्द का भाव आत्मा से नहीं, बल्कि पिण्ड-ब्रह्माण्ड से भिन्न निजधाम के सम्बन्ध में है। आत्मा के अन्दर तो संशय हो ही नहीं

सकता क्योंकि वह परात्म का प्रतिबिम्ब है। संशय की प्रवृत्ति जीव से जुड़ी है। वस्तुतः बाहेर, मांहे, और अन्तर शब्द स्थानमूलक हैं।

चौदे तबकों में नहीं, रूह-अल्ला का इलम।

ए दिया एक तोही को, करके मेहेर खसम॥५॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी तारतम ज्ञान नहीं है, किन्तु धाम धनी ने अपार मेहर करके वह ज्ञान एकमात्र तुमको दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई में तारतम ज्ञान से तात्पर्य ब्रह्मवाणी के अवतरण से है, एक या छः चौपाइयों के तारतम से नहीं। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तो ३१३ आत्माओं को तारतम दिया था, जबकि ब्रह्मवाणी एकमात्र श्री महामति जी के ही तन से उतरी।

मूल मिलावा चीन्हया, चीन्हया बिछुरे वास्ते जिन।

बेसक हुई इन बातों, जो हक बका का बातन॥६॥

हे मेरी आत्मा! तूने धाम धनी की मेहर से तारतम ज्ञान द्वारा मूल मिलावा की भी पहचान कर ली है तथा जिस कारण से तुम्हें परमधाम से आना पड़ा उसका भी तुम्हें बोध हो गया है। श्री राज जी और परमधाम से सम्बन्धित जो भी गुह्य रहस्य थे, उनका ज्ञान हो जाने से अब तू पूर्णरूपेण संशय रहित (बेशक) हो गयी है।

दुनियां में अर्स कहावहीं, ताए सब जानें हक।

ए इलम तिनको नहीं, जो तैं पाया बेसक॥७॥

इस संसार में जो वैकुण्ठ आदि परमधाम कहे जाते हैं, लोग उन्हें अखण्ड समझते हैं। सबको संशय रहित करने वाला ज्ञान जो तुमने पाया है, वह ज्ञान संसार के लोगों

के पास नहीं है।

त्रैगुन सिफत कर कर गए, ए जो खावंद जिमी आसमान।

खोज खोज खाली गए, माहें थके ला मकान॥८॥

ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इस धरती और आकाश के स्वामी हैं। उन्होंने सच्चिदानन्द परब्रह्म की महिमा गायी है। परब्रह्म की खोज में उन्होंने बहुत अधिक प्रयास किया, किन्तु उन्हें निराशा ही हाथ लगी। वे निराकार से आगे नहीं जा सके।

भावार्थ— धरती और आकाश से तात्पर्य चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड से है। पृथ्वी में ही सात पाताल लोकों का समावेश हो जाता है। पृथ्वी से ऊपर के छः लोक आकाश में ही स्थित हैं। वस्तुतः इस चौपाई में पौराणिक मान्यता के अनुसार ही ब्रह्मा, विष्णु, और शिव चौदह

लोकों के स्वामी कहे गये हैं। वैदिक मान्यता के अनुसार एक परब्रह्म ही सबके स्वामी हैं। किरंतन ६/७ में कहा गया है—

पारब्रह्म तो पूरन एक हैं, ए तो अनेक परमेश्वर कहावें।
अनेक पंथ सब्द सब जुदे जुदे, और सब कोई सास्त्र बोलावें॥

मलकूत साहेब फरिस्ते, हक ढूँढ़या चहूं ओर।
रहे बेचून बेसबीय में, ना पाया बका ठौर॥९॥

वैकुण्ठ के स्वामी विष्णु भगवान और अन्य देवों ने सच्चिदानन्द परब्रह्म को चारों ओर खोजा, लेकिन वे शून्य-निराकार को ही अनुपम-अद्वितीय परब्रह्म मान बैठे। उन्हें अखण्ड धाम का ज्ञान नहीं हो सका।

ए नूर बका किने ना पाइया, कर कर गए सिफत।

ए सुध नूर बका को नहीं, जो तैं पाई न्यामत॥१०॥

इस संसार में त्रिदेव आदि अनेकों ने उस अविनाशी अक्षर ब्रह्म की महिमा गायी है, किन्तु कोई भी अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सका। हे मेरी आत्मा! तुमने जो अक्षरातीत के ज्ञान की सम्पदा (न्यामत) प्राप्त की है, उसकी सुध तो अविनाशी अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है।

नूर बका इत दायम, आवे हक के दीदार।

तले झरोखे झांकत, आए उलंघ जोए के पार॥११॥

अक्षर धाम अखण्ड है, जहाँ से अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन अक्षरातीत के दर्शन करने हेतु आते हैं। वे अक्षर धाम से चलकर यमुना जी को पार करते हैं तथा चाँदनी चौक में खड़े होकर श्री राज जी का दीदार करते हैं। उस समय

श्री राज जी तीसरी भूमिका की पड़साल में झरोखे को पीठ देकर बैठे होते हैं।

द्रष्टव्य— यहाँ अक्षर धाम का तात्पर्य सत्स्वरूप से नहीं है, बल्कि परमधाम में ही अक्षर ब्रह्म का जो निवास स्थान है, उसे अक्षर धाम कहते हैं।

नूर-जमाल के दीदार को, आवें नूर-जलाल।

नूर-जमाल के अर्स में, इत रुहें रहें कमाल॥१२॥

अक्षरातीत के दर्शन हेतु अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन ही आते हैं। अक्षरातीत के उस धाम में इश्क और आनन्द के रस से पूर्ण ब्रह्मसृष्टियाँ रहती हैं।

इत मिलावा रुहन का, जो कही बारे हजार।

उतरे लैलत-कदर में, एह तीसरा तकरार॥१३॥

परमधाम के मूल मिलावा में बारह हजार ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के सम्मुख बैठी हैं और लैल-तुल-कद्र के इस तीसरे हिस्से अर्थात् जागनी ब्रह्माण्ड में अपनी सुरता द्वारा आयी हैं।

भावार्थ- परमधाम में अनन्त आत्मायें हैं, किन्तु इस ब्रह्माण्ड में उनकी संख्या सीमित है, क्योंकि अनन्त को हृद में पूर्णरूपेण अवतरित करना सम्भव नहीं है। यह अवश्य सत्य है कि वहदत के सिद्धान्त से खेल की अनुभूति अनन्त आत्माओं को होगी।

अर्स-अजीम तेरा वतन, खसम नूर-जमाल।

ए इलम पाया तैं बेसक, देख कौल फैल हाल॥१४॥

हे मेरी आत्मा! तेरा निजघर परमधाम है और प्रियतम अनादि अक्षरातीत श्री राज जी हैं। सबको संशयों से

छुटकारा दिलाने वाला तारतम ज्ञान तूने प्राप्त कर लिया है। अब तू अपनी कथनी, करनी, और रहनी के बारे में सोच (चिन्तन कर)।

देख मेहेर तूं हक की, खोल दई हकीकत।

देख इलम तूं बेसक, दई अपनी मारफत॥१५॥

अब तू धनी की उस मेहर को देख, जिसने वास्तविक सत्य (हकीकत) को उजागर (प्रकाश में) कर दिया है। प्रियतम द्वारा दिये हुए उस संशयरहित ज्ञान को भी देख, जिसमें उन्होंने अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान (मारिफत) दे दी है।

भावार्थ— मारिफत से ही हकीकत का प्रकटीकरण है। निस्बत, वहदत, इश्क, खिल्वत, परमधाम के पच्चीस पक्ष, अष्ट प्रहर की लीला, तथा श्री राज श्यामा जी एवं

सखियों की शोभा का वर्णन, सभी कुछ हकीकत है।
अक्षरातीत का दिल ही वह मारिफत है, जिससे हकीकत
दृष्टिगोचर होती है।

जिन कारन तेरा आवना, हुआ जिमी इन।

रूह-अल्ला ने जो कही, सो मैं कहूं आगे मोमिन॥१६॥

मेरी आत्मा! जिस कारण से तुम्हें इस नश्वर जगत् में
आना पड़ा और श्यामा जी ने भी तुझसे जो कुछ कहा है,
उसे मैं सुन्दरसाथ के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ।

दायम करत रब्द, रूहें हादी हक।

सब कोई केहेते आपना, बड़ा है मेरा इस्क॥१७॥

परमधाम में श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों के
बीच में हमेशा रब्द (वार्तालाप) होता रहता था। सभी का

यही कहना था कि केवल मेरा इश्क बड़ा है।

बीच अर्स खिलवत में, होत दायम विवाद।

इस्क अपना रूहें हक को, फेर फेर देती याद॥१८॥

परमधाम की खिलवत में प्रेम का यह विवाद हमेशा ही होता रहता था। ब्रह्मसृष्टियाँ बारम्बार अपने प्रेम की याद दिलाती थीं कि हमारा प्रेम बड़ा है।

भावार्थ— परमधाम में होने वाले प्रेम विवाद को लौकिक विवाद की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। परमधाम में वहदत होने के कारण सभी एक स्वरूप हैं। सभी का प्रेम बराबर है और सभी एक-दूसरे को रिझाते हैं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक अपने को दूसरे का आशिक कहता है। इश्क-रब्द (विवाद) का यही कारण है।

तब कहया हकें हादी रूहन को, मैं तुमारा आसिक।

ए तेहेकीक तुम जानियो, इस्क मेरा बुजरक॥१९॥

तब श्री राज जी ने श्री श्यामा जी एवं सखियों से कहा कि यह बात निश्चित रूप से जानो कि मेरा प्रेम बड़ा है और मैं तुम्हारा आशिक हूँ।

तब हादी रूहन को, ए दिल उपजी सक।

हक का इस्क हमसे बड़ा, ए क्यों होवे मुतलक॥२०॥

श्री राज जी की इस बात को सुनकर श्यामा जी एवं सखियों के हृदय में यह संशय पैदा हो गया कि जब हम धाम धनी को रिझाती हैं, तो उनका इश्क हमसे बड़ा कैसे हो सकता है?

भावार्थ- पूर्ण रूप से जाग्रत उस परमधाम में संशय नहीं हो सकता। इस चौपाई के दूसरे चरण में संशय होने

की बात भावात्मक दृष्टि से लोकरीति के रूप में कही गयी है।

हकें कहया रब्द मैं ना करूं, कर देखाऊं तुमको।

इस्क मेरा तब देखो, नेक न्यारे हो मुझ सों॥२१॥

श्री राज जी ने कहा कि मैं विवाद तो करता नहीं। मैं तुम्हें क्रियात्मक रूप में ही दिखा दूँगा कि किसका इश्क बड़ा है? मेरे वहदत के इश्क की पहचान तो तुम्हें तब होगी, जब तुम मुझसे थोड़ा सा अलग हो जाओ।

न्यारे तो हम होएँ नहीं, निमख ना छोड़ें कदम।

ए जेती अरवाहें अर्स की, कदम तले सब हम॥२२॥

इस बात पर सखियों ने कहा कि हम तो आप से किसी भी स्थिति में अलग नहीं हो सकतीं। हम सब एक क्षण के

लिये भी आपके चरणों को नहीं छोड़ सकतीं। परमधाम की हम जितनी भी ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, सब आपके चरणों में ही रहेंगी।

जुदे होए हम ना सकें, अव्वल तो तुमसों।

हादी रूहन में जुदागी, कोई होए ना सके हममों॥२३॥

पहली बात तो यह है कि हम आपसे कभी अलग हो ही नहीं सकतीं। हमारे और श्यामा जी के बीच में भी कभी जुदायगी होने का प्रश्न नहीं है।

खेल देखाऊं मैं जुदागी, कदम तले बैठो मिल।

ऐसा खेल फरामोस का, जानों जुदे हुए सब दिल॥२४॥

सखियों की इस बात को सुनकर श्री राज जी ने कहा कि आप सभी मेरे चरणों में बैठो। मैं आपको जुदा होने

का खेल दिखाता हूँ। माया की नींद (फरामोशी) का यह ऐसा खेल है, जिसमें सभी को अपने दिल में ऐसा प्रतीत होगा कि हम सब एक-दूसरे से अलग हो गये हैं।

हक कहे मेरी साहेबी, और मेरा इस्क।

हादी रूहों को अर्स में, ए सुध नहीं मुतलक॥२५॥

श्री राज जी ने कहा कि इस परमधाम में श्यामा जी तथा सखियों को निश्चित रूप से न तो मेरी साहिबी की सुध है और न मेरे इश्क की सुध है।

जो ए खबर होती तुमको, जैसी मेरी साहेबी बुजरक।

तो बड़ा कबू न केहेतियां, अपने मुख इस्क॥२६॥

यदि तुम्हें इस बात की जानकारी होती कि मेरी साहिबी कितनी बड़ी है, तो अपने मुख से कभी भी अपने इश्क

को बड़ा नहीं कहती।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट है कि सखियों को परमधाम में वहदत और इश्क के मारिफत की पहचान नहीं थी। यदि पहचान होती तो इश्क -रब्द होता ही नहीं।

अर्स न छूटे खिन एक, तो क्यों देखें मेरा इस्क।

तो क्यों पाइए इस्क बेवरा, आप अपने माफक॥२७॥

जब तुम एक क्षण के लिये भी परमधाम से अलग नहीं हो सकती, तो मेरे इश्क की पहचान कैसे कर सकती हो? ऐसी स्थिति में तो जैसा तुम चाहती हो, वैसा इश्क का ब्योरा (विवरण) नहीं मिल सकता।

अर्स साहेबी जानी नहीं, तो ना देख्या हक इस्क।

तो रुहों हक सों कह्या, इस्क अपना बुजरक॥२८॥

ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की साहिबी का ज्ञान नहीं था, इसलिये उन्हें श्री राज जी के इश्क की भी पहचान नहीं हो सकी। यही कारण है कि आत्माओं ने धाम धनी से अपने इश्क को बड़ा कहा।

भावार्थ— परमधाम में मात्र इश्क की लीला होती है। उनकी सत्ता (साहिबी) का स्वरूप अक्षर ब्रह्म है, जिनकी लीला बेहद में होती है और उनके स्वप्न की लीला कालमाया के ब्रह्माण्ड में होती है। कालमाया की लीला परमधाम की लीला के पूर्णतया विपरीत है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में जब परमधाम की ब्रह्मवाणी उतरी, तो अक्षरातीत की साहिबी तथा इश्क की मारिफत का ज्ञान मिला। व्रज, रास, और जागनी ब्रह्माण्ड की वास्तविकता

का पता चलने पर सुन्दरसाथ को यथार्थ में धनी की साहिबी का बोध हुआ।

ना कछू जानी साहेबी, ना जान्या इस्क असल।

तो बुजरक इस्क अपना, रब्द किया सबों मिल।।२९।।

परमधाम में न तो धनी की साहिबी को जाना था और न इश्क की मारिफत (असल) को पहचाना था। यही कारण है कि सभी आत्माओं ने अपने इश्क को बड़ा कहा और रब्द किया।

भावार्थ— श्री राज जी का दिल ही इश्क की मारिफत का स्वरूप है। उसे ही असल (मूल) इश्क भी कह सकते हैं। सखियों के अन्दर हकीकत के इश्क का स्वरूप है। परमधाम में वहदत होने के कारण इश्क की मारिफत (वास्तविक स्वरूप) का पता चलना सम्भव

नहीं था। आशिक (श्री राज जी) और माशूक (श्यामा जी तथा सखियों) का एक हो जाना हकीकत से मारिफत की अवस्था को प्राप्त करना है, किन्तु परमधाम में इसकी पहचान असम्भव थी। ब्रह्मवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) में ही इन सभी संशयों का निपटारा है।

दायम बातें इस्क की, करत माहों-माहें प्यार।

खेलते हँसते रमते, करत बारंबार॥३०॥

परमधाम में हमेशा श्री राजश्यामा जी और सखियों के बीच में प्रेम लीला के समय उसी इश्क की बातें चलती रहती थीं। सभी आत्मायें हँसते, खेलते, और रमते समय बारम्बार धनी के उसी इश्क की चर्चा किया करती थीं।

एक इस्क दूजी साहेबी, रूहों देखलावना जरूर।

तो हमेसा अर्स में, होता एह मजकूर॥३१॥

श्री राज जी ने अपने मन में ले लिया कि मुझे इन आत्माओं को अपने इश्क और साहिबी की पहचान करानी है। यही कारण है कि परमधाम में हमेशा ही इश्क और साहिबी के बारे में चर्चा चलती रहती थी क्योंकि वहाँ वाहिदत है।

ए बात हकें करनी, सुध देने सबन।

इस्क और पातसाही की, खबर न थी रूहन॥३२॥

सबको सुधि देने के लिये ही श्री राज जी को यह बात करनी थी, अर्थात् खेल में लाना था। ब्रह्मसृष्टियों को तो खेल में आने से पहले धाम धनी के इश्क और साहिबी (स्वामित्व) की कोई भी जानकारी नहीं थी।

बहुत बातें हैं हक की, बीच अर्स खिलवत।

इन जुबां केती कहूं, हिसाब बिना न्यामत॥३३॥

इस प्रकार परमधाम की खिल्वत में इश्क और स्वामित्व (बादशाही) से सम्बन्धित बहुत सी बातें हैं, जिनका वर्णन इस जिह्वा से होना सम्भव नहीं है। उनकी न्यामतों की कोई भी सीमा नहीं है।

भावार्थ— इस चौपाई में "खिलवत" का तात्पर्य मूल मिलावा से है। यद्यपि गुह्य अर्थ में खिल्वत से तात्पर्य आशिक-माशूक के दिल से होता है, किन्तु यहाँ पर प्रसंग अलग है।

एक साहेबी हक की, और इस्क हक का।

ए दोऊ कोई न चीन्हैं, बीच अर्स बका॥३४॥

अखण्ड परमधाम में अनादि काल से रहने पर भी

श्यामा जी और सखियों में से किसी को यह पता नहीं था कि श्री राज जी की साहिबी क्या है और इश्क की मारिफत क्या है।

भावार्थ- यहाँ यह प्रश्न होता है कि यह कैसे सम्भव है कि अक्षरातीत के दिल (हृदय) के स्वरूप श्यामा जी एवं सखियों को भी इश्क और बादशाही की पहचान नहीं है? राज जी के दिल में जब इल्म का सागर है, तो उनकी अंगरूपा सखियाँ इस तथ्य को आज दिन तक क्यों नहीं जान पायी थीं? इसका उत्तर आगे की दो चौपाइयों में दिया गया है।

एक जरा कोई वाहेदत का, ना सके जुदा होए।

तोलों न चीन्हे कोई हक की, इस्क साहेबी दोए॥३५॥

परमधाम की वहदत से एक कण भी अलग नहीं हो

सकता और अलग हुए बिना कोई भी व्यक्ति श्री राज जी के इश्क और साहिबी की पहचान नहीं कर सकता।

अर्स से जुदे होए के, ए देखे जो कोए।

इस्क साहेबी हक की, बुजरक देखे सोए॥३६॥

यदि कोई परमधाम से अलग होकर देखता है, तब वह श्री राज जी के अनन्त प्रेम और स्वामित्व की श्रेष्ठता की पहचान कर सकता है।

भावार्थ— इस जागनी के ब्रह्माण्ड में ब्रह्मवाणी द्वारा ही यह पता चला है कि श्री राज जी का इश्क और साहिबी (श्रेष्ठता) कितनी महान है। परमधाम की वहदत में डूब जाने के पश्चात् यह पहचान होनी असम्भव है।

ए देखाओ अपनी साहेबी, और कैसा इस्क है तुम।

राजी करो देखाए के, हम बैठें पकड़ कदम॥३७॥

सखियों ने कहा कि हे धाम धनी ! आप हमें अपनी साहिबी दिखाइए। हम यह भी देखना चाहती हैं कि आपका इश्क कैसा है। आपके चरणों को पकड़कर हम बैठी हैं। इन दोनों चीजों को दिखाकर आप हमारी इच्छा पूरी कीजिए।

भावार्थ- चरणों को पकड़कर बैठने का तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिये कि यहाँ हाथों से चरणों को पकड़ने की बात कही गयी है। यहाँ मूल भाव है- धनी की छत्रछाया से अलग नहीं होना।

जोलों जुदे होए नहीं, हक बका अर्स सों।

तोलों नजरोँ न आवहीं, अर्स सुख खिलवत मों॥३८॥

श्री राज जी ने सखियों से कहा कि जब तक तुम इस अखण्ड परमधाम से अलग नहीं होती और परमधाम की इस खिल्वत में ही रहती हो, तब तक तुम्हें मेरी साहिबी और इश्क की पहचान नहीं हो सकती।

ए अनहोनी क्यों होवहीं, झूठ न आवे बका माहें।

और रूहें बका की झूठ को, सो कबू देखें नाहें॥३९॥

परमधाम में झूठ नहीं आ सकता अर्थात् कालमाया के ब्रह्माण्ड से कोई भी जड़ वस्तु परमधाम में प्रवेश नहीं कर सकती। इसी प्रकार परमधाम की आत्मायें भी नश्वर जगत् को अपने नूरमयी नेत्रों से नहीं देख सकतीं। यदि ऐसा हो जाता है तो यह अनहोनी बात कही जायेगी।

भावार्थ— "अनहोनी" का अर्थ होता है, जो नहीं होना चाहिए किन्तु हो जाये। नूरी परमधाम की वहदत में यहाँ

की किसी वस्तु के प्रवेश की कल्पना भी नहीं की जा सकती, किन्तु श्री राज जी ने अपने हुक्म से सब कुछ करवा दिया जो आगे की चौपाइयों में वर्णित है।

जरा एक अर्स-अजीम का, उड़ावें चौदे तबक।

तो रूह बका क्यों देखहीं, झूठा खेल मुतलक॥४०॥

यदि परमधाम का एक कण भी चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आ जाये, तो इसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि परमधाम की आत्मा (रूह) इस झूठे खेल को देख सके?

अनहोनी ए हकें करी, करके ऐसी फिकर।

परदे में झूठ देखाइया, बीच कायम बका नजर॥४१॥

इस प्रकार का विचार करके धाम धनी ने असम्भव

(अनहोनी) को भी सम्भव (होनी) कर दिखाया। उन्होंने, सखियों की नजर को अपनी नजरों में लेकर, अपने दिल रूपी परदे पर झूठे ब्रह्माण्ड की लीला को दिखाया।

भावार्थ- जिस प्रकार बन्द कमरे में टी.वी. के परदे पर हजारों कि.मी. दूर का दृश्य (खेल) भी दिखायी देने लगता है और हमारी सुरता उस मैदान में पहुँच जाती है जहाँ का दृश्य टी.वी. के परदे पर आ रहा होता है, उसी प्रकार श्री राज जी ने अपने दिल रूपी परदे पर ब्रज, रास, और जागनी ब्रह्माण्ड का दृश्य दिखला दिया। हमारी आँखें श्री राज जी की आँखों से हटी नहीं, किन्तु उनके हुक्म से हमारी सुरता ने तीनों ब्रह्माण्ड में होने वाली लीला में भाग लिया।

मेहेर पूरी मेहेबूब की, बड़ी रूह रूहों ऊपर।

इस्क साहेबी अर्स की, खेल देखाया और नजर॥४२॥

प्रियतम अक्षरातीत की श्यामा जी और सखियों पर पूर्ण मेहर है। उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये उन्होंने परमधाम की साहिबी और अपने इश्क को इस खेल में दिखा दिया। उन्होंने अपने हुक्म की नजर से इस खेल को दिखाया।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में आये "और नजर" का तात्पर्य है- हुक्म की नजर। ब्रह्मसृष्टि अपनी नूरी नजरों से परमधाम को देखती है तथा हुक्म की नजर (सुरता) से इस खेल को देखती है। इस सम्बन्ध में श्रृंगार ग्रन्थ २७/१७ में कहा गया है-

हक हुकम तो है सबमें, हुकम बिना कछु नाहें।

पर यामें हुकम नजर लिए, और रूह का बड़ा मता या माहें॥

हकें नेक करी महंमद सों, सब मेयराज में मजकूर।

सो वास्ते रूहों के साहेदी, सो रूह अल्ला करी जहूर॥४३॥

जब मुहम्मद साहिब (अक्षर की आत्मा) को श्री राज जी का दीदार हुआ, तो उस दर्शन की रात्रि में धनी ने हकीकत के सम्बन्ध में उनसे थोड़ी सी बात की। यह बातचीत भी ब्रह्मसृष्टियों को साक्षी दिलाने के लिये ही की गयी। उसे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) ने उजागर कर दिया।

भावार्थ- कुरआन के तीसवें पारः की सूरत "इन्ना आतेना" में हौज कौसर का वर्णन है। इसी प्रकार कहीं-कहीं यमुना जी (जोए) तथा मूल मिलावा में बैठी रूहों की शोभा की भी झलक दी गयी है। यह कुरआन के सूरः फज्र में वर्णित है। श्री राज जी का स्वरूप मारिफत (परमसत्य) का स्वरूप है और सम्पूर्ण परमधाम की

शोभा हकीकत (सत्य) का स्वरूप है। हकीकत का ज्ञान सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा प्रकट हुआ और मारिफत का ज्ञान श्री प्राणनाथ जी के द्वारा प्रकट हुआ। कुरआन में विशेषकर शरियत और तरीकत का ही वर्णन है।

महामत कहे मेहेर मोमिनो, हकें करी वास्ते तुम।

कौन देवे इत सुख बका, बिना इन खसम॥४४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस प्रकार की अलौकिक मेहर श्री राज जी ने आपके लिये ही की है। धाम धनी के बिना अन्य कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस संसार में हमें परमधाम के सुखों का अनुभव कराये।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥४४२॥

कलस पंच रोसनी का

धनी की पाँचों शक्तियों के श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होने पर जो ब्रह्मवाणी अवतरित हुई, उससे हमारी आत्मा को जो सिखापन मिलता है, वह इस प्रकरण में दर्शाया गया है। जिस प्रकार मन्दिर के कलश की उपमा मुकुट से दी जाती है, उसी प्रकार इस प्रकरण को सम्पूर्ण सिखापन का संक्षिप्त रूप समझना चाहिए।

रे रूह करे ना कछू अपनी, के तूं उरझी उमत माहें।

उमर गई गुन सिफत में, तोहे अजूं इस्क आया नाहें॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तू अपनी आत्म-जाग्रति के लिये कुछ क्यों नहीं कर रही है? अब तक तो तू ब्रह्मसृष्टियों को जगाने के प्रयास में ही लगी

रही है। तुम्हारे इस शरीर की लम्बी उम्र तो धनी के गुणों की महिमा गाने में ही बीत गयी। फिर भी अभी तक तुम्हारे अन्दर धनी का इश्क नहीं आया।

भावार्थ- हब्से में विरह-इश्क में डूबकर ही तो श्री इन्द्रावती जी ने अपने प्राण प्रियतम को पाया था। बिना इश्क के न तो धनी का दीदार होगा और न ब्रह्मवाणी का अवतरण ही होगा। इल्म का प्राण इश्क है और इश्क का प्राण इल्म। वस्तुतः इस चौपाई में स्वयं को सम्बोधित कर श्री महामति जी ने उन सुन्दरसाथ को सिखापन दिया है, जो मात्र शब्द ज्ञान को ही ग्रहण कर प्रवचन-उपदेश करते हैं और इसी में स्वयं को कृतार्थ हुआ मानते हैं। प्रेम-भक्ति से रहित शुष्क हृदय वाले ज्ञानीजनों को इसमें सिखापन दिया गया है।

हक सिर पर इन विध खड़े, देखत ना हक तरफ।

जो स्वाद लगे मेहेबूब का, तो मुख ना निकसे एक हरफ॥२॥

तेरे प्राणवल्लभ तेरे सिर पर खड़े हैं, फिर भी तू उनकी तरफ नहीं देख रही है। यदि तुझे अपने प्रियतम के प्रेम का स्वाद लग जाये, तो तेरे मुख से शुष्क ज्ञान का एक भी अक्षर नहीं निकलेगा।

भावार्थ— इस चौपाई का भाव यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि तारतम वाणी की चर्चा-प्रवचन करना मना है। ब्रह्मवाणी में तो दिन-रात चर्चा सुनने की बात की गयी है— चर्चा सुणजो दिन ने रात, आपणने त्रूठा प्राणनाथ।

रास २/१९

इस चौपाई में मूलतः यह बात दर्शायी गयी है कि धनी का प्रेम ही सर्वोपरि है। उस अलौकिक प्रेम की अवहेलना करके स्वयं को मात्र शब्द-जाल में फँसाये रखने से

आत्मा कदापि जाग्रत नहीं होगी। जब स्वयं श्री इन्द्रावती जी प्रकाश हिन्दुस्तानी २९/३,४ में कहती हैं कि "ए देते मेरा जीव निकसे", "ए निध लई मैं कसनी कर", तो ऐसी ब्रह्मवाणी के मर्म को शुष्क हृदय वाला न तो यथार्थ में व्यक्त कर सकता है और न धनी का दीदार ही कर सकता है।

बात करत तूं हक की, जो रूहों सों गुप्तगोए।

इन बका की खिलवत से, कछू तोको भी नसीहत होए॥३॥

हे मेरी आत्मा! बातें तो तू उस इश्क-रब्द की करती है जो श्री राज जी और रूहों के बीच हुआ, लेकिन परमधाम की खिल्वत की इन बातों से तुम्हें स्वयं के लिये भी सिखापन लेना चाहिए।

ए सब्द कहे तैं नींद में, के सुपने करत स्वाल।

के जवाब तेरे जागते, कछू देखे ना अपना हाल॥४॥

इन बातों को तू नींद में कह रही है या स्वप्न में ही प्रश्न कर रही है? तू इस बात पर भी विचार कर कि क्या तुम्हारे उत्तर जाग्रति के हैं? तू अपनी रहनी क्यों नहीं देखती?

कैसी बात करत है, किन ठौर की बात।

तूं कौन गुफ्तगोए किन की, ना विचारत हक जात॥५॥

मेरी आत्मा! तू इस बात पर भी विचार कर कि तू कहाँ की और किस प्रकार की बातें करती है? तुम्हारा निज स्वरूप क्या है और किनकी गुह्य बातें कर रही है? तू श्यामा जी और सुन्दरसाथ के विषय में भी नहीं सोचती।

ए बात ना होए कबूं नींद में, और सुपने भी ना एह।

जो तूं बात करे जागते, तो तेरी क्यों रहे झूठी देह॥६॥

परमधाम की ये अलौकिक बातें न तो नींद में हो सकती हैं और न ही स्वप्न में। आश्चर्य की बात यह है कि यदि तू जाग्रत होकर बातें कर रही है, तो तुम्हारा यह झूठा शरीर क्यों है?

भावार्थ— शरीर की जाग्रति, जीव की जाग्रति, तथा आत्मा की जाग्रति— तीनों ही अलग-अलग हैं।

शरीर की जाग्रति भी तीन तरह की होती है— १-स्थूल शरीर की जाग्रति, २-सूक्ष्म शरीर की जाग्रति, ३-कारण शरीर की जाग्रति। इसी प्रकार तीनों शरीरों की निद्रा भी होती है। जब गहन निद्रा होती है, उस समय कारण शरीर (अन्तःकरण) पूर्ण रूप से निष्क्रिय होता है। सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ

भी निष्क्रिय होती हैं। स्थूल शरीर का कुछ भाग हाथ-पैर आदि पूरी तरह निश्चेष्ट हो जाते हैं, किन्तु नाड़ियों में रक्त प्रवाह तथा हृदय की धड़कन पूर्ववत् होती रहती है।

इस चौपाई में यही बात कही गयी है कि यदि तुम शारीरिक दृष्टि से नींद या स्वप्न में हो, तो परमधाम के ज्ञान की बातें नहीं कर सकते। यदि तुम्हारी आत्मा या असल स्वरूप (परात्म) जाग्रत होता, तो स्वप्न का यह तन रह ही नहीं सकता। आगे की दोनों चौपाइयों में आत्मा, जीव, और शरीर की जाग्रत अवस्था के बारे में प्रकाश डाला गया है।

ए बात ना नींद सुपन की, जो तूं बात करे जाग्रत।

तो कौल फैल ना हाल कोई, रहे ना देह गत मत॥७॥

परमधाम की ये बातें नींद या स्वप्न में नहीं कही जा

सकती हैं। यदि तू जाग्रत अवस्था में बातें कर रही है, तो तुम्हारी कथनी, करनी, या रहनी की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्थिति में तो तुम्हारी इस प्रकार की शारीरिक अवस्था या बुद्धि की क्रियाशीलता रह ही नहीं सकती।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि यदि हम नींद में होते हैं या स्वप्न देख रहे होते हैं, तो उस समय परमधाम की खिलवत की बातें करनी असम्भव है। यदि हमारी आत्मिक दृष्टि नींद के इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड से परे नहीं हुई, तो भी खिल्वत की बातें नहीं की जा सकती। यदि हमारी आत्मा जाग्रत है, तो कथनी के अनुसार करनी और रहनी को सुधारने की बात क्यों की जाती है? जाग्रत होने के बाद न तो आन्तरिक रूप से उसके शरीर का अस्तित्व रहता है और न तर्क-वितर्क

करने वाली बुद्धि की दौड़ ही रहती है। किरंतन १०/४
में इसको इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

लगी वाली कछु और न देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नहीं।
ओ खेलत प्रेमें पार पिया सों, देखन को तन सागर मांहीं॥

जो ए बात करे जागते, तो तोहे नींद आवे क्यों फेर।

नैनों पल क्यों लेवहीं, क्यों बोले और बेर॥८॥

हे मेरी आत्मा! यदि तू जाग्रत होकर ये बातें करती है,
तो तुम्हें कभी भी नींद नहीं आनी चाहिए। जाग्रत
अवस्था में तो तुम्हारी आँखों की पलकें बन्द नहीं होनी
चाहिए और तुम्हें दोबारा नहीं बोलना चाहिए।

भावार्थ— नींद न आना, पलकों का बन्द न होना, और
न बोलना शारीरिक जाग्रति की अवस्था है। आत्मा की
जाग्रति से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यह चौपाई

आत्मा और शरीर की जाग्रति के भेद को समझाने के लिये कही गयी है।

के तूं बुध रहित है, के तूं बोलत बेसहूर।

बेसहूर क्यों कहे सके, ए हक का गुझ जहूर॥९॥

तू इस बात का विचार कर कि क्या तू इस तरह की बातें बिना सोचे-समझे बोल रही है या तुम्हारे पास बुद्धि ही नहीं है? श्री राज जी के दिल की छिपी हुई गुह्य बातों को तो कोई नासमझ व्यक्ति कह ही नहीं सकता।

अब तेहेकीक एही होत है, तोहे बोलावत हुकम।

हुकमें वजूद रेहेत है, और हुकमें दिया इलम॥१०॥

अब तो यह बात निश्चित है कि धाम धनी का हुकम ही तुमसे बुलवा रहा है। उनके हुकम से ही तुम्हारे इस शरीर

का अस्तित्व है और उनके हुक्म से ही तुम्हें ब्रह्मवाणी का ज्ञान मिला है।

भावार्थ- पूर्व की चौपाइयों में कही हुई इस बात का स्पष्टीकरण दिया गया है कि आत्मा के जाग्रत होने पर शरीर का यदि अस्तित्व है, तो वह केवल धनी के हुक्म से है। आगे की ग्यारहवीं चौपाई में भी यही बात दर्शायी गयी है।

आए इलम हक बका के, तब देह रहे क्यों कर।

बेसक हुए हक अर्स सों, सो दम रहे न हक बिगर॥११॥

अक्षरातीत के परमधाम का ज्ञान जब हृदय में आ जाता है, तो शरीर का संसार में रह पाना आश्चर्य प्रकट करता है। ब्रह्मवाणी से श्री राज जी और परमधाम के सम्बन्ध में संशय रहित हो जाने पर तो एक क्षण के लिये भी इस

संसार में नहीं रहा जा सकता।

अर्स हक की बेसकी, पाई जरे जरे जेती।

ज्यों जाग के केहे हकीकत, और देह बोलत सुपने की॥१२॥

तूने श्री राज जी तथा परमधाम के कण-कण का बेशक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तुम परमधाम का वर्णन वैसे ही करती हो, जैसे कोई जाग्रत अवस्था में करता है। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि बोलना भी स्वप्न के शरीर से ही हो रहा है।

बड़ा होत है अचरज, बात जाग्रत माहें सुपना।

जब कछू होवे जाग्रत, तब तो ए आगे ही से फना॥१३॥

परमधाम पूर्णरूपेण जाग्रत धाम है। वहाँ की बात जब इस स्वप्न के संसार में होती है, तो मुझे इस बात पर

बहुत आश्चर्य होता है। यदि आत्मा थोड़ी भी जाग्रत हो जाती है, तो उसके लिये यह संसार और शरीर पहले ही नष्ट हो जाता है।

जो विचार विचार विचारिए, तो अनहोनी हक करत।

इत बल किसी का नहीं, दिल आवे सो देखावत॥१४॥

यदि इस बात को बारंबार विचारा जाये, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि धाम धनी अनहोनी घटना को भी होनी में परिवर्तित कर रहे हैं। इस स्वप्नमयी संसार में किसी का भी बस नहीं चलता है। धाम धनी के दिल में जो कुछ भी आ जाता है, उसे अपने दिल रूपी परदे पर रूहों को वैसे ही दिखाते हैं।

अर्स की रूहों को सुपना, देखो कैसे ए आया।

ए भी हकें जान्या त्यों किया, अपने दिल का चाहया॥१५॥

कितने आश्चर्य की बात है कि परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को भी स्वप्न दिख गया? अपने दिल की इच्छानुसार ही श्री राज जी ने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। खेल से सम्बन्धित उनके मन में जो कुछ भी आया, उसे उन्होंने कर दिया।

देह रखी सुपन की, और सक ना जागे में।

ए भी हकें जान्या त्यों किया, विचार देखो दिल में॥१६॥

धाम धनी ने स्वप्न दिखाने में हमारे नश्वर शरीर को भी सुरक्षित रखा और ब्रह्मवाणी से हमें जाग्रत भी किया। इस बात में किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप अपने दिल में विचार करके देखें तो यह

बात भी स्पष्ट होती है कि धाम धनी ने जैसा अपने दिल में लिया वैसा ही किया।

भावार्थ- स्वप्न नींद में ही देखा जाता है। नींद के टूटते ही स्वप्न में दिखने वाले शरीर का नाश हो जाता है। यह धाम धनी के हुक्म की कारीगरी है कि ब्रह्मवाणी के द्वारा जाग्रत होने पर भी यह नश्वर तन बचा हुआ है।

आप अर्स देखाइया, ज्यों देखिए नींद उड़ाए।

जरा सक दिल ना रही, यों अर्स दिया बताए॥१७॥

जिस प्रकार नींद छोड़कर जाग्रत अवस्था में किसी भी वस्तु को देखा जाता है, उसी प्रकार धाम धनी ने ब्रह्मवाणी से हमारी माया की नींद उड़ायी और हमें जाग्रत करके ध्यान द्वारा परमधाम का दीदार कराया। प्रियतम अक्षरातीत ने मुझे इस प्रकार परमधाम का ज्ञान दिया कि

अब मेरे अन्दर किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं है।

फेर देखो सुपन को, तो अजुं रहया है लाग।

फरामोसी नींद ना गई, जानों किन ने देख्या जाग॥१८॥

पुनः यदि इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड की ओर देखा जाये, तो यह अभी भी जैसा का तैसा खड़ा है। जब हमारे अन्दर की फरामोशी नहीं गयी, तो प्रश्न यह होता है किसने जाग्रत होकर परमधाम को देखा?

भावार्थ- वस्तुतः इस खेल में आत्मा की जागनी होनी है, परात्म की नहीं। परात्म वहदत में है। वहाँ सबकी जागनी एक साथ ही होगी। इस खेल में आत्माओं की जागनी आगे-पीछे हो रही है, जबकि परमधाम में सबकी परात्म पर फरामोशी छायी है। आत्मा का तन स्वप्न का है, जबकि परात्म का तन असल है। इसको श्रीमुखवाणी

में इस प्रकार कहा गया है—

ए जो सरूप सुपन के, असल नजर बीच इन।

वह देखें हमको ख्वाब में, वह असल हमारे तन॥

इनों अंतर आंखा तब खुले, जब हम देखें वह नजर।

अंतर चुभे जब रुह के, तब इतहीं बैठे बका घर॥

श्रृंगार ३/२,३

इस अठारहवीं चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश लेकर प्रेम के द्वारा जब आत्मा जाग्रत होती है, तो वह परमधाम को साक्षात् रूप से वैसे ही देखती है जैसे परात्म से देखती रही है। ध्यान टूटने पर अपने शरीर और ब्रह्माण्ड को वह पूर्ववत् सुरक्षित पाती है, जबकि परात्म फरामोशी के दृश्य को देखने में अभी भी तल्लीन दिखायी देती है अर्थात् फरामोशी में डूबी होती है। इसे कलस हि. २/३६ में इस

प्रकार व्यक्त किया गया है—

निज बुध आवे अग्याएं, तोलों छूटे न मोह।

आतम तो अंधेर में, सो बुध बिना बल न होए॥

जो देखूं अर्स जागते, तो इत नहीं जरा सक।

फेर देखूं तरफ सुपन की, तो यों ही खड़ा मुतलक॥१९॥

जब मैं जाग्रत होकर परमधाम की ओर देखती हूँ, तो वह प्रत्यक्ष दिखायी देता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है। पुनः जब मैं स्वप्न के ब्रह्माण्ड की ओर देखती हूँ, तो यह भी पूर्ववत् खड़ा दिखायी पड़ता है।

ए बातें नूरजमाल की, इनमें कैसा तअजुब।

जनम लाख देखावें पल में, जानों ढांप के खोली अब॥२०॥

यह तो सर्वशक्तिमान अक्षरातीत की लीला है, जिसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं किया जा सकता। आँखों की पलकों को बन्द करके खोलने में जितना समय लगता है, उस एक पल में ही धाम धनी लाखों जन्मों का दृश्य दिखा सकते हैं।

एक खस-खस के दाने मिने, देखाए चौदे तबक।

तो कौन बात का अचरज, ऐसे देखावें हक॥२१॥

खसखस का दाना बहुत छोटा होता है। उसमें चौदह लोक के इस विशाल ब्रह्माण्ड का दृश्य दिखाना एक असम्भव सी बात लगती है, किन्तु धाम धनी के लिये यह बहुत सरल है। उनके लिये खसखस के एक दाने में चौदह लोक का दृश्य दिखाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

भावार्थ- श्री राज जी का दिल रूपी परदा ही खसखस का वह दाना है, जिसमें चौदह लोक का दृश्य दिखाया जा रहा है। वहदत की मारिफत (श्री राज जी) के दिल में फरामोशी के ब्रह्माण्ड की लीला दिखाना असम्भव सी बात लगती है। यही कारण है कि श्री राज जी के दिल रूपी परदे को खसखस से उपमा दी गई है।

ऐसी बातें हक की, इत कोई सक ल्याओ जिन।

देख दिन में ल्यावें रात को, और रात में ल्यावें दिन॥२२॥

हे सुन्दरसाथ जी! श्री राज जी की लीला की बातें अलौकिक हैं। उनमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए। वे दिन में रात्रि का दृश्य उपस्थित कर सकते हैं और रात्रि में दिन का दृश्य उपस्थित कर सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में दिन का तात्पर्य परमधाम से है और रात्रि का भाव कालमाया के ब्रह्माण्ड से है। धाम धनी ने अपनी मेहर से परमधाम में बैठे-बैठे हमारे मूल तनों (परात्म) को माया का खेल दिखाया है, तो इस खेल में हमारी सुरता को परमधाम दिखाया है।

ऐसे खेल कई हक के, बैठे देखावें अर्स माहें।

रुह बकाएँ लई देह नासूती, जो मुतलक कछुए नाहें॥२३॥

श्री राज जी परमधाम में बैठे-बैठे इस प्रकार के अनेक खेल दिखा सकते हैं। परमधाम में अखण्ड स्वरूप वाली आत्माओं ने इस खेल में मृत्युलोक का तन धारण किया है, जो निश्चित रूप से कुछ है ही नहीं अर्थात् नश्वर है।

भावार्थ- इस चौपाई का ऐसा भाव लेना उचित नहीं है कि श्री राज जी इस प्रकार के अनेक खेल परमधाम में

दिखाते रहते हैं। श्रीमुखवाणी के कथनानुसार यह प्रथम अवसर है, जब परमधाम की आत्मायें माया का खेल देखने के लिये ब्रज, रास, और जागनी के इस ब्रह्माण्ड में आयी हैं।

ए तीन ब्रह्माण्ड हुए जो अब, ऐसे हुए न होसी कब।

इन तीनों में ब्रह्मलीला भई, ब्रज रास और जागनी कही॥

प्र. हि. ३७/११४

इश्क-रब्द के बाद ही तो ब्रह्मसृष्टियों का इस मायावी जगत में अवतरण हुआ। सम्पूर्ण तारतम वाणी एवं बीतक में ऐसा कोई भी कथन नहीं है, जिससे सिद्ध होता हो कि ब्रह्मसृष्टि इसके (ब्रज, रास, और जागनी से) पहले भी खेल में कई बार आ चुकी है। इस सम्बन्ध में माहेश्वर तन्त्र का प्रमाण मान्य नहीं होगा।

श्रृंगार ग्रन्थ ७/९ की यह चौपाई इस सम्बन्ध में बहुत

महत्वपूर्ण है—

इस्क रब्द हुआ अर्स में, तो रूहें इत देह धरत।
रूहें चरन तो पकड़े, जो असल हक निसबत॥

तन ऐसा धर नासूत में, करी हक सों निसबत।
कजा चौदे तबक की, इन तन पे करावत॥२४॥

ब्रह्मसृष्टियों ने इस पृथ्वी लोक में माया का शरीर धारण किया और तारतम वाणी के द्वारा धनी से अपना मूल सम्बन्ध जोड़ा। धाम धनी ने इन्हीं नश्वर तनों में बैठी हुई ब्रह्मसृष्टियों से चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड का न्याय कराया और उन्हें अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्रदान किया।

ऐसी अचरज बातें हक की, क्यों कहूं झूठी जुबान।

कहूं इन तन का खसम, जो वाहेदत में सुभान॥२५॥

इस प्रकार श्री राज जी की लीलाएँ महान आश्चर्य में डालने वाली हैं, जिनका वर्णन मैं अपनी इस नश्वर जिह्वा से कैसे करूँ? परमधाम की उस अखण्ड वहदत के प्रियतम अक्षरातीत को मैं भाववश अपने इस नश्वर तन का भी धनी कह देती हूँ।

भावार्थ— तन को जीव धारण करता है, जिसको अधिष्ठान (विराजमान होने का स्थान) बनाकर ब्रह्मसृष्टि इस खेल को देख रही है। यद्यपि राज जी केवल आत्मा के ही प्रियतम हैं, किन्तु जब जीव भी अँगना भाव से धनी को रिझाने लगता है तो समर्पण की भावना से श्री राज जी को उसके तन का प्रियतम भी कह दिया जाता है।

दोस्त कहूं हक बका को, धर ऐसा झूठा तन।

निसबत तुमसों तो कहूं, जो देख्या बका वतन॥२६॥

माया का यह नश्वर तन धारण करके अखण्ड स्वरूप वाले आप अक्षरातीत को मैं अपना प्रेम पात्र (दोस्त) कहती हूँ। हे धनी! आपकी मेहर से मैंने अपने निजधाम को देख लिया है और आपसे मेरी अखण्ड निस्बत भी है। इसी कारण मैं आपको अपना प्रियतम (दोस्त) कहती हूँ।

भावार्थ— इस चौपाई में "दोस्त" शब्द का तात्पर्य लौकिक मित्र से नहीं है, बल्कि यहाँ अपने प्रेम का जो एकमात्र केन्द्र बिन्दु हो, वही दोस्त या प्रियतम कहा गया है।

एह विध मैं केती कहूं, कौन अचरज इन।

कई बातें ऐसी हक की, जो विचार देखो रूह तन॥२७॥

हे साथ जी! यदि इस बात पर विचार करके देखें तो यह स्पष्ट होगा कि श्री राज जी की ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो आश्चर्य में डालने वाली हैं। धाम धनी की लीलाओं का विवरण मैं कहाँ तक कहूँ? इसमें किसी को कोई भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "रूह तन" शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अभिप्राय है- इस संसार में आत्मा ने जो तन धारण किया है, उसमें स्थित जीव के अन्तःकरण से विचार करना। जड़ शरीर विचार नहीं कर सकता। इसी प्रकार जीव अपने अन्तःकरण के माध्यम से ही विचारमग्न होता है, जबकि इस कार्य में नाम शरीर का ही आता है। इस चौपाई में "रूह तन" कहे जाने का

यही भाव है।

अब केहेती हों खसम को, तुम से कैसी चतुराए।

ए भी जानो त्यों करो, ऐसी बनी खेल में आए॥२८॥

अब मैं धाम धनी से कहती हूँ कि भला आपसे कैसी चतुराई है? इस खेल में आकर तो हमारी स्थिति ऐसी बन गयी है कि आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही कीजिए।

जेती बातें मैं कही, तिन सब में चतुराए।

ए चतुराई भी तुम दई, ना तो एक हरफ न काढ़यो जाए॥२९॥

अब तक मैंने जो भी बातें कही हैं, उन सबमें कहने की चतुराई दिखती है, किन्तु मेरे अन्दर कहने की चतुराई देने वाले भी आप ही हैं, अन्यथा मेरे से तो एक अक्षर भी नहीं कहा जा सकता।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रयुक्त "चतुराई" शब्द का आशय सांसारिक चतुराई से नहीं है, बल्कि बुद्धिमतापूर्ण तरीके से धनी की महिमा का बखान करना और उनके प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम और समर्पण की भावना को व्यक्त करना है।

एह बात रही हुकम पर, करें हक सांची सोए।

या राजी या दलगीर, ए हाथ खसम के दोए॥३०॥

अन्ततोगत्वा सारी बात श्री राज जी के हुकम पर आ जाती है। धाम धनी सब कुछ सत्य के अनुकूल ही करते हैं। चाहें हम खुशियों में मग्न हों या दुःखी हों, सब कुछ धनी के हुकम पर ही निर्भर करता है।

भावार्थ- धाम धनी सत्य के भी मूल "परमसत्य" हैं। उनकी प्रत्येक लीला में सत्य छिपा होता है। उनकी भक्ति

का नाटक रचकर कोई भी किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता। तान्त्रिक क्रियाओं के द्वारा किसी का अनिष्ट करने के विषय में सोचना निरी मूर्खता और पाप है।

उमर तो सब चल गई, आया उठने का दिन।

या तो उठाओ हँसते, ज्यों जानो त्यों करो रुहन॥३१॥

हे धनी! हमारी उम्र का एक लम्बा हिस्सा व्यतीत हो गया है। अब तो जाग्रत होने का समय आ गया है। या तो आप हमें हँसते हुए उठाइए या फिर आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिए।

भावार्थ— परात्म की उम्र तो अनन्त है, किन्तु आत्मा ने इस संसार में जो मानव तन धारण किया है, उसकी एक सीमित उम्र होती है। उसकी उम्र का अधिकांश भाग व्यतीत हो जाने को ही उम्र का बीत जाना (चल जाना)

कहते हैं।

इस चौपाई में परमधाम में जाग्रत होने का नहीं, बल्कि इस फरामोशी के ब्रह्माण्ड में जाग्रत होने (उठने) का प्रसंग है, क्योंकि इसके दूसरे चरण में कहा गया है कि अब उठने का समय आ गया है। श्यामा जी की बादशाही के चालीस वर्ष, जागनी लीला के १२० वर्ष, तथा छठें दिन की लीला के पूर्ण हुए बिना परात्म में जाग्रत होने का प्रश्न ही नहीं है। वस्तुतः इस चौपाई में आत्मा के उठ खड़े होने (जाग्रत होने) का प्रसंग है। इस सम्बन्ध में शृंगार ग्रन्थ के चौथे प्रकरण की यह चौपाई बहुत महत्वपूर्ण है—

जब पूरन सरूप हक का, आए बैठा मांहें दिल।

तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल॥

जब बैठे हक दिल में, तब रुह खड़ी हुई जान।

हक आए दिल अर्स में, तब रुह जागे के एही निसान॥

श्रृंगार ४/७०,७२

नींद आई हुकम सों, हुकमें हुआ सुपन।

हुकम से जागत हैं, एक जरा न हुकम बिन॥३२॥

यह नींद भी धनी के हुक्म से ही आयी है। हुक्म से ही यह स्वप्न का ब्रह्माण्ड बना है। हुक्म से ही आत्मा भी जाग्रत होती है। आपके हुक्म (आदेश) के बिना तो एक कण का भी अस्तित्व नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि नींद किसमें आयी- परात्म में या आत्मा में?

परात्म का स्वरूप वहदत में है, जिसमें नींद (मोह, अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, और शून्य) का प्रवेश सम्भव

नहीं है। यद्यपि सिन्धी वाणी १५/४ में यह अवश्य कहा गया है कि परात्म के तन तो नींद में सोए हैं—

तन तो अपने अर्स में, सो तो सोए नींद में।

जागत है एक खावन्द, ए नींद दर्ई जिनने॥

किन्तु इस प्रकार का कथन नींद के खेल को देखने में तल्लीनता के कारण कहा गया है। आत्मा ही इस फरामोशी के ब्रह्माण्ड में आयी है तथा जीव पर बैठकर इस खेल को देख रही है, जो इन्द्रियों और अन्तःकरण के द्वारा फरामोशी के बन्धन में है—

जीवें आतम अंधी करी, मिल अन्तस्करण अंधेर।

गिरदवाए अंधी इंद्रियां, तिन लई आतम को घेर॥

किरन्तन ७४/५

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि फरामोशी (नींद) का सम्बन्ध मूलतः आत्मा से है।

हकें इलम ऐसा दिया, जो चौदे तबकों नाहें।

और नाहीं नूर मकान में, सो दिया मोहे सुपने माहें॥३३॥

धाम धनी ने इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी रूपी ऐसा ज्ञान दिया है, जो न तो चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में है और न ही अक्षर धाम में है।

ए इलम नूर जमाल बिना, दूजा कौन बकसत।

मुझ बिना किने ना पाइया, मेरी बेसक रूह जानत॥३४॥

मेरी आत्मा इस बात को निश्चित रूप से जानती है कि तारतम वाणी का यह अलौकिक ज्ञान प्रियतम अक्षरातीत के बिना और कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं दे सकता। यह भी निश्चित है कि मेरे बिना अन्य किसी ने भी इस सौभाग्य को नहीं पाया, अर्थात् मेरे सिवाय अन्य किसी

के भी तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण नहीं हुआ।

या जानें एह मोमिन, जिन इलम पाया बेसक।

तिनों नीके कर चीन्हया, जिन बूझ लिया इस्क॥३५॥

मेरे अतिरिक्त वे ब्रह्ममुनि ही इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं, जिन्होंने इस संशय रहित ब्रह्मवाणी का ज्ञान प्राप्त किया है। उन्होंने ही इस बेशक इल्म के द्वारा इश्क को यथार्थ रूप से जाना है और धनी के स्वरूप की अच्छी तरह से पहचान की है।

मोमिन तिन को जानियो, नूर-जमाल सों निसबत।

मेरी बेसक देसी साहेदी, जिनों पाई हक न्यामत॥३६॥

वास्तव में ब्रह्ममुनि वही हैं, जिनकी धनी के चरणों से अखण्ड निस्बत होती है। जिन्होंने ब्रह्मवाणी (श्री

कुलजम स्वरूप) के रूप में इस अखण्ड निधि को प्राप्त किया है, वे ही मेरे (हकी) स्वरूप के सम्बन्ध में संशय रहित साक्षी देंगे।

भावार्थ- इस चौपाई का आशय यह है कि वे ही श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की यथार्थ में पहचान कर सकेंगे, जिन्होंने ब्रह्मवाणी का चिन्तन-मनन किया है।

अब इन ऊपर क्या बोलना, आगूं मेहेबूब तुम।

जिन विध जानो त्यों करो, दोऊ तन तले कदम॥३७॥

अब इसके आगे और क्या कहना बाकी है। मेरे प्रियतम! आगे तो सब कुछ करने वाले आप ही हैं। अब आपको जैसा अच्छा लगे, वैसा कीजिए। आपके चरणों में ही हमारी आत्मा और परात्म के तन हैं।

जो हक के दिल में आइया, सो सब देख्या नीके कर।

जो देखाया इलमें, या देखाया नजर॥३८॥

आपके दिल में जो कुछ भी आया, उसे हमने अच्छी तरह से देख लिया है— या तो आपने इल्म के द्वारा दिखाया या हुक्म के द्वारा सुरता की नजर से दिखाया।

भावार्थ— वाणी के चिन्तन-मनन से बेहद या परमधाम का जो भी स्वाद आता है, वह "ज्ञान द्वारा" देखना है। इश्क में डूबकर आत्मा (सुरता) की दृष्टि से देखना "नजर द्वारा" देखना है।

और जो हक के दिल में, बाकी होसी अब।

जो तुम देखाओगे, सो रूहें देखें हम सब॥३९॥

हे धाम धनी! अब आपके दिल में जो कुछ भी दिखाना बाकी रह गया है, उसे यदि आप दिखाते हैं तो हम सब

आत्मार्ये अवश्य देखेंगी।

केहेना केहेलावना ना रहया, ऐसा तुम दिया इलम।

तुम बिना जरा है नहीं, ज्यों जानो त्यों करो खसम॥४०॥

मेरे प्राण प्रियतम! आपने ऐसी अनमोल ब्रह्मवाणी का ज्ञान दिया है, जिससे अब कुछ कहने-कहलवाने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी। आपके बिना तो एक कण का भी अस्तित्व नहीं है, अर्थात् सब कुछ आपसे ही है। अब आपको जो अच्छा लगे, वही कीजिए।

बोलिए सो सब बन्धन, ए भी बोलावत तुम।

ए सहूर भी तुम देत हो, ज्यों जानो त्यों करो खसम॥४१॥

यदि मैं कुछ कहती हूँ तो वह "मैं" का बन्धन सा प्रतीत होता है, लेकिन आप ही अपने हुक्म से ऐसा कहलवाते

हैं। मुझे प्रेम और समर्पण की उच्च मन्जिल पर पहुँचकर कुछ नहीं बोलना चाहिए, इस तरह का चिन्तन भी आप ही देते हैं। अब तो मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि आपको जो अच्छा लगे, वही कीजिए।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "मैं" के बन्धन का प्रसंग है, हुक्म का नहीं। प्रेम (विरह) की भाषा मूक होती है। "नाहीं कथनी इस्क की, और कोई कथियो जिन" तथा "जब मैं हुती विरह में, तब मुख बोल्यो न जाए", कलश हिन्दुस्तानी के इन कथनों से स्पष्ट है कि बोलने पर "मैं" का अस्तित्व खड़ा हो जाता है। दूसरे चरण में हुक्म का प्रसंग अवश्य है, जिसके वशीभूत होकर आत्मा बोलने के लिये विवश हो जाती है।

खसम खसम तो केहेती हों, जानों खुदी रहे ना मुझ माहें।

गुनाह अपनी अंगना पर, बका में आवत नाहें॥४२॥

मेरे प्रियतम! मैं बार-बार आपको इसलिये पुकारती हूँ, ताकि मेरे अन्दर किसी भी तरह की "मैं" न रह जाये। ऐसा करने पर मुझे विश्वास है कि मुझ अँगना पर परमधाम में कोई भी गुनाह नहीं पहुँचेगा।

भावार्थ- गीता में जिस प्रकार पाप से बचने के लिये अहंकार से रहित होकर अनासक्त भाव से कर्म करने का उपदेश दिया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी गुनाह से बचने के लिये "मैं खुदी" का परित्याग करके प्रेम में डूबने की बात कही गयी है।

यद्यपि श्रृंगार २७ / १६ में अवश्य कहा है कि हमारे परमधाम में जाने से पहले ही गुनाह पहुँच जायेगा-

मोमिन बैठे खेल में, अजूं बीच ख्वाब।

गुनाह पहले पोहोंच्या अर्स में, करे मासूक रुहें हिसाब॥

जीव के द्वारा होने वाला गुनाह आत्मा के साथ जुड़ जाता है क्योंकि आत्मा ने परात्म का यहाँ नाम ले रखा है, इसलिये परात्म में जाग्रत होने से पूर्व ही वहाँ गुनाह का पहुँचना स्वाभाविक है। किन्तु जीव से गुनाह तभी होता है, जब वह शरीर तथा संसार के मोह से ग्रस्त होता है और अहंकार के वशीभूत होकर कार्य करता है। ब्रह्मवाणी से धनी को जानकर यदि हक की "मैं" ले ली जाये और प्रेम में डूबे रहकर कार्य किया जाये, तो किसी भी प्रकार के गुनाह की कोई सम्भावना नहीं है।

ए भी इलम हकें दिया, मैं कहा कहूं खसम।

ठौर ना कोई बोलन की, बैठी हों तले कदम॥४३॥

हे धनी! गुनाह से बचने का यह ज्ञान भी तो आपने ही दिया है। अब मैं आपसे क्या कहूँ? अब तो बोलने की कोई ठौर ही नहीं रही। मैं तो यहाँ-वहाँ दोनों ही जगह आपके चरणों में बैठी हूँ।

खसम खसम तो केहेती हों, जो तुम देखाई निसबत।

भार भी तुम देओगे, तुम ही देओगे लज्जत॥४४॥

मुझे आपने मूल सम्बन्ध की पहचान करा दी है, इसलिये तो मैं बारम्बार आपको प्रियतम – प्रियतम कहकर पुकारा करती हूँ। मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि आप मुझे अपनी अँगना जानकर सम्मान भी देंगे और इस खेल के स्वाद का भी अनुभव करायेंगे।

दोऊ तन तले कदम के, आतम परआतम।

इनमें सक कछू ना रही, यों कहें हक इलम॥४५॥

आपकी दी हुई ब्रह्मवाणी का ज्ञान ऐसा कहता है कि मेरी आत्मा तथा परात्म के तन आपके चरणों में हैं। अब इस विषय में मुझे किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है।

सिखाओ चलाओ बोलाओ, सो सब हाथ हुकम।

सो इलमें बेसक करी, और कहा कहूं खसम॥४६॥

हे धनी! अब आप अपनी इच्छानुसार मुझे सिखापन दीजिए या रहनी की राह पर चलाइये या मेरे मुख से परमधाम का ज्ञान कहलवाइए, सब कुछ आपके हुक्म पर ही निर्भर है। अब मैं आपसे क्या कहूँ? आपके तारतम ज्ञान ने तो मुझे पूरी तरह से संशय रहित कर दिया है।

अन्तर माहें बाहेर की, सब जानत हो तुम।

ए इलमें बेसक करी, अब कहा कहूं खसम॥४७॥

मेरे प्राण वल्लभ! मैं अब आपसे क्या कहूँ? आपकी तारतम वाणी ने मुझे इस बात में पूर्णतया बेशक कर दिया है कि आप मेरे दिल के भीतर की, बाहर की, तथा परमधाम की सारी बातें जानते हैं।

साथ आए मेला मिलसी, सो सब हाथ हुकम।

ए सक इलमें ना रखी, अब कहा कहूं खसम॥४८॥

हे धाम धनी! जब सुन्दरसाथ जाग्रत होकर आपके चरणों में आयेगा, तो सबका मेला पद्मावतीपुरी धाम (पन्ना) में होगा। यह सारी लीला आपके हुकम के हाथ में है। अब मैं आपसे क्या कहूँ? आपके इल्म ने तो मुझे पूर्णतया बेशक कर दिया है।

भावार्थ- पद्मावतीपुरी धाम में मेला लगने का तात्पर्य है- जाग्रत आत्माओं का अपना स्थूल शरीर त्यागकर धनी के चरणों में पहुँचना। इस प्रकार वहाँ बारह हजार ब्रह्मसृष्टि तथा चौबीस हजार ईश्वरी सृष्टि एकत्रित होंगी। उसके पश्चात् ही परमधाम जायेंगे।

खेल कर उतारे खेल में, रूहें पोहोंची इन इलम।

इन बातों सक ना रही, कहा कहूं तुमें खसम॥४९॥

आपने ही इस माया के खेल को बनाया और हमें इसमें उतारा। आपकी दी हुई ब्रह्मवाणी से ब्रह्मसृष्टियों ने परमधाम की पहचान कर ली है। अब आपसे मैं क्या कहूँ? इन बातों में अब हम पूरी तरह से संशय रहित हो गये हैं।

हुकमें पूरी सब उमेद, और बाकी हाथ हुकम।

ए इलमें बेसक करी, अब कहा कहूं खसम॥५०॥

आपके हुकम से हमारी सारी इच्छायें पूर्ण हो गयी हैं और जो बाकी हैं वे भी आपके हुकम से पूर्ण हो जायेंगी। अब मुझे आपसे कुछ भी कहने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि आपकी ब्रह्मवाणी ने ही मेरे सारे संशयों को समाप्त कर दिया है।

दिन गए सो तुम जानत, बाकी भी जानत तुम।

जिन विध राखो त्यों रहूं, कहा कहूं खसम॥५१॥

मेरे प्रियतम! अब तक जो समय बीता है, उसे आप अच्छी तरह से जानते हैं। भविष्य में भी जो समय आने वाला है, उससे आप अनभिज्ञ नहीं हैं। आपसे मैं अब क्या कहूँ? आप मुझे जिस स्थिति में रखें, मैं उसी

स्थिति में रहने के लिये तैयार हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में कहा गया है कि हे धनी! आप मुझे जिस स्थिति में रखिये, मैं उसी स्थिति में रहने के लिये प्रस्तुत हूँ। इस प्रकार का कथन समर्पण और प्रेम की उच्च भावना को दर्शाता है। सामान्य रूप से सुन्दरसाथ अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना करता है और तरह-तरह के गिले-शिकवे भी करता है, जो प्रेम और समर्पण भावना में कमी का द्योतक (परिचायक) है।

ठौर और कोई ना रही, सो बेसक करी इलम।

ए बेवरा तुम कहावत, सो केहेती हों खसम॥५२॥

आपकी ब्रह्मवाणी के ज्ञान ने मुझे इतना बेशक कर दिया है कि अब आपके अतिरिक्त और किसी विषय में बोलने

की कोई आवश्यकता (जगह) ही नहीं रह गयी। इस तरह की बात भी आप ही कहलवा रहे हैं, तभी मैं कह पा रही हूँ।

चौदे तबक सिर मलकूत, ए तो कुरसी फरिस्तों अर्स।
 इन सिर ला-मकान है, आगूं सब्द न चले निकस॥५३॥
 चौदह लोकों में सबसे ऊपर वैकुण्ठ है, जो देवी-
 देवताओं का धाम है। इसके ऊपर निराकार है। इसके
 आगे बेहद है, जहाँ शब्द की गति नहीं है।

फना तले ला मकान लग, आगूं नूर-मकान बका।
 उतथें उतरे सो चढ़े, और चढ़ ना सके इत का॥५४॥
 नीचे के चौदह लोकों से लेकर निराकार तक सब कुछ
 नश्वर है। इसके आगे अखण्ड अक्षर धाम है। वहाँ से आने

वाली ईश्वरी सृष्टि ही पुनः अपने धाम को प्राप्त होती है। हृद (ब्रह्माण्ड-निराकार) वाले उस अखण्ड बेहद में नहीं जा पाते।

भावार्थ- बिना तारतम ज्ञान के कोई भी बेहद की प्राप्ति नहीं कर सकता, भले ही वह कितना बड़ा योगी, तपस्वी, अथवा ज्ञानी क्यों न हो।

देख्या बेचून बेचगून को, और बे-सबी बे-निमून।

निराकार देख्या ला निरंजन, ए बेसक पड़ी सब सुन॥५५॥

मुसलमानों ने जिस अद्वितीय, निर्विकार, त्रिगुणातीत, और अनुपम (बेचूँ, बेचगून, बेसबी, बिनिमून) परब्रह्म को निराकार-निर्गुण (सिफाते सल्विया और सिफाते सहूबिया) माना है, उसी प्रकार हिन्दुओं ने भी उस परब्रह्म को शून्यवत् निराकार-निर्गुण कहा है। उसे मैंने

तारतम वाणी के प्रकाश में देखा और वास्तविकता को जाना। इस प्रकार मैं इस सम्बन्ध में संशय रहित हो गयी।

भावार्थ- हिन्दू और मुसलमान शून्य-निराकार को ही अनुपम-अद्वितीय परमात्मा का स्वरूप मानते हैं, जबकि यह जड़ प्रकृति का सूक्ष्मतम रूप (मोह सागर) है। तारतम ज्ञान के द्वारा ही त्रिगुणातीत परब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है और निराकार सम्बन्धी भ्रान्तियाँ मिटती हैं।

अव्वल इलमें देखाइया, आखिर बेसक इलम।

चौदे तबक देखे नूर लग, ठौर नहीं बिना तेरे तले कदम॥५६॥

बशरी सूरत के द्वारा लाया गया कुरआन अव्वल का ज्ञान है, तथा तारतम बेशक ज्ञान है और आखिरी ज्ञान

है। इन दोनों के प्रकाश में मैंने चौदह लोक से लेकर अक्षर धाम तक देखा। अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकला कि आपके चरणों के अतिरिक्त अन्य कहीं भी मेरा ठिकाना नहीं है।

भावार्थ— परमधाम की ब्रह्मात्मा के लिये धनी के चरणों के सिवाय अन्य सभी स्थान नर्क तुल्य हैं, भले ही वहाँ अन्यो के लिये कितना ही सुख क्यों न हो?

और नजीक न कोई फरिस्ता, कोई नाहीं इन्सान और।
हादी रूहें तेरे कदम तले, कोई और न पोहोंचे इन ठौर॥५७॥
हे धाम धनी! आपके चरणों में श्यामा जी और हम आत्मायें ही हैं। इस सृष्टि का कोई भी देवी -देवता (फरिस्ता) या मनुष्य आप तक न तो पहुँच पाया है और न पहुँच सकेगा।

गिरो नजीकी फरिस्ते, इनका नूर-मकान।

ए मलकूत में रहे ना सकें, चढ़ ना सकें लाहूत आसमान॥५८॥

ब्रह्मसृष्टियों के नजदीक रहने वाली ईश्वरी सृष्टि है ,
जिनका धाम अक्षर धाम (सत्स्वरूप) है। न तो ये हद के
वैकुण्ठ में रह सकती हैं और न परमधाम में जा सकती
हैं।

नूर-मकान का खावंद, जिनके होत एक पल।

कोट ब्रह्मांड ऐसे होए के, वाही खिन में जात हैं चल॥५९॥

अक्षर ब्रह्म अक्षर धाम के स्वामी हैं। उनके आदेश से
चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड जैसे करोड़ों ब्रह्माण्ड उनके
एक पल में पैदा होते हैं और लय हो जाते हैं।

भावार्थ- ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और लय की प्रक्रिया में
लगने वाले पल को मानवीय पल नहीं समझना चाहिए।

अक्षर ब्रह्म के एक पल और मनुष्य के एक पल में बहुत अन्तर है।

इन नूर-मकान का खावंद, जाको नामै नूर-जलाल।

आवत दायम दीदार को, जित अर्स नूर-जमाल॥६०॥

इस अक्षर धाम के स्वामी अक्षर ब्रह्म हैं। वे हमेशा प्रतिदिन अक्षरातीत के दर्शन के लिये परमधाम (चाँदनी चौक में) आते हैं।

दर्ई साख रसूल अल्लाह ने, ना पोहोंचे जबराईल इत।

कहे पर जलें तजल्ली से, तार्थें जोए ना उलंघत॥६१॥

रसूल मुहम्मद साहिब ने भी परमधाम की साक्षी दी है। उन्होंने कहा है कि जिबरील भी परमधाम में नहीं जा सका। जिबरील ने कहा कि परमधाम के तेज से उसके

पँख जलते हैं। इस प्रकार यमुना जी को पार करके वह परमधाम में नहीं जा सका।

भावार्थ— यथार्थ में जिबरील कोई पक्षी नहीं है, जिसके पँख हों। पँख होने का वर्णन यहाँ आलंकारिक भाषा में किया गया है। जिबरील का ठिकाना सत्स्वरूप है। उससे आगे वह कदापि नहीं जा सकता, क्योंकि सर्वरस सागर से ही परमधाम प्रारम्भ हो जाता है। परमधाम में सर्वत्र वहदत है। उसके अन्दर कालमाया या योगमाया से कोई भी नहीं जा सकता। कुरआन में बहुत ही संक्षेप में परमधाम का वर्णन है। मुख्य रूप से हौज कौसर और यमुना जी (जोए) का नाम आया है। सर्वरस सागर से आगे चलने पर यमुना जी ही आती हैं, इसलिये यमुना जी की प्रमुखता को दर्शाने के लिये उनका नाम आया है। परमधाम में इश्क के बिना किसी के लिये भी जाना

असम्भव है। उस वहदत और खिल्वत की भूमिका में भला जोश का फरिश्ता कैसे जा सकता है।

इन अर्स नूरजमाल के, हादी रूहें इन दरगाह माहें।

रूहें इन कदम तले, और ठौर ना कोई क्याहें॥६२॥

अक्षरातीत का वह दिव्य परमधाम है, जहाँ श्री राज जी के साथ श्यामा जी और सखियाँ रहती हैं। ब्रह्मात्मायें उनके चरणों में ही रहती हैं। धनी के चरणों के सिवाय अन्य कहीं भी उनका निवास नहीं है।

भावार्थ— चरणों में रहने का वर्णन भी आलंकारिक है। जिस प्रकार सागर से लहरें और सूर्य से किरणें पृथक् नहीं होतीं, उसी प्रकार अक्षरातीत और सखियों का कभी भी अलगाव नहीं होता।

नूर-जलाल दीदार बाहेर से, करके पीछे फिरत।

नूर-जमाल के कदमों, बड़ीरूह रूहें बसत॥६३॥

अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक में खड़े होकर राज जी का दीदार करते हैं और वापस अक्षर धाम लौट जाते हैं। श्री राज जी की सान्निध्यता (चरणों) में श्यामा जी और सखियाँ लीलामग्न रहती हैं।

ए ना खबर नूरजलाल को, सुख नूरजमाल कदम।

इन बातों सब बेसक करी, मोहे रूह-अल्ला इलम॥६४॥

अक्षर ब्रह्म को भी इस बात की जानकारी नहीं है कि श्री राज जी के चरणों में कितना आनन्द है। श्यामा जी के तारतम ज्ञान ने इन बातों से सम्बन्धित मेरे सभी संशयों का निपटारा कर दिया है।

हादी रूहों को खेल देखाइया, देख्या बैठे तले कदम।

और न कोई केहे सके, बिना निसबत खसम॥६५॥

राज जी ने श्यामा जी और सखियों को अपने चरणों में बैठाकर इस मायावी जगत का झूठा खेल दिखाया है। धनी से अखण्ड निस्बत के बिना इन बातों को संसार में कोई कह ही नहीं सकता।

मोहे इन इलमें बेसक करी, सक न जरा इलम।

दई बेसकी सबन को, ठौर नहीं बिना तेरे कदम॥६६॥

मेरे प्राण वल्लभ! आपकी इस ब्रह्मवाणी में नाम मात्र का भी संशय नहीं है। आपकी तारतम वाणी ने मुझे पूर्णतया संशय रहित कर दिया है। सब सुन्दरसाथ भी इस ब्रह्मवाणी को आत्मसात् करके संशय रहित हो चुके हैं। इन सबका निष्कर्ष यही है कि आपके चरणों के अतिरिक्त

ब्रह्मसृष्टियों का और कोई ठिकाना नहीं है, अर्थात् आपके चरण ही रूहों के जीव के आधार हैं।

रूहें बारे हजार नूर बड़ीरूह के, बड़ीरूह नूर खसम।

ए ठौर बेसक देखिया, बिना नहीं तले तेरे कदम॥६७॥

बारह हजार ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी का नूर हैं और श्यामा जी राज जी का नूर हैं। मैं बेशक होकर यह बात कह रही हूँ कि आपके चरण ही हमारे जीवन के आधार हैं। आपके चरणों के सिवाय हमारा कोई अन्य ठिकाना नहीं है।

भावार्थ— इस चौपाई में "नूर" शब्द से तात्पर्य केवल बाह्य नूर से नहीं है। सम्पूर्ण परमधाम में वहदत है। इस सम्बन्ध में सागर १/४३ की चौपाई देखने योग्य है—

जो कछुए चीज अर्स में, सो सब वाहेदत माहें।

जरा एक बिना वाहेदत, सो तो कछुए नाहें॥

श्री राज जी का दिल अनन्त प्रेम का सागर है। श्यामा जी का दिल ही राज जी का दिल है। इस प्रकार सखियों का स्वरूप श्यामा जी का दिल है। दिल का स्वरूप ही चेहरे पर प्रकट होता है। इस प्रकार श्री राज जी के दिल का इश्क ही नूर के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है।

फेर फेर दर्ई ए बेसकी, याही वास्ते भेज्या इलम।

जाने जिन भूलें रूहें खेल में, याद देने हक कदम॥६८॥

मेरे धाम धनी! आपने ब्रह्मवाणी का यह अनमोल ज्ञान हमारे लिए इसलिए भेजा है, ताकि हम आपके चरणों (स्वरूप) में खोये रहें और इस माया के खेल में कदापि न भूलें। इस प्रकार हमें आपने बारम्बार संशय रहित

किया।

ए हादी रूहें इन कदम तले, जिनको कहे मोमिन।

फुरमान इसारतें रमूजें, आई कुन्जी ऊपर इन॥६९॥

श्यामा जी की अंगरूपा आत्मायें धनी के चरणों में ही रहती हैं। इन्हें ही ब्रह्मसृष्टि कहते हैं। परमधाम के गुह्य रहस्यों की बातें कुरआन में संकेतों में इनके लिये ही लिखी गयी हैं। सम्पूर्ण धर्मग्रन्थों के रहस्यों को खोलने के लिये तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी इनके लिये ही आयी है।

भावार्थ- यद्यपि कुरआन का अध्ययन करने वाले संसार में करोड़ों लोग हैं , किन्तु उसका वास्तविक आशय ब्रह्ममुनियों को ही मालूम है। इसी प्रकार हिन्दू धर्मग्रन्थों का अभिप्राय भी यही जानते हैं।

कुंजी हाथ रूहअल्ला, और रसूल हाथ फुरमान।

भेजे इमाम पे खेल में, सो हादी रूहों लिए निसान॥७०॥

धाम धनी ने मुहम्मद साहिब के हाथ से कुरआन भेजा
तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा तारतम ज्ञान
भिजवाया। इससे ही सभी धर्मग्रन्थों के भेद स्पष्ट होते हैं।
इस संसार में ये दोनों विधियाँ (कुरआन व तारतम
ज्ञान) इमाम महदी स्वरूप श्री प्राणनाथ जी को प्राप्त हुईं।
इनके माध्यम से हादी श्री प्राणनाथ जी तथा ब्रह्ममुनि
सुन्दरसाथ ने कुरआन तथा अन्य सभी धर्मग्रन्थों में
लिखित परमधाम के संकेतों की पहचान कर ली।

नासूत में बैठाए के, भेज्या बेसक इलम।

एक जरे जेती सक ना रही, बैठी बेसक तले कदम॥७१॥

आपने हमें मृत्युलोक में भेजकर ब्रह्मवाणी के रूप में हमें

संशय रहित ज्ञान दिया। मुझे नाममात्र भी किसी विषय में कोई संशय नहीं रह गया है। अब मुझे अहसास हो रहा है कि मैं तो मूल मिलावा में आपके चरणों में ही बैठी हूँ। इसमें कोई भी संशय नहीं है।

ए सक हमको तो मिटी, जो हम बैठे तले कदम।

फरामोसी हम को मिटावने, भेज्या तुम अपना इलम॥७२॥

हम मूल मिलावा में तथा यहाँ आपके चरणों में बैठे हैं, इसलिए आपकी मेहेर की छाँव तले हमारे सारे संशय निवृत्त हो गये हैं। आपने हमारी माया की नींद (फरामोशी) को हटाने के लिए अपनी ब्रह्मवाणी का ज्ञान भेज दिया है।

भावार्थ— किसी भी सुन्दरसाथ की फरामोशी हटाने में इल्म के साथ-साथ मूल सम्बन्ध तथा करनी आवश्यक

है। इस चौपाई की पहली पंक्ति में यही बात दर्शायी गयी है कि आपके चरणों में होने के कारण ही हमारे संशय मिटे हैं। इल्म और निस्बत के साथ-साथ यदि इश्क की करनी-रहनी नहीं है, तो भी फरामोशी नहीं हट सकती।

आया फुरमान खेल देखावने, और आया हक इलम।

ए खेल नीके तब देखिया, जब देख्या बैठे तले कदम॥७३॥

धाम धनी ने साक्षी के रूप में कुरआन तथा परमधाम की पूर्ण पहचान के लिये श्रीमुखवाणी का ज्ञान दिया, ताकि ब्रह्मसृष्टि इस खेल को यथार्थ रूप में जान सकें (देख सकें), किन्तु इस खेल को यथार्थ रूप में देखा हुआ तब माना जायेगा जब सुन्दरसाथ अपनी आत्मिक दृष्टि से अपने मूल तनों को देख लेगा।

भावार्थ- ज्ञान के द्वारा तो परमधाम के इश्क-रब्द से

लेकर ब्रज-रास-जागनी लीला का बोध होता है, किन्तु अपनी परात्म को देख लेने के पश्चात् आत्मा पल-पल धनी के प्रेम में डूबी रहती है। वह संसार को मात्र द्रष्टा होकर देखती है और उस पर माया का कोई भी रंग नहीं चढ़ता। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का यही भाव है।

तुम मोहे ऐसा देखाइया, एक वाहेदत में हैं हम।

दूजा कछुए है नहीं, बिना तुम तले कदम॥७४॥

हे धनी! आपने हमें ऐसा अनुभव कराया कि उस परमधाम में श्यामा जी सहित हम सभी और आप एक ही वहदत (एकदिली) के अन्दर हैं। वहाँ आपके चरणों के आधार के सिवाय और कुछ है ही नहीं।

भावार्थ- इस चौपाई में "कदम" से तात्पर्य स्वरूप से है। श्री राज जी के स्वरूप को दिल में अखण्ड रूप से

बसाये रखना ही उनके चरणों में रहना है। ब्रह्मसृष्टि के लिये यही सर्वस्व है और जीवन का यही आधार है। इसी तथ्य को सिनगार ३/१ में इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है—

आसिक इन चरन की, आसिक की रूह चरन।

ए जुदागी क्यों सहे, रूह बिना अपने तन॥

ए भी इलम तुम दिया, जासों तुम हुए मुकरर।

दिल सो रूहों विचारिया, कछू है ना वाहेदत बिगर॥७५॥

अपनी ब्रह्मवाणी से आपने ही यह बोध कराया है कि एकमात्र आप ही हमारे प्राण प्रियतम हैं। हमने भी अपने दिल में इस बात का विचार किया कि परमधाम की वहदत के अतिरिक्त अन्य कोई हमारा मूल घर नहीं है।

ए तेहेकीक तुम कर दिया, तुम बिना कछुए नाहें।

ए भी तुम कहावत, इत मैं न आवत मुझ माहें॥७६॥

आपने अपनी मेहर से हमारे मन में यह निश्चित धारणा बना दी कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी हमारे जीवन का आधार नहीं है। इस तरह की समर्पण वाली भावना भी आप ही कहलवा रहे हैं। मेरे इस प्रकार के कथन में किसी भी प्रकार की "मैं" की भावना नहीं है।

भावार्थ- जब हमारी आत्मिक दृष्टि मूल स्वरूप का दीदार कर लेती है तथा उन्ही के भावों में खोयी रहती है, तब लौकिक माया के आने का प्रश्न ही नहीं होता। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गई है।

ए जिन बिध हक बोलावत, तिन बिध रूह बोलत।

हम बैठे तले कदम के, ए हम पे हक कहावत॥७७॥

हे धाम धनी! आप जिस प्रकार कहलवा रहे हैं, उसी प्रकार मेरी आत्मा बोल रही है। हम तो आपके चरणों में मूल मिलावा में बैठे हैं। जैसा आप कहलवाते हैं, वैसा ही मेरी आत्मा कह देती है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि हमारी आत्मा कहाँ कह रही है— इस संसार में या परमधाम में। इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि हमारे दोनों तन धनी के चरणों में हैं, फिर भी राज जी के हुक्म से परात्म में जैसी प्रेरणा होती है उसके अनुसार ही आत्मा कार्य करती है। यद्यपि परमधाम की वहदत के अन्दर यहाँ के तनों की तरह बोल-चाल की भाषा नहीं है, किन्तु धाम धनी की प्रेरणा से अध्यात्म सम्बन्धी जो बातें परमात्म के अन्दर आती हैं वही बातें आत्मा यहाँ के शब्दों में व्यक्त करती है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी

के यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

परआत्म के अंतस्करण, जेती बीतत बात।

तेते इन आत्म के, करत अंग साख्यात॥

किरंतन ८२/१३

रुहें तन माहें अर्स बका, और अर्स में बैठे बोलत।

तो नजीक कहे सेहरग से, देखो मोमिनो हक हिकमत॥

सिनगार २३/८८

खुलासा और किरंतन ग्रन्थ में भी इस तत्व को बहुत अच्छी तरह से व्यक्त किया गया है—

मोमिन आये इतथें ख्वाब में, अर्स में इनों असल।

हुकुम करे जैसा हजूर, तैसा होत मांहे नकल॥

खुलासा ४/७१

तुम देखत मोहे इन इण्ड में, मैं चौदह तबक से दूर।

अंतरगत ब्रह्मांड तैं, सदा साहेब के हजूर॥

किरंतन ६५/१८

अनजानत को इलमें, बेसक दिए देखाए।

कदमों नूरजमाल के, हम सब रूहें लई बैठाए॥७८॥

हे धाम धनी! हम तो इस संसार में अनजान थे, लेकिन आपने हमें ब्रह्मवाणी का ज्ञान देकर पूरी तरह से संशय रहित कर दिया है और यथार्थ सत्य की पहचान करा दी है। आपने हम सभी आत्माओं को ज्ञान दृष्टि द्वारा अपने चरणों में बैठा लिया है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि "हमको अपने चरणों में बैठा लिया"। इसका भाव यह है कि इस नश्वर जगत में ब्रह्मवाणी का अमृत रस मिलने के

पश्चात् ब्रह्मसृष्टियों ने इस संसार से नाता तोड़ लिया तथा धनी के चरणों से सम्बन्ध जोड़ लिया। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि रूहों ने ज्ञान दृष्टि से हृद – बेहद को पार करके मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हुए अपने मूल स्वरूप का बोध कर लिया।

तुम बैठाए बैठत हों, मुझ में नहीं ताकत।

बैठी कदम तले हक, ए भी तुम कहावत॥७९॥

मेरे धाम धनी! आपके बैठाने पर मैं बैठती हूँ। मुझमें स्वतः बैठने की शक्ति है ही नहीं अर्थात् मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं है, सब कुछ आप ही हैं। आप मेरे मुख से यह बात अपने हुक्म से ही कहलवा रहे हैं कि मैं आपके चरणों में बैठी हूँ।

भावार्थ— इस चौपाई में समर्पण और मैं (खुदी) के

त्याग का वास्तविक स्वरूप दर्शाया गया है, जिसमें स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। यहाँ तक कि बैठने में भी श्री राज जी का हुक्म ही माना जाता है।

महामत कहे मेहेबूब जी, कोई रहया न और उदम।

बेसक और काहूँ नहीं, बिना तेरे तले कदम॥८०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे प्राण प्रियतम! इस बात में मैं पूरी तरह से निश्चित हो गई हूँ कि आपके चरणों के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई स्थान नहीं है और आपके प्रति सर्वस्व समर्पण के अतिरिक्त और कुछ भी कार्य मुझे नहीं करना है।

प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥५२२॥

हक रूहन की खिलवत

इस प्रकारण में इश्क-रब्द का विशेष वर्णन किया गया है।

खिलवत हक रूहन की, जो इस्क रूहों असल।

ए बातून बका अर्स की, बीच न आवे फना अकल॥१॥

श्री राज जी तथा ब्रह्मसृष्टियों की खिल्वत में ही परमधाम का अखण्ड प्रेम (इश्क) छिपा हुआ है। परमधाम के प्रेम की यह छिपी हुई रहस्यमयी बात है, जो इस संसार की नश्वर बुद्धि से शब्दों में नहीं आ सकती।

भावार्थ- इस चौपाई में "खिलवत" शब्द से तात्पर्य केवल मूल मिलावा, तीसरी, या पाँचवीं भूमिका नहीं है। आशिक या माशूक का दिल ही एक-दूसरे के लिये खिल्वत है, जिसका आधार है निस्बत और वहदत।

निस्बत और वहदत के अन्दर ही खिल्वत छिपी हुई है।
इसे सिनगार २२/५६ में इस प्रकार प्रकट किया गया है—

ए होए न बिना निसबतिएं, इतहीं हुई वाहेदत।

निसबत वाहेदत एकै, तो क्यों दूजी कहिए खिलवत॥

सिनगार ११/२७

खिलवत निसबत वाहेदत, जेती अर्स हकीकत।

ए लज्जत हुकम सिर लेवहीं, अर्स रुहें ले हुज्जत॥

सिनगार २४/५७

श्री राजश्यामा जी तथा सखियों के बीच प्रेममयी लीला सम्पूर्ण परमधाम में ही होती है , इसलिये सम्पूर्ण परमधाम को ही खिल्वत की संज्ञा दी जा सकती है।
वर्तमान समय में सबकी बैठक मूल मिलावा में है , इसलिये मूल मिलावा को प्रायः खिल्वत शब्द से

सम्बोधित किया जाता है।

रुहें बड़ी रुह सों मिलके, बहस किया हकसों।

हम तुमारे आसिक, इस्क है हममों॥२॥

श्यामा जी तथा सभी सखियों ने मिलकर श्री राज जी से इस बात पर बहस की। उनका यही कहना था कि हे धनी! हम आपके आशिक हैं और हमारे अन्दर आपके प्रति पूर्ण इश्क है।

भावार्थ- परमधाम में होने वाली बहस संसार की बहस से सर्वथा भिन्न है। वहाँ प्रेम-विह्वल होकर ही अपने भावों की अभिव्यक्ति की जाती है, जबकि सांसारिक बहस में उग्रता का भी समावेश हो सकता है। सखियों का कहना था कि हम आपको रिझाती हैं, इसलिये आशिक हम हैं।

बड़ी रूह कहे तुम सांची सबे, पर इस्क मेरा काम।

अव्वल हक और रूहन सों, इन इस्कै में मेरा आराम॥३॥

श्यामा जी ने कहा कि सखियों! तुम सभी सत्य बोल रही हो, लेकिन इश्क करना तो पहले मेरा काम है। पहले मैं राज जी से प्रेम करती हूँ। उसके पश्चात् मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। मेरा सुख भी इश्क में ही है।

भावार्थ— यहाँ यह कहना कदापि उचित नहीं है कि श्यामा जी धनी से इश्क लेती हैं और सखियों को इश्क देती हैं। यदि ऐसा ही कथन श्यामा जी का है, तब तो इश्क का निर्णय ही हो गया। पुनः इश्क-रब्द का प्रसंग ही क्यों?

फेर जवाब रूहन को, इन बिध दिया हक।

इस्क तुमारा भले है, पर मैं तुमारा आसिक॥४॥

श्यामा जी तथा सखियों के इस कथन पर श्री राज जी ने इस प्रकार उत्तर दिया कि भले ही तुम्हारा मुझसे प्रेम है, किन्तु आशिक (प्रेम करने वाला) मैं हूँ।

हक आसिक बड़ीरुह का, और रूहों का आसिक।

ए क्यों कहिए सीधा इस्क, बन्दों का आसिक हक॥५॥

इस बात पर सखियों ने कहा कि हे धाम धनी! यह बात कैसे कही जा सकती है कि आप श्यामा जी और हम सबके आशिक हैं। जब हम सभी आपको चाहती हैं, तो इस प्रकार इश्क का यह सीधे निर्णय कैसे हो सकता है कि आप ही हमारे आशिक हैं?

भावार्थ— जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत के सत अंग हैं, उसी प्रकार श्यामा जी भी अक्षरातीत की आनन्द शक्ति (अंग) हैं। इसी कारण श्यामा जी को बड़ी रूह

कहकर सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि परमधाम की वहदत में छोटे-बड़े की भावना नहीं है, किन्तु यहाँ के शब्दों में धाम की लीला को समझने के लिये इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार इस चौपाई के चौथे चरण में "बन्दों" शब्द रूहों के लिये प्रयुक्त किया गया है। "बन्दा" शब्द के अर्थ उपासक, सेवक, इबादत करने वाला, वशीभूत आदि होते हैं। यह फारसी भाषा का शब्द है। परमधाम के इश्क और वहदत (प्रेम और एकदिली) की भूमिका में यह शब्द उपयुक्त न होते हुए भी साहिब और बन्दे के भाव में कहा गया है।

रूहों चाहिए आसिक हक के, और आसिक बड़ीरूह के।

और बड़ीरूह भी आसिक हक की, सीधा इस्क बेवरा ए॥६॥

इश्क का सीधा विवरण तो यह होना चाहिए कि हम सभी आपकी तथा श्यामा जी की आशिक हैं, क्योंकि हम आप दोनों को रिझाती हैं। इसी प्रकार श्यामा जी भी आपकी आशिक हैं।

**तुम सब रुहें मेरे तन हो, तुम सों इस्क जो मेरे दिल।
 ए क्यों कर पाओ बका मिने, जो सहूर करो सब मिल॥७॥**

सखियों की इस बात को सुनकर श्री राज जी ने उत्तर दिया कि तुम सभी अँगनायें मेरे तन हो। यदि तुम सभी मिलकर इस बात पर चिन्तन करो तो यह स्पष्ट रूप से विदित हो जायेगा कि तुम्हारे प्रति मेरे दिल में जो प्रेम है, उसका निर्णय परमधाम की इस वहदत में सम्भव नहीं है।

तब हक के दिल में उपज्या, मैं देखाऊं अपना इस्क।

और देखाऊं साहेबी, रुहें जानत नहीं मुतलक॥८॥

यह कहने के पश्चात् श्री राज जी के दिल में यह बात आयी कि निश्चित ही मेरी ये अँगनायें मेरे इश्क और साहिबी के बारे में यथार्थ रूप से नहीं जानती हैं , इसलिये मुझे अपने इश्क और साहिबी की इन्हें पहचान करानी चाहिए।

तब हक के अंग का नूर जो, जो है नूरजलाल।

तब तिनके दिल पैदा हुआ, देखों इस्क नूरजमाल॥९॥

श्री राज जी के दिल में इस प्रकार की बात के आते ही उनके नूरी सत् अंग अक्षर ब्रह्म के दिल में यह बात आ गयी कि मैं श्री राज जी की प्रेममयी लीला देखूँ।

भावार्थ- सम्पूर्ण परमधाम नूरमयी है। श्री राजश्यामा

जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, तथा सम्पूर्ण पच्चीस पक्ष नूरमयी है। जिस प्रकार आनन्द अंग श्यामा जी को श्री राज जी का नूर कहते हैं, उसी प्रकार सत् अंग अक्षर ब्रह्म को भी श्री राज जी का नूर कहते हैं।

हादी नूर है हक का, रुहें हादी अंग नूर।

सागर ४/३२

कैसा इस्क बड़ीरुह सों, कैसा इस्क साथ रुहन।

बड़ीरुह का इस्क हक सों, इस्क हक सों कैसा है सबन॥१०॥

श्री राज जी अपनी आनन्द स्वरूपा श्यामा जी तथा सखियों के साथ कैसे प्रेम करते हैं? इसी प्रकार श्यामा जी और सखियाँ अपने धाम धनी से किस प्रकार प्रेम करती हैं?

एह रब्द हमेसा रहे, बड़ी रूह रूहें और हक।

अब घट बढ़ क्यों कर जानिए, वाहेदत पूरा इस्क॥११॥

श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों के बीच में यह प्रेम विवाद (इश्क-रब्द) हमेशा ही बना रहता था। जब उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में सर्वत्र ही वहदत का इश्क है, तो किसी के इश्क को कम और किसी के इश्क को अधिक कैसे जाना जा सकता है?

असल जुदागी अर्स में, सो तो कबूं न होए।

वाहेदत इस्क घट बढ़, क्यों कर होवे दोए॥१२॥

परमधाम में वास्तविक वियोग (असल जुदायगी) कभी नहीं हो सकता। वहदत में तो किसी का प्रेम कम या किसी का अधिक हो ही नहीं सकता।

भावार्थ- अष्ट प्रहर की लीला में ऐसा भी प्रसंग आता है

जब श्री राजश्यामा जी तीसरी भूमिका की पड़साल में होते हैं, किन्तु सखियाँ वनों में होती हैं। बाह्य रूप से देखने पर लगता है कि इस समय वियोग की स्थिति है, किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं होता। वनों में रहते हुए भी सखियाँ स्वयं को श्री राज जी के सम्मुख ही अनुभव करती हैं, क्योंकि परमधाम में वियोग नाम की कल्पना भी नहीं है। इस चौपाई के पहले चरण में कथित "असल जुदागी" का यही आशय है।

वाहेदत कहिए इनको, तन मन एक इस्क।

जुदागी जरा नहीं, वाहेदत का बेसक॥१३॥

वहदत उसको कहते हैं जिसमें सबका तन, मन, और प्रेम बराबर होता है। उस वहदत में नाम मात्र के लिये भी जुदायगी नहीं होती। इसमें कोई भी संशय नहीं है।

भावार्थ- वहदत में सबके तनों का आकार , शोभा, सौन्दर्य समान होता है। सबके मन में एक ही बात होती है। इस प्रकार सबके अन्दर इश्क भी समान ही होता है।

तो बेवरा कबूं न पाइए, बीच अर्स वाहेदत।

इस्क बेवरा तो पाइए, जो कछू होए जुदागी इत॥१४॥

इसलिये परमधाम की उस वहदत में इश्क का निरूपण हो ही नहीं सकता। इश्क का विवरण (विवेचना) तो तब होता, यदि वहाँ जुदायगी की भी लीला होती।

जो इस्क वाहेदत का, ए जो किया मजकूर।

ए बेवरा क्यों पाइए, कोई होए न पल एक दूर॥१५॥

परमधाम की वहदत के जिस इश्क का वर्णन हो रहा है, उसका निर्णय वहाँ पर नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ पर

तो एक पल के लिये भी कोई किसी से दूर नहीं हो सकता।

अर्स बका में जुदागी, सुपने कबूँ न होए।

तो हक इस्क का बेवरा, क्यों पावे मोमिन कोए॥१६॥

जब परमधाम में स्वप्न में भी वियोग नहीं हो सकता, तो कोई भी ब्रह्मसृष्टि वहाँ पर श्री राज जी के इश्क का विवरण कैसे पा सकती है?

भावार्थ— पूर्वोक्त कई चौपाइयों में "बेवरा" शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका शुद्ध उच्चारण "ब्योरा" होता है। इसका अर्थ होता है— समीक्षात्मक विवेचना या निरूपण।

हकें कहया रूहन को, मैं देखाऊँ इस्क।

ए बेवरा इस्क का, तुम पाओगे बेसक॥१७॥

श्री राज जी ने रूहों से कहा कि मैं तुम्हें अपने इश्क की पहचान कराता हूँ। निश्चित रूप से अब तुम्हें यहाँ के इश्क का ब्योरा मिल जायेगा।

मैं छिपाऊं तुमको, बैठो कदम पकड़ के।

ए तुम इस्कै से पाओगे, आए मिलो मुझसे॥१८॥

मैं तुमको माया (फरामोशी) के परदे में छिपा देता हूँ। तुम मेरे चरणों को पकड़कर बैठ जाओ। जब तुम्हारे अन्दर इश्क आयेगा, तभी मुझे पुनः प्राप्त कर सकोगी।

ए इस्क तो पाइए, जो पेहेले मोको जाओ भूल।

तुम ले बैठो जुदागी, मैं भेजों तुम पर रसूल॥१९॥

उस माया के संसार में जाकर जब तुम मुझे भूल जाओगी, तब मैं तुम्हें याद दिलाने के लिये अपना

सन्देशवाहक भेजूँगा, तब तुम्हें प्रेम प्राप्त होगा।

मैं भेजों किताबत तुमको, सब इत की हकीकत।

तुम कहोगे किन खसमें, भेजी किताबत॥२०॥

परमधाम की वास्तविकता का वर्णन मैं धर्मग्रन्थों (वेद, माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, कुरआन आदि) के माध्यम से भेजूँगा। उन्हें पढ़कर भी तुम यही कहोगे कि किस प्रियतम ने ये किताबें भेजी हैं?

सो कहाँ है हमारा खसम, कैसा खेल कौन हम।

रसूल देसी तुमें साहेदियां, पर मानोगे न तुम॥२१॥

उस मायावी खेल में जाकर तुम पूछोगे कि हमारा प्रियतम कहाँ है? यह कैसा खेल है जिसमें हम आये हैं? हम कौन हैं अर्थात् हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है?

मेरे सन्देशवाहक से तुम्हें तरह-तरह की साक्षियाँ मिलेंगी, किन्तु तुम उसे स्वीकार नहीं करोगी।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि यहाँ पर रसूल किसको कहा गया है- मुहम्मद साहिब को या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को?

इसके उत्तर में मारफत सागर के प्रकरण १ चौपाई ५९, ६० देखने योग्य हैं। इसी भाव की चौपाइयाँ खिल्वत के इसी प्रकरण में भी हैं। मारफत सागर १/६० में कहा गया है-

तुम कहोगे रसूल को, हम क्यों आए कहां वतन।

मलकूत बिना कछु और है, आगे तो खाली हवा सुन॥

जिस समय अरब में मुहम्मद साहिब का प्रकटन हुआ था, उस समय वहाँ ब्रह्मसृष्टियाँ नहीं आयी थीं-

रुहें गिरो तब इत आई नहीं, तो यों करी सरत।

कह्या खुदा हम इत आवसी, फरदा रोज कयामत॥

२/२८

मारफत सागर १/६० में जो कहा गया है कि ब्रह्मसृष्टियाँ रसूल से पूछेंगी। यहाँ यह स्पष्ट है कि इस चौपाई में रसूल मात्र सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ही होंगे, क्योंकि वे उस समय प्रत्यक्ष थे।

ब्रह्मवाणी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिये है। इसमें साम्प्रदायिक कट्टरता के लिये कोई भी स्थान नहीं है। हिन्दू और मुस्लिम अपने-अपने भावों के अनुसार रसूल और मुहम्मद आदि शब्दों का प्रयोग बाह्य और आन्तरिक (जाहिरी और बातिन) अर्थों में कर सकते हैं, किन्तु मूलतः सत्य अर्थ तो परिवर्तन से रहित होता है।

कहां है हमारा वतन, कौन जिमी ए ठौर।

क्यों कर हम आए इत, बिना मलकूत है कोई और॥२२॥

तुम इस बात को बार-बार दोहराओगी कि हमारा मूल घर कहाँ है? हम जिस संसार में हैं, वह कौन सी भूमिका है? हम इस संसार में क्यों आई हैं तथा क्या वैकुण्ठ के अतिरिक्त कोई अन्य दूसरा धाम भी है?

पढ़ोगे सब साहेदियां, जो मैं लिखोंगा इसारत।

सो दिल में ल्याओगे, पर छूटेगी नहीं गफलत॥२३॥

मैं परमधाम तथा अपनी पहचान से सम्बन्धित सारी साक्षियाँ धर्मग्रन्थों में संक्षेप में लिखूँगा। उसे तुम पढ़ोगी और दिल में विचार भी करोगी, किन्तु माया की नींद को नहीं छोड़ सकोगी।

मैं लिखोंगा रमूजें, और सिखाऊंगा मेरा इलम।

तिन इलम से चीन्होगे, पर छूटे न झूठी रसम॥२४॥

मैं परमधाम की रहस्यमयी बातें संकेत में लिखूँगा और अपने तारतम ज्ञान से उनके भेद भी स्पष्ट कर दूँगा। तारतम ज्ञान के प्रकाश में तुम मुझे पहचान तो जाओगी, किन्तु कर्मकाण्ड की झूठी रस्मों को नहीं छोड़ सकोगी।

तुम जाए झूठे खेल में, कर बैठोगे जुदे जुदे घर।

मैं आए इलम देऊँ अर्स का, पर तुम जागो नहीं क्योंकर॥२५॥

तुम माया के झूठे संसार में जाकर अपना अलग-अलग घर बनाकर बैठ जाओगी। मैं तुम्हारे बीच आकर (श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में) ब्रह्मवाणी का ज्ञान दूँगा, लेकिन तुम किसी प्रकार से जाग्रत नहीं हो सकोगी।

भावार्थ- कोई ब्रह्मात्मा खेल में पुरुष तन में बैठेगी, तो

कोई स्त्री तन में। सबके अलग-अलग परिवार हो जायेंगे। दूसरे चरण का यही भाव है। बिना इश्क के धनी की शोभा दिल में विराजमान नहीं होती और आत्मा जाग्रत नहीं हो सकती। केवल ज्ञान के द्वारा जाग्रत होना सम्भव नहीं है। इस चौपाई के चौथे चरण में यही बात संकेत में दर्शायी गयी है।

मैं रूह अपनी भेजोंगा, भेख लेसी तुम माफक।

देसी अर्स की निसानियां, पर तुम चीन्ह न सको हक॥२६॥

मैं श्यामा जी को तुम्हारे साथ भेजूँगा। वे भी तुम्हारे जैसा ही तन धारण करेंगी। वे परमधाम की बातें बतायेंगी, फिर भी तुम मेरी पहचान नहीं कर सकोगी।

हादी मीठे सुकन हक के, कहेगा तुमें रोए रोए।

तुम भी सुन सुन रोएसी, पर होस में न आवे कोए॥२७॥

तुम्हें जाग्रत करने के लिये श्यामा जी मेरी और परमधाम की मीठी-मीठी बातें रो-रोकर सुनायेंगी। उसे सुन-सुन कर तुम भी रोओगी, लेकिन कोई भी माया की फरामोशी छोड़कर होश में नहीं आ सकेगी।

खेल देखोगे दुख का, याद देसी मैं ए सुख।

मैं देऊंगा सब साहेदियां, पर तुम छोड़ न सको दुख॥२८॥

वहाँ तुम माया का दुःखमयी संसार देखोगी। मैं तुम्हें ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम के अखण्ड सुखों की याद दिलाऊँगा। इसके लिये मैं सभी धर्मग्रन्थों की साक्षियाँ भी दूँगा, फिर भी तुम माया के दुःखमयी संसार को नहीं छोड़ सकोगी।

मैं तुमारे वास्ते, करोंगा कई उपाए।

ए बातें सब याद देऊँगा, जो करता हों इसदाए॥२९॥

मैं तुम्हें जाग्रत करने के लिये अनेक उपाय करूँगा और तुम्हें इन बातों की याद भी दिलाऊँगा, जो अभी कर रहा हूँ।

भावार्थ— आत्म-जाग्रति के लिये ईमान और इश्क (अटूट विश्वास और प्रेम) अनिवार्य है। ईमान के लिये ब्रह्मवाणी का ज्ञान चाहिए तथा प्रेम के लिये विरह चाहिए। सांसारिक दुःखों में फँस जाने पर संसार से मोह हटता है और धनी के प्रति विरह जाग्रत होता है। ज्ञान देने के लिये किसी न किसी बहाने सुन्दरसाथ को एकत्रित करना पड़ता है। इसे ही कहा गया है— अनेकों प्रकार के उपाय करना।

क्यों ऐसी हम से होगी, क्या हम जुदे होसी माहें खेल।

ऐसी अकल क्यों होएसी, ए कैसी है कदर-लैल॥३०॥

श्री राज जी के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर सखियों ने कहा – हे धाम धनी! वह कैसी माया की अज्ञानमयी रात्रि है। उसमें हमसे इस प्रकार की भूलें क्यों होंगी? क्या उस संसार में हम आपसे तथा आपस में भी एक-दूसरे से जुदा हो जायेंगी? इस प्रकार हमारी बुद्धि उल्टी क्यों हो जायेगी?

दूर तो करोगे नहीं, कदम तले बैठे हक।

हम फेरें तुमारा फुरमाया, ऐसे लूखे होसी मुतलक॥३१॥

हे धनी! जब हम यहाँ पर आपके चरणों में बैठी हैं, तो यह निश्चित है कि आप हमें अपने चरणों से अलग नहीं करेंगे। क्या उस संसार में हम इतने रूखे दिल वाली हो

जायेंगी कि आपके आदेशों का भी उल्लंघन करेंगी?

तुम बिना हम कबहूँ, रहे ना सकें एक दम।

क्यों होसीं हम नादान, जो ऐसा करें जुलम॥३२॥

उस मायावी जगत में भी हम आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकेंगी। क्या हम इतनी नादान (नासमझ) हो जायेंगी, जो आपको भूल जाने जैसा अपराध करेंगी?

भावार्थ- यद्यपि "जुल्म" शब्द का अर्थ अत्याचार होता है, किन्तु इस चौपाई में "जुलम" शब्द के प्रयोग करने का कारण यह है कि धनी को पीठ देना अपने आत्मिक सम्बन्धों पर अत्याचार करने की तरह है, जो महानतम् अपराध है।

जैसा साहेब केहेत हो, ऐसी कबूँ हमसे न होए।

सौ बेर देखो अजमाए के, ऐसी मोमिन करे न कोए॥३३॥

हे प्राण प्रियतम! हम उस तरह की भूल कभी भी नहीं करेंगी, जिस तरह की आप कह रहे हैं। आप सौ बार भी यदि हमारी परीक्षा लेकर देखिए, तो भी हम इस प्रकार का अपराध (गुनाह) कभी नहीं करेंगी।

आप भूलें या हक कदम, या भूलें अर्स घर।

ऐसी निपट नादानी, हम करें क्यों कर॥३४॥

उस मायावी जगत में भला इस तरह की कोरी नादानी हम क्यों करेंगी कि हम स्वयं को ही भूल जायें, आप के चरणों को भूल जायें, तथा अपने परमधाम को भी भूल जायें?

रुहों ऐसी आई दिल में, कोई खेल है खूबतर।

खेल देख हक वतन, आप जासी बिसर।।३५।।

सखियों के दिल में यह बात आ गयी कि लगता है यह कोई बहुत ही सुन्दर खेल है, जिसे देखने पर हम अपने प्राणवल्लभ श्री राज जी को, परमधाम को, तथा स्वयं को भी भूल जायेंगी।

ए जेती हुई रद-बदलें, त्यों त्यों खेल दिल चाहे।

फेर फेर मांगे खेल को, कोई ऐसी बनी जो आए।।३६।।

इस सम्बन्ध में जितनी ही अधिक बातें हुई, श्री राज जी की प्रेरणा से सखियों के दिल में खेल देखने की इच्छा और अधिक बढ़ती गयी। कुछ बात ही ऐसी बन गयी कि वे धाम धनी से बार-बार खेल की माँग करने लगीं।

ना तो जो बात आखिर होएसी, सो रबें आगूं दर्ई बताए।
 कहया खेल जुदागी दुख का, तुम मांगत हो चित ल्याए॥३७॥
 अन्यथा खेल में जो बातें होनी थीं, वह राज जी ने
 पहले ही बता दी थीं कि माया के जिस खेल को तुम
 इतनी चाहना से माँग रही हो, उसमें तुम वियोग का दुःख
 देखोगी।

हक आप सांचे होने को, सब विध कही सुभान।
 त्यों त्यों दिल ज्यादा चाहे, वास्ते करने ऊपर एहेसान॥३८॥
 धाम धनी ने अपने प्रेम को सच्चा सिद्ध करने के लिये
 तथा अपना अहसान जताने के लिये सखियों को हर
 तरह से समझाया कि तुम खेल की माँग न करो किन्तु,
 जितना ही अधिक उन्होंने समझाया, धनी की प्रेरणा से
 उनके अन्दर उतनी ही अधिक खेल देखने की इच्छा

बढ़ती गयी।

भावार्थ- आशिक अपने माशूक से दिल की कोई भी बात नहीं छिपाता तथा उसके ऊपर पूर्णतया समर्पित रहता है। वह माशूक को जरा भी दुःखी नहीं देख सकता। इस चौपाई के पहले चरण में यही बात दर्शाने के लिये "सांचे" शब्द का प्रयोग किया गया है, ताकि कोई यह न कह सके कि धाम धनी माया की वास्तविकता तो अच्छी तरह से जानते थे, तब हमें क्यों नहीं रोक दिया? धनी ने बार-बार रोक कर यह भी अहसान कर दिया कि मैंने तो तुम्हें मना किया था, तुम ही नहीं मानीं।

मिनोँ मिने करें हुसियारियां, हक खेल देखावें जुदागी।

एक कहे दूजी को मुख थें, रहिए लपटाए अंग लागी॥३९॥

सखियाँ आपस में एक-दूसरे को सावधान करने लगीं

और कहने लगीं कि धाम धनी अब हमें जुदायगी का खेल दिखाने जा रहे हैं, इसलिये हमें आपस में लिपटकर बैठ जाना चाहिए, ताकि हम माया के खेल में बिछुड़े नहीं।

क्यों हम जुदे होएसी, एक दूजी को छोड़ें नाहें।

क्यों भूलें हम हक को, बैठे खिलवत के माहें॥४०॥

जब हम यहाँ पर एक-दूसरे को पकड़कर बैठी हैं और छोड़ नहीं रही हैं, तो माया में जाने पर भला कैसे छोड़ देंगी? जब हम इस मूल मिलावा में साक्षात् धनी के सम्मुख बैठी हैं, तो यह कैसे सम्भव है कि माया में हम अपने प्रियतम को ही भुला देंगी?

हक कहे तुम भूलोगे, आप बैठे बका में जित।

मुझे भी तुम भूलोगे, ऐसा खेल देखोगे बैठे इत॥४१॥

उनकी इस बात को सुनकर श्री राज जी ने कहा कि तुम इस परमधाम में बैठे-बैठे माया का ऐसा खेल देखोगी कि स्वयं को तो तुम भूलोगी ही, मुझे भी भूल जाओगी।

ऐसी क्यों होवे हमसे, ऐसे क्यों होवें बेसुध हम।

खेल फरेब लाख देखिए, पर क्यों भूलिए इन खसम॥४२॥

श्री राज जी की इस बात को सुनकर सखियाँ कहने लगीं कि हे धाम धनी! हम इतनी बेसुध क्यों हो जायेंगी कि हमसे इतनी बड़ी भूल हो जाये? हम इस बारे में पूरी तरह से दृढ़ हैं कि यदि हम माया के लाखों खेल देखें, तो भी आपको किसी भी स्थिति में नहीं भूलेंगी।

एक दूजी कहे रूहन को, तुम हूजो खबरदार।

खेल देखावें फरामोस का, जिन भूलो परवरदिगार॥४३॥

यह कहकर सखियाँ आपस में एक-दूसरे को सम्बोधित करके कहने लगीं कि अब हमें बिल्कुल सावधान हो जाना है। प्राण प्रियतम अक्षरातीत हमें माया का खेल दिखाने जा रहे हैं। हमें उन्हें भूलना नहीं है।

जो तूं भूले मैं तुझको, देऊंगी तुरत जगाए।

मैं भूलों तो तूं मुझे, पल में दीजे बताए॥४४॥

यदि माया में जाने के बाद तू भूल जायेगी तो मैं तुम्हें बहुत शीघ्र जगा दूँगी और यदि मैं भूल जाऊँ तो तुम मुझे पल भर में ही सारी पहचान बता देना।

भावार्थ- उमंग, प्रेम, या सावधानी की अधिकता की स्थिति में "तुरन्त जगा देने" या "पल भर में सारी बातें

बता देने" की बातें कही जाती हैं। इस तरह की भाषा आलंकारिक है।

इन विध एक दूजी सों, मसलहत करी सबन।

क्या करसी खेल फरेब का, आपन मोमिन सब एक तन॥४५॥

इस प्रकार सभी ने एक-दूसरे से विचार-विमर्श किया और यही निर्णय किया कि जब हम सभी अँगनायें एक ही धनी के तन हैं अर्थात् एक स्वरूप हैं, तो भला माया का वह झूठा खेल हमारा क्या बिगाड़ लेगा?

सो क्यों भूलें ए सैयां, जो आगूं होवें खबरदार।

खेल देखावे चेतन कर, सो भूले नहीं निरधार॥४६॥

यदि हम सभी अँगनायें पहले से ही सावधान हो जाती हैं, तो माया में हम कदापि नहीं भूलेंगी। धाम धनी ने जब

हमें खेल दिखाने से पहले ही सावधान कर दिया है, तो यह निश्चित है कि हम किसी भी स्थिति में अपने धाम धनी को, निज घर को, एवं स्वयं को नहीं भूलेंगी।

सो भूलेंगे क्यों कर, इस्क जिनको होए।

एक पाव पल जुदागीय का, क्यों कर सेहेवें सोए॥४७॥

वे अँगनायें, जिनके अन्दर धनी का इश्क होगा, भला माया में कैसे भूल सकती हैं? वे तो एक पल के चौथाई हिस्से के लिए भी अपने धनी का वियोग नहीं सहन कर सकतीं।

इस्क सबों रूहों पूरन, वाहेदत का मुतलक।

क्यों जरा पैठे जुदागी, बीच रूहों हादी हक॥४८॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों में एकदिली (वहदत) का पूर्ण

इश्क भरा है। ऐसी स्थिति में यह सम्भव ही नहीं है कि श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों के बीच जुदाई की लीला हो।

**ए बोहोत रब्द बीच अर्स के, रूहों हक सों हुआ मजकूर।
अर्स बका के हजूरी, ए क्यों होवें हक सों दूर॥४९॥**

इस प्रकार परमधाम में श्री राज जी और सखियों के बीच इश्क-रब्द से सम्बन्धित बहुत सी बातें हुईं। उस वार्ता का मूल विषय यही था कि परमधाम में पल-पल धनी के आनन्द में डूबी रहने वाली अँगनायें अपने प्राण प्रियतम से अलग क्यों हो जायेंगी?

**इस्क का अर्स अजीम में, रब्द हुआ बिलंद।
तो फरामोसी में इस्क का, बेवरा देखाया खावंद॥५०॥**

जब परमधाम में इश्क-रब्द अपने चरम (पराकाष्ठा) पर पहुँच गया, तो धाम धनी ने माया के इस ब्रह्माण्ड में इश्क का ब्योरा (विवरण) दिखाया।

भावार्थ- श्री राज जी के दिल में जब खेल दिखाने की बात थी, तो सखियों के द्वारा खेल की माँग करना स्वाभाविक था। धनी की ही प्रेरणा (हुक्म) से यह माँग बढ़ती गयी, जिसे बिलन्द (चरम, अन्तिम सीमा) कहकर सम्बोधित किया गया है। इसे सांसारिक विवाद की पराकाष्ठा नहीं समझना चाहिए।

आप बैठे दिल देय के, ऊपर बारे हजार।

फरामोसी हांसी होएसी, जिनको नहीं सुमार॥५१॥

बहुत प्रेम से माया का खेल दिखाने के लिये अक्षरातीत अपनी बारह हजार अँगनाओं के बीच बैठ गये। इस माया

के खेल में सभी की ऐसी हँसी होनी है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में बारह हजार के ऊपर बैठने का भाव बीच में बैठने से है।

हक बैठे खेल देखावने, जिन फरामोसी हँसी होए।

इस्क हक का आवे दिल में, ए फरामोसी हांसी जाने सोए॥५२॥

धाम धनी माया का खेल दिखाने के लिये मूल मिलावा में सिंहासन पर विराजमान हो गये। सखियाँ भी इस बात के लिये सतर्क हो गयीं कि माया में उनकी हँसी न हो। इस मायावी जगत में होने वाली हँसी को वही आत्मा जान सकती है, जिसके दिल में धनी का इश्क आ गया हो।

भावार्थ- जिस प्रकार विषयों में फँसा हुआ व्यक्ति

विषयों के दुष्परिणाम को नहीं जानता , किन्तु यदि वह जितेन्द्रियत्व को प्राप्त कर लेता है तो उसे विषयों में लिप्त होना तो दूर उसके बारे में सोचना भी बहुत बुरा लगता है, क्योंकि वह उसके दुष्परिणामों से पूरी तरह अवगत हो चुका होता है।

ठीक इसी प्रकार माया में फँसा हुआ सुन्दरसाथ माया में होने वाले गुनाहों की हँसी से पूरी तरह चिन्तित नहीं होता, किन्तु यदि उसके अन्दर धनी का प्रेम आ जाये और उसकी आत्मा जाग्रत हो जाये तो वह संसार को दृष्टा होकर देखता है। ऐसा ही सुन्दरसाथ फरामोशी की हँसी को यथार्थ रूप में जानता है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

तिन वास्ते हकें पैदा किया, दई दूर जुदागी जोर।

और नजीक बैठाए सेहेरग से, यों देखाया खेल मरोर॥५३॥

इसलिये धाम धनी ने अपने आदेश से इस मायावी खेल को बनाया। संसार रूपी इस खेल में ब्रह्मसृष्टियाँ दूर-दूर पड़ी हुई हैं और बहुत अधिक वियोग का अनुभव कर रही हैं। प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी अँगनाओं को ऐसा रहस्य भरा खेल दिखाया है, जिसमें बाह्य रूप से तो बहुत दूर कर दिया है, किन्तु दिल में प्राणनली से भी अधिक निकट बैठे हैं और परमधाम में भी बिल्कुल सामने बैठे हैं पर दिखायी नहीं देते।

भावार्थ— इस चौपाई के तीसरे चरण में यह बात आलंकारिक रूप से समझायी गयी है कि जिस प्रकार इस संसार में प्राणनली से भी अधिक निकट श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं होता , उसी प्रकार

उतनी ही निकटता से हमारे मूल तनों को अपनी नजरों के सामने चरणों में बिठा रखा है।

अर्स बका बीच ब्रह्मांड के, चौदे तबकों में सुध नाहें।

किया सेहेरग से नजीक, गिरो बैठी बका माहें॥५४॥

चौदह लोकों के इस स्वप्नवत् ब्रह्माण्ड में किसी को भी आज दिन तक अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं था। उस परमधाम में सखियाँ धनी के चरणों में बैठी हैं। ब्रह्मवाणी के द्वारा धाम धनी ने सुन्दरसाथ को यह अनुभव करा दिया कि वह अनन्त परमधाम हमारी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट है।

दिया बीच ब्रह्मांड जुदागी, अजूं इनसे भी दूर दूर।

निपट दई ऐसी नजीकी, बैठे अंग सों लाग हजूर॥५५॥

इस समय इस ब्रह्माण्ड में धाम धनी ने सखियों की सुरताओं को भेजा है। वे एक-दूसरे से बहुत दूर-दूर होकर वियोग का अनुभव कर रही हैं। मूल मिलावा में तो धनी ने सखियों को इतना निकट बैठा रखा है कि वे धनी के सम्मुख गले में बाहें डालकर एकरूप होकर बैठी हैं।

भावार्थ- सखियाँ धनी के सम्मुख इस प्रकार सट-सट कर बैठी हैं कि लगता ही नहीं है कि बारह हजार बैठी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल एक ही सखी बैठी है। वे अपनी खुली आँखों से धनी की ओर देख तो रही हैं, किन्तु उनकी सुरता माया का दृश्य देख रही है। परात्म के तनों को श्री राज जी सामने होते हुए भी नहीं दिखायी पड़ रहे हैं, जबकि उनकी सुरता संसार को देख रही है। इस सम्बन्ध में सागर ग्रन्थ २/९ में कहा गया है-

ए मेला बैठा एक होए के, रूहें एक दूजी को लाग।

आवे न निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग॥

ऐसा बुजरक खेल देखाया, ऐसा न देख्या कब।

ए बातें हाँसी फरामोसी की, करसी इस्क ले अब॥५६॥

धाम धनी ने हमें इतना गौरवशाली खेल दिखाया है, जो आज तक कभी भी नहीं देखा था। इस माया के ब्रह्माण्ड में हमसे होने वाली भूलों की हाँसी की बातें परमधाम में उस समय होंगी, जब हम परमधाम में जाग्रत होंगे और हमें पहले वाला इश्क मिल जायेगा।

फरामोसी दर्ई जिन वास्ते, हाँसी भी वास्ते इन।

इस्क ले ले हँससी, कयामत बखत मोमिन॥५७॥

धाम धनी ने हमें फरामोशी में इसलिये डाला , ताकि इश्क का ब्योरा हो सके। सभी की हँसी भी इसी बात के लिये होनी है। कियामत के समय में ब्रह्मसृष्टियाँ इश्क पाने के बाद खूब हँसेंगी।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि ब्रह्मसृष्टियों को इश्क कब मिलेगा? कियामत कहाँ होनी है- इस संसार में या परमधाम में?

स्वरूप की कायमी योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगी। ब्रह्मसृष्टियों के जीव योगमाया के ब्रह्माण्ड में ब्रह्मसृष्टियों जैसा ही रूप धारण कर लेंगे। उस समय सभी आत्मायें परमधाम में अपने मूल परात्म के तनों में जाग्रत हो जायेंगी। वहाँ सबके पास समान इश्क होगा और सभी यहाँ की भूलों को याद करके खूब हँसी करेंगी।

ज्ञान द्वारा होने वाली कियामत तो इस संसार में ही

होगी, जिसके बारे में कहा गया है कि "कह्या खुदा हम
इत आवसी, फरदा रोज कयामत।" इस लीला में आगे-
पीछे इश्क मिलेगा-

कोई आगे पीछे अक्वल, इस्क लेसी सब कोए।

पेहेले इस्क जिन लिया, सोई सोहागिन होए॥

खिलवत १६/११५

उस इश्क को लेकर जो भी सुन्दरसाथ आत्म-जाग्रति
की अवस्था को प्राप्त करेंगे अर्थात् "इतही बैठे घर जागे
धाम" के कथन को चरितार्थ कर लेंगे, वे भी अपने
अतीत की भूलों तथा दूसरे सुन्दरसाथ की भूलों को याद
कर मन ही मन हँसी कर सकते हैं।

ए बातें हुई सब अर्स में, रूहें बड़ीरूह हक साथ।

सो ए खेल पैदा हुआ, काहूँ हाथ न सूझे हाथ॥५८॥

श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों के बीच में इश्क-रब्द की ये सारी बातें हुईं। इस प्रकार धाम धनी के आदेश से माया का यह खेल बना है, जिसमें एक हाथ को दूसरे हाथ का पता नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में "हाथ न सूझे हाथ" एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय होता है- अज्ञानता का ऐसा अन्धकार फैल जाना जिसमें पास में खड़े व्यक्ति की पहचान न हो सके, अर्थात् एक ब्रह्मसृष्टि को अपने साथ-साथ रहने वाली ब्रह्मसृष्टि की जरा भी पहचान न हो पाये।

कई जातें कई जिनसें, कई फिरके मजहब।

भेख भाखा सब जुदियां, हक को ढूँढ़ें सब॥५९॥

इस संसार में अनेक प्रकार की जातियाँ हैं। अनेक तरह

की वस्तुएँ हैं। अनेक मत-पन्थ हैं। सभी स्थान के लोगों की वेश-भूषा और भाषा अलग-अलग है, फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि सृष्टि के सभी लोग उसी परब्रह्म की खोज में लगे हुए हैं?

ढूँढ ढूँढ सब जुदे परे, हक न पाया किन।

अव्वल बीच और आखिर लों, किन पाया न बका वतन॥६०॥

इस संसार में लोग सच्चिदानन्द परब्रह्म को खोज – खोजकर थक गये, लेकिन किसी को भी परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हुआ। जब से सृष्टि उत्पन्न होने की प्रक्रिया शुरू हुई है, तबसे लेकर मध्य काल और आज दिन तक किसी को भी अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं हो सका था।

रसमें सबों जुदी लई, माहों-माहें कई लरत।

आप बड़े सब कहावहीं, पानी पत्थर आग पूजत॥६१॥

इस संसार में अलग-अलग समुदायों, मतों, और पन्थों के अलग-अलग रीति-रिवाज हैं। उनमें छोटी-छोटी बातों के लिये ही काफी लोग आपस में लड़ते रहते हैं। वैसे तो सभी अपने को बड़ा (श्रेष्ठ) कहते हैं, किन्तु पानी, अग्नि, और पत्थरों की पूजा करते हैं।

भावार्थ- संसार के अधिकतर मतानुयायी पत्थरों की पूजा में लगे हुए हैं। पौराणिक हिन्दू जहाँ पत्थरों की मूर्तियों की पूजा करते हैं, वहीं मुसलमान लोग "संगे असवद" को चूमते हैं। इसी प्रकार निराकारवादी विचारधारा वाले लोग भी अपने गुरुजनों की समाधियों की पूजा करते हैं। इस प्रकार नदियों में बहने वाले जल की भी पूजा करने की परम्परा है।

पौराणिक मान्यता में यही माना जाता है कि अग्नि एक देवता है और अग्नि में आहुति डालने से यज्ञ -देवता प्रकट होकर दर्शन देते हैं और मनोकामना पूर्ण करते हैं। इस प्रकार यह अग्नि-पूजा है, किन्तु वेदों के आधार पर यह माना जाता है कि वेद में अग्नि शब्द का अर्थ ज्ञान स्वरूप परब्रह्म होता है, जो अग्नि सूक्त के मन्त्रों में लिखित है। इसी प्रकार ऋग्वेद के पहले मन्त्र में " अग्निं इडे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजं" में भी ज्ञान स्वरूप परमात्मा को ही अग्नि शब्द से सम्बोधित किया गया है। जड़ अग्नि से उपास्य के स्तर पर यदि हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है, तो यह अग्नि-पूजा नहीं है। वैदिक विचारधारा के अनुसार अग्नि में आहुति देने का अर्थ होता है- वायुमण्डल को स्वच्छ करना, न कि किसी काल्पनिक देवता को प्रसन्न करना।

ए ऐसा खेल अंधेर का, सब कहें हम बुजरक।

पर हक सुध काहू में नहीं, छूटी न सुभे सक॥६२॥

अज्ञानता के अन्धकार का यह ऐसा खेल है, जिसमें प्रायः सभी कहते हैं कि एकमात्र हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं , किन्तु इनमें से किसी को भी सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान नहीं है। जीवन की अन्तिम घड़ी तक उनके संशयों का पूर्ण रूप से निवारण (समापन) नहीं हो सका।

काहूं तरफ न पाई अर्स की, कहावत हैं दीनदार।

डूबे सब अपनी स्यानपे, जात हाथ पटक सिर मार॥६३॥

यद्यपि संसार के लोग स्वयं को धर्मनिष्ठ कहते हैं, किन्तु इनमें से किसी को भी अखण्ड परमधाम की स्थिति का बोध नहीं हो सका था। ये अपनी बौद्धिक चतुराई में ही

फँसे रहे (डूबते रहे) हैं। अन्ततोगत्वा संसार छोड़ते समय ये लोग प्रायश्चित के रूप में या तो अपने हाथों को जमीन पर पटकते हैं या अपने सिर को दीवारों से टकराते हैं।

भावार्थ- हाथ पटकना या सिर मारना मुहावरा है, जिसमें आलंकारिक भाषा में प्रायश्चित की उग्रता को दर्शाया गया है। सारी उम्र परब्रह्म से दूर रहकर मृत्यु के समय प्रायश्चित करने की जो व्याकुलता होती है, उसे इस चौपाई में चित्रित किया गया है।

ऐसे में आए रसूल, हाथ लिए फुरमान।

फैलाया नूर आलम में, वास्ते मोमिनों पेहेचान॥६४॥

संसार की इस विकट स्थिति में मुहम्मद साहिब कुरआन का ज्ञान लेकर आए। कियामत के समय

(बारहवीं सदी) में ब्रह्ममुनियों को परब्रह्म तथा परमधाम की पहचान देने के लिये, उन्होंने सारे संसार में कुरआन का ज्ञान फैलाया।

आगूं आए खबर दर्ई, आखिर आवेगा साहेब।

रूहअल्ला इमाम उमत, होसी नाजी-मजहब॥६५॥

उन्होंने ग्यारह सौ वर्ष पहले ही आकर सबको यह सूचना दे दी कि कियामत के समय स्वयं खुदा का स्वरूप आयेगा। उस समय श्यामा जी (रूह अल्लाह), श्री प्राणनाथ जी (आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमाँ), और ब्रह्ममुनि (मोमिन) प्रकट होंगे, तथा सबको मुक्ति देने वाले पन्थ श्री निजानन्द सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव होगा।

पुकार करी सबन में, कहया आवेगा सुभान।

हिसाब ले भिस्त देयसी, ठौर हक बका पेहेचान॥६६॥

मुहम्मद साहिब ने पुकार-पुकार कर यह बात कही कि कियामत के समय स्वयं खुदा का ही स्वरूप आयेगा। वे सबको अक्षरातीत तथा परमधाम की पहचान करायेंगे और उनके कर्मों के अनुसार सच्चा न्याय करके बहिश्तों की अखण्ड मुक्ति देंगे।

ऐसा खेल पैदा हुआ, और सोई आए मोमिन।

सोई खेल देखे पीछे, भूल गए आप वतन॥६७॥

धनी के आदेश से यह मायावी जगत् उत्पन्न हुआ, जिसमें परमधाम के ब्रह्ममुनियों का अवतरण हुआ। इस माया के खेल में वे ऐसे फँस गये कि वे स्वयं को तथा परमधाम को भी भूल गये।

और भूले खसम को, गए खेल में रल।

कोई सुध बका की न देवहीं, जो कायम अर्स असल॥६८॥

परमधाम के वे ब्रह्ममुनि इस मायावी खेल में इतने मस्त हो गए हैं कि अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत को भी भूल गये। यह माया का ऐसा संसार है, जिसमें इस बात की सुध देने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं है कि शाश्वत एवं सर्वोपरि परमधाम कहाँ है?

बैठे ख्वाब जिमीय में, और दिल पर सैतान पातसाह।

नसल आदम हवाई, जो मारे खुदाई राह॥६९॥

ब्रह्ममुनि इस मायावी जगत् में आये हैं। यहाँ के प्राणियों के दिल में अज्ञान (शैतान, इब्लीश) का शासन है। आदम और हव्वा से पैदा होने वाली मानवी सृष्टि को यह शैतान (अज्ञान) परमात्मा की राह पर नहीं जाने देता है।

भावार्थ- आदम-हव्वा को भी बहिश्त से निकलवाने वाला इब्लीश ही है। कतेब परम्परा में सम्पूर्ण मानव जाति आदम और हव्वा (मनु और श्रद्धा) की सन्तान कही जाती है। वस्तुतः इब्लीश (शैतान या दज्जाल) कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि वह अज्ञान रूपी राक्षस ही है जो जीव को अपने अधीन करके माया में भटकाता रहता है।

मोमिन आए इन नसल में, जित हक न सुन्या कान।

तिन जिमी क्यों पावें मोमिन, कायम अर्स सुभान॥७०॥

ब्रह्मसृष्टियाँ ऐसे मानव तनों में आयी हैं, जिन्होंने कभी अक्षरातीत परब्रह्म का नाम सुना ही नहीं है। ऐसे झूठे संसार में ब्रह्ममुनि अपने अखण्ड परमधाम तथा धाम धनी को भला तारतम ज्ञान के बिना कैसे पा सकते हैं?

भावार्थ- यदि संसार के सभी मत-पन्थों का

अवलोकन किया जाये, तो उनमें लगभग ९५ प्रतिशत अनुयायी अक्षरातीत के बारे में कुछ भी नहीं जानते। धर्मग्रन्थों के आधार पर ५ प्रतिशत लोग इन शब्दों को पढ़ते तो हैं, लेकिन तारतम ज्ञान न होने से अक्षरातीत की उन्हें यथार्थ पहचान नहीं है।

मोमिन आए जुदे जुदे, जुदी जातें जुदी खेस।

जुदे मुलक मजहब जुदे, जुदी बोली जुदे भेस॥७१॥

ब्रह्ममुनि ऐसे संसार में अलग-अलग होकर आये हैं, जिसमें अलग-अलग जातियाँ हैं। उनके आचार-विचार भी अलग-अलग हैं। वे अलग-अलग देशों तथा धर्मों में आए हैं, जिनकी भाषा तथा वेश-भूषा भी अलग-अलग है।

भावार्थ- इस चौपाई के कथन से यह सिद्ध होता है कि

ब्रह्मवाणी मात्र किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये नहीं है ,
बल्कि इसकी अमृतधारा सम्पूर्ण मानव मात्र के लिये है।
वाणी की ज्ञान दृष्टि में किसी देश , स्थान, जाति, धर्म,
और सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है।

चौदे तबक की दुनी को, काहू खबर खुदा की नाहें।

ऐसे किए मोहोरे खेल के, ए भी मिल गए तिन माहें॥७२॥

चौदह लोक के इस संसार में किसी को भी अक्षरातीत
की पहचान नहीं थी। नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, और शिव
इस मायावी खेल में अग्रगण्य हैं। माया में भूलकर
ब्रह्ममुनि भी इनकी पूजा करने वालों में शामिल हो गये।

दुनियां चौदे तबक में, काहू खोली नहीं किताब।

साहेब जमाने का खोलसी, एही सिर खिताब॥७३॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आज तक किसी ने भी धर्मग्रन्थों (वेद-कुरआन) के गूढ़ भेद नहीं खोले थे। तारतम ज्ञान द्वारा इनके भेदों को स्पष्ट करने की शोभा तो मात्र श्री प्राणनाथ जी को है, जो इस युग में सर्वेश्वर हैं।

कुंजी ल्याए रुहअल्ला, दर्ई हाथ इमाम।

सो गिरो मोमिनों मिलाए के, करसी सिजदा तमाम॥७४॥

श्यामा जी तारतम ज्ञान रूपी कुंजी लेकर इस संसार में आयीं और उन्होंने उसे श्री प्राणनाथ जी (आखरूल इमाम) को दिया। वे ब्रह्मसृष्टियों को एकत्रित करके मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप के चरणों का ध्यान करायेंगे (सिज्दा करायेंगे)।

भावार्थ— कुरआन-हदीसों के अनुसार इमाम का

स्वरूप वह है, जिसमें अल्लाह तआला के जोश और आवेश की लीला होगी। इस चौपाई के अर्थ में जो "श्री प्राणनाथ जी" शब्द का प्रयोग हुआ, वह भी इसी "ब्रह्मविदो ब्रह्मेव भवति" के भाव के आधार पर हुआ है। जो भाव महामति प्राणनाथ का है, वही भाव इमाम महदी का है। इसमें महामति महदी और श्री प्राणनाथ जी इमाम कहे जायेंगे। इमाम महदी के इस स्वरूप द्वारा सभी को अक्षरातीत के मूल स्वरूप में ध्यानस्थ किया जायेगा। इसे ही कुरआन की भाषा में सिज्दा करना कहा गया है। बाईबल में इसको ही दूसरे शब्दों में कहा गया है – He will persuade many of a few to turn to the Lord his God.

पुराण संहिता इसे ही दूसरे शब्दों में ऐसे व्यक्त करती है—

अगाधाज्ञान जलधौ पतितासु प्रियासु च।

स्वयं कृपाम्भोधौ ममज्ज पुरुषोत्तमः॥ पु. सं. ३१/५०

सो अग्यारै सदी मिने, होसी जाहेर हकीकत।

हादी मोमिन जानसी, हक की इसारत॥७५॥

इस प्रकार ग्यारहवीं सदी में वास्तविक सत्य ज्ञान प्रकट होगा। उस समय धर्मग्रन्थों में परब्रह्म की छिपी हुई पहचान को श्री महामति जी और सुन्दरसाथ ग्रहण कर लेंगे।

अव्वल करी बातें अर्स में, वास्ते मोमिनो न्यामत।

कुन्जी खिताब सबे ल्याए, सोई फुरमान ल्याए इत॥७६॥

श्री राज जी ने इश्क-रब्द के प्रारम्भ में ही ब्रह्मसृष्टियों

को न्यामतें देने की बात कही थी। इसलिये उन्होंने श्यामा जी को पहले जामे में तारतम ज्ञान लाने की तथा दूसरे जामे के द्वारा धर्मग्रन्थों के रहस्यों को खोलने और ब्रह्मवाणी के अवतरण की शोभा दी।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "अव्वल" शब्द वही है, जो मारिफत सागर की पहली चौपाई है—

पहले कहूँ अव्वल की, हक हादी हुकम।

मोमिन दिल अरस में, हकें धरे कदम॥

यहाँ यह स्पष्ट है कि बशरी सूरत के द्वारा धनी से वार्ता का प्रसंग नहीं है। इसी प्रकार चौथे चरण में "फुरमान" शब्द धनी के आदेश से अवतरित ब्रह्मवाणी के लिये प्रयुक्त हुआ है। किरन्तन ५९/८ में कहा है—

साहेब के हुकमें ए, बानी गावत हैं महामत।

सो मिली जमात रूहन की, जिन वास्ते किया खेल।

सो हक भी आए इन बीच में, सो कहे वचन माहें लैल॥७७॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों को दिखाने के लिये यह संसार बनाया गया, वे ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप के प्रकाश में एकत्रित होने लगीं। खेल दिखाने वाले स्वयं अक्षरातीत भी सुन्दरसाथ के बीच श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में आये हैं और इस संसार में परमधाम का अलौकिक ज्ञान दे रहे हैं।

लैल गई पुकारते, आया बख़्त फजर।

ए अग्यारै सदी पूरन, तब खुली रूहों नजर॥७८॥

ब्रह्मवाणी के उजाले में अब अज्ञानता की रात बीत गयी है। अब तो परमधाम के ज्ञान से प्रातःकाल का समय हो गया है। ग्यारहवीं सदी के पूर्ण होने पर ब्रह्मसृष्टियों की

आत्मिक दृष्टि खुल गयी।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण का यह भाव कदापि नहीं समझना चाहिए कि रात्रि का तीसरा भाग बीत गया है। ब्रज, रास, और जागनी लैल-तुल-कद्र की रात्रि के तीन हिस्से हैं। छठे दिन की लीला भी जागनी लीला के अन्तर्गत ही मानी जायेगी। जागनी के ब्रह्माण्ड में श्यामा जी के पहले तन से होनी वाली लीला में रात्रि का अन्धकार बना रहा , किन्तु दूसरे तन में ब्रह्मवाणी के अवतरण के साथ ही प्रातःकाल का उजाला फैल गया।

वि.सं. १७४५ में ग्यारहवीं सदी पूर्ण हो जाती है। इसके पश्चात् सागर तथा श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण से सुन्दरसाथ की आत्मिक दृष्टि जाग्रत हो गयी और उन्होंने युगल स्वरूप तथा अपनी परात्म का साक्षात्कार किया।

ए बुजरकी इस्क की, अबलों न जानी किन।

और मोहोरे सब खेल के, क्यों जाने बिना मोमिन॥७९॥

आज तक किसी ने भी इश्क (अनन्य प्रेम) की गरिमा को नहीं जाना था। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी इसे नहीं जान सकता था, भले ही इस खेल के अग्रगण्य नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि ही क्यों न हों?

सो फरामोसी मोमिन को, हकें दर्ई बनाए।

और हक जगावें ऊपर से, बिना इस्क न उठयो जाए॥८०॥

ब्रह्ममुनियों को अपने इश्क की पहचान देने के लिये ही धाम धनी ने उन्हें माया की नींद (फरामोशी) में डाला। वे तारतम ज्ञान द्वारा ऊपर से जगा रहे हैं, किन्तु जब तक दिल में इश्क न हो तब तक आत्मा के जाग्रत होने

का प्रश्न ही नहीं है।

भावार्थ- शब्दों में निहित ज्ञान को कण्ठस्थ कर लेने मात्र से ही आत्म-जाग्रति नहीं होती। जब तक प्रेम नहीं आएगा, तब तक न तो आत्म-चक्षुओं से प्रियतम का दीदार होगा और न ही आत्मा जाग्रत होगी।

आप हकें दिल उठाए के, खेल किया फरामोस।

एती पुकारें हक की, आवत नाहीं होस॥८१॥

धाम धनी ने अपनी अँगनाओं के दिल को परमधाम से हटा दिया और माया के खेल में लगा दिया। अब प्रियतम अक्षरातीत जाग्रत करने के लिये वाणी से इतनी पुकार कर रहे हैं, फिर भी आत्माओं को होश नहीं आ रहा है।

ए बातें बोहोत बारीक हैं, और हैं बुजरक।

ए सुध तब तुमें होएसी, जब आवसी इस्क॥८२॥

हे सुन्दरसाथ जी! ये बातें बहुत ही सूक्ष्म और महत्वपूर्ण हैं। जब तुम्हारे अन्दर धाम धनी का इश्क आ जायेगा, तब तुम्हें इन बातों की सुध होगी।

महामत रूहों हक सों हुआ, बहस इस्क वास्ते।

सो इस्क बिना क्यों पैठिए, बीच हक अर्स के॥८३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि स्वलीला अद्वैत परमधाम में अक्षरातीत श्री राज जी और आत्माओं के बीच इश्क के निरूपण के सम्बन्ध में बहस हुई थी। यही कारण है कि इस ससार में जब तक हृदय में इश्क नहीं आ जाता, तब तक प्रियतम के धाम में प्रवेश करना सम्भव नहीं है।

भावार्थ— इस चौपाई में इश्क की महत्ता को स्पष्ट शब्दों

में दर्शाया गया है। जिस प्रेम के लिये रब्द हुआ, उससे दूर होकर आत्म-जाग्रति के बारे में सोचना दिवास्वप्न के समान है।

प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥६०५॥

सूरत हक इस्क के मगज का बेसक

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि श्री राज जी के दिल में स्थित इश्क का गुह्य रहस्य (भेद) क्या है, जिसे जानने के पश्चात् बेशकी आ जाती है।

हाए हाए क्यों न सुनो रूहें अर्स की, हक बका वतन।

रूहअल्ला ने जाहेर किया, काहू सुन्या न एते दिन॥१॥

हाय! हाय! परमधाम की आत्माओं! तुम धाम धनी और निज घर के इश्क की गुह्य बातों को क्यों नहीं सुनती हो? आज दिन तक जिस परमधाम के बारे में किसी ने सुना तक नहीं था, उसे श्यामा जी ने अपने तारतम ज्ञान से उजागर (जाहिर) कर दिया।

फरामोसी हकें दई, सो वास्ते हाँसी के।

हाए हाए घाव न लागहीं, सुन के सब्द ए॥२॥

अपनी अँगनाओं पर हाँसी करने के लिये ही धाम धनी ने उन्हें माया की नींद में डाला है किन्तु, हाय! हाय! कितने आश्चर्य की बात है कि इन शब्दों को सुनकर भी सुन्दरसाथ के हृदय में चोट नहीं लगती।

भावार्थ— आपस में हँसी का व्यवहार वही कर सकता है, जो बहुत नजदीकी हो। जिस सच्चिदानन्द अक्षरातीत का ज्ञान इस सृष्टि में था ही नहीं, जिसको पाने के प्रयास में सारी सृष्टि थक गयी हो, वह स्वयं जिनसे हँसी करे, तो भला उनसे अधिक सौभाग्यशाली और कौन होगा? इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि हम धनी के प्रेम का प्रत्युत्तर देने में बहुत पीछे हैं।

ए साहेब हाँसी करे, अर्स की अरवाहों सों।

हाए हाए विचार न आवहीं, ऐसी सखती हिरदेमों॥३॥

अक्षरातीत प्राणवल्लभ अपनी अँगनाओं से प्रेम की हँसी करें और वे कुछ भी प्रत्युत्तर न दें, तो यही कहा जायेगा कि उनका हृदय बहुत ही कठोर है जो धनी के प्रेम के सम्बन्ध में विचार तक नहीं करतीं।

ए साहेब किने न देखिया, ना किन सुनिया कान।

ढूँढ गए त्रैगुन, पर पाया न काहूँ निदान॥४॥

हमारे प्रियतम अक्षरातीत को आज दिन तक न तो किसी ने अपनी आँखों से देखा है और न अपने कानों से उनके बारे में सुनने का कोई सौभाग्य ही प्राप्त किया है। ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि भी उनको खोजते-खोजते थक गये, किन्तु कोई भी उनकी झलक तक नहीं पा

सका।

एक पल थें पैदा फना, कोट ब्रह्मांड नूर के।

सो नूर नूरजमाल के, मुजरे आवत इत ए॥५॥

अक्षर ब्रह्म के एक पल में करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और लय हो जाते हैं। वही अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन अक्षरातीत के दर्शन करने के लिये चाँदनी चौक में आते हैं।

जो किनहूँ पाया नहीं, सो जात रोज दरबार।

साहेब अर्स-अजीम के, करने उत दीदार॥६॥

जिस अक्षर ब्रह्म को आज दिन तक कोई भी प्राप्त नहीं कर सका, वह प्रतिदिन श्री राज जी का दर्शन करने के लिये रंगमहल के सामने चाँदनी चौक में जाते हैं।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनार्यें भी अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकी हैं। वे चतुष्पाद विभूति से आगे नहीं बढ़ सकी। बिना तारतम ज्ञान के कोई भी परमधाम या उसमें स्थित अक्षर धाम और अक्षर ब्रह्म का दर्शन नहीं कर सकता है।

सो साहेब हाँसी करे, अपने मोमिन रुहों सों मिल।

सो सुन के घाव न लागहीं, हाए हाए ऐसे बजर दिल॥७॥

सबके साहिब वे अक्षरातीत अपनी अँगनाओं के साथ हाँसी करते हैं। उनके अगाध प्रेम की इस लीला को सुनकर भी सुन्दरसाथ के दिल में चोट नहीं लग रही है। हाय! हाय! सुन्दरसाथ का दिल वज्र की तरह इतना कठोर क्यों हो गया है?

हाँसी करी किन भांत की, फरामोसी दर्ई किन।

पर हाए हाए दिल न विचारहीं, कोई ऐसा दिल हुआ कठिन॥८॥

धाम धनी ने हम सुन्दरसाथ के ऊपर कितनी प्रेम भरी
हाँसी की है तथा किस प्रकार की फरामोशी (नींद) में
हमें डाला है कि हम सभी अपने को भूल गये हैं। किन्तु
हाय! हाय! हमारा दिल इतना कठोर हो गया है कि हम
अपने दिल में धनी के प्रेम का विचार ही नहीं करते।

भावार्थ- उपरोक्त दोनों (७, ८) चौपाइयाँ यही दर्शाती
हैं कि हृदय के कोमल हुए बिना आत्म-जाग्रति सम्भव
नहीं है। श्रीमुखवाणी में इसी को इन शब्दों में व्यक्त किया
गया है-

मोमिन दिल कोमल कहया, तो अर्स पाया खिताब।

हक का इस्क हमपें, पूरा पाया मैं।

ए खेल देखाया नींद का, फरामोसी के से॥९॥

प्राण प्रियतम अक्षरातीत ने हमें बेसुध कर देने वाला मायावी नींद का यह खेल दिखाया है। इसमें भी उनके इश्क की पूरी वर्षा हो रही है, जिसको मैंने पूर्ण रूप से आत्मसात् किया है अर्थात् अपनी आत्मा को धनी के प्रेम में डुबा दिया है।

इलम भी पूरा दिया, जित जरा न मैं को सक।

सुख देखे बेसक अर्स के, तो क्यों न आवे हक इस्क॥१०॥

धाम धनी ने हमें पूर्ण ज्ञान दिया है, जिसमें नाम मात्र के लिये भी संशय का स्थान नहीं है। इस ब्रह्मवाणी के द्वारा मैंने संशय रहित होकर परमधाम के सुखों का अनुभव किया है, किन्तु इस बात पर आश्चर्य है कि धनी का इश्क

क्यों नहीं आता?

भावार्थ- इस ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम के सुखों का स्वाद तो लिया जाता है, किन्तु उसमें डूबने के लिये इश्क चाहिए। यद्यपि इल्म (ज्ञान) ही इश्क (प्रेम) का प्राण है, तथापि धाम धनी ने इस चौपाई के द्वारा सुन्दरसाथ को यह सिखापन दिया है कि केवल शाब्दिक ज्ञान-ग्रहण को ही अपने जीवन की सर्वोच्च मन्जिल नहीं समझना चाहिए। प्रेम के बिना उस वहदत के सागर में नहीं डूबा जा सकता। इसी तथ्य को धनी ने अन्यत्र कहा है- "इल्में लई हक लज्जत, इस्क गरक वाहेदत।"

इस प्रकरण की नवीं चौपाई में कहा गया है कि मैंने तो धनी का इश्क पा लिया है, किन्तु अगली दसवीं चौपाई में कहा है कि हमारे अन्दर धनी का इश्क क्यों नहीं आ रहा? यहाँ प्रश्न होता है कि क्या दोनों चौपाइयों के अन्दर

विरोधाभास है?

इसके उत्तर में यही कहा जायेगा कि श्रीमुखवाणी में "विरोधाभास" शब्द की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि यह परब्रह्म के आवेश द्वारा अवतरित है। वस्तुतः दसवीं चौपाई में यह सिखापन दी गई है कि ज्ञान द्वारा सुख ले लेने के पश्चात् धनी के प्रेम में अवश्य डूबना चाहिए। इस चौपाई में "क्यों" शब्द का प्रयोग जोर देकर कहने के लिये ही किया गया है। प्रेम विरह से प्राप्त होता है और श्री इन्द्रावती जी ने उसे हब्से में प्राप्त कर लिया। इसलिये नवीं चौपाई में कहा गया है कि "मैंने धनी का प्रेम प्राप्त कर लिया है।"

सुख में भी सक नहीं, नाहीं अर्स में सक।

ना कछू सक इलम में, सक ना खसम हक॥११॥

इस ब्रह्मवाणी के द्वारा अब न तो परमधाम के सम्बन्ध में कोई संशय रह गया है और न वहाँ के सुखों के सम्बन्ध में। इस अलौकिक ब्रह्मज्ञान में भी शक नहीं रह गया , जिससे हमने अक्षरातीत को प्रियतम के रूप में स्वीकार किया।

सक ना रही कछू खेल मैं, सक ना आए देखन।

सक ना मैं हक की, और सक ना गिरो मोमिन॥१२॥

यह मायावी खेल हमारे लिये ही बनाया गया है और हम इसे देखने आये हैं, इस विषय में कोई भी संशय नहीं रहा। मैं अक्षरातीत की अँगना हूँ तथा मेरे साथ ब्रह्मसृष्टियों की जमात है, इस सम्बन्ध में अब कोई संशय नहीं है।

सक नहीं कुदरत में, सक नहीं कादर।

सक नहीं कयामत में, सब अरवाहें उठें ज्यों कर॥१३॥

जिससे सृष्टि बनती है वह प्रकृति (कुदरत) क्या है तथा उसे नियन्त्रित करने वाला ब्रह्म (कादर) कौन है? कियामत किसे कहते हैं तथा सभी आत्मायें कैसे जाग्रत होंगी? मुझे इन प्रश्नों का यथावत् समाधान हो गया है और अब कोई भी संशय नहीं है।

सक ना कायम भिस्त में, बेसक ब्रह्मांड हुकम।

बेसक तीनों उमत, बेसक घरों पोहोंचावें हम॥१४॥

धनी के हुक्म से ही इस ब्रह्माण्ड की रचना की गयी है और यह ब्रह्माण्ड आठ बहिश्तों में अखण्ड हो जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं रहा। तीन प्रकार की सृष्टियाँ हैं और हमारे तारतम ज्ञान से वे अपने-अपने धाम को प्राप्त

होंगी, इस विषय में भी कोई संशय नहीं रहा।

बेसक फरामोसीय में, हक बेसक मिले हम साथ।

बेसक ताला खोलिया, बेसक कुन्जी हमारे हाथ॥१५॥

मैं इन विषयों में बेशक हो गयी हूँ कि हम इस फरामोशी (नींद) का खेल देख रहे हैं तथा इसमें हम सब सुन्दरसाथ को स्वयं धाम के धनी मिले हैं। श्री राज जी ने हमें तारतम ज्ञान रूपी कुन्जी देकर धर्मग्रन्थों में छिपे (बन्द पड़े, ताला लगे) हुए रहस्यों को उजागर कर दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई में "ताला खोलिया" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है - रहस्य विदित हो जाना। जिस प्रकार किसी भवन में ताला लगे रहने पर उसमें छिपे हुए धन को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार तारतम

ज्ञान के न होने से संसार के लोग धर्मग्रन्थों में छिपे हुए गुह्य अर्थों को नहीं समझ सके थे।

बेसक खेल देखाइया, खोली बेसक कतेब वेद।

बेसक हमों ने पाइया, बेसक हक दिल भेद॥१६॥

इस बात में अब कोई भी शक नहीं है कि धाम धनी ने हमें माया का खेल दिखाया है तथा मैंने वेदों (हिन्दू धर्मग्रन्थों) और कतेब ग्रन्थों में छिपे हुए रहस्यों को खोलकर उजागर कर दिया है। हमने ब्रह्मवाणी द्वारा श्री राज जी के दिल के अब तक के छिपे हुए भेदों को भी जान लिया है।

बेसक दोऊ असों की, जरे जरे की बेसक।

बेसक मेहेर मोमिनों पर, बेसक करी जो हक॥१७॥

अक्षर धाम तथा परमधाम के कण-कण की शोभा तथा लीला के ज्ञान के सम्बन्ध में धाम धनी ने हमें पूर्ण रूप से संशय रहित कर दिया है। प्रियतम अक्षरातीत की ब्रह्मसृष्टियों पर पल-पल अपार मेहर है, इस सम्बन्ध में अब कोई संशय नहीं रहा।

जो पैदा चौदे तबक में, जो कोई हुए बुजरक।

अपने मुख किने ना कहया, जो हम हुए बेसक॥१८॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक जितनी भी महान विभूतियाँ पैदा हुई हैं, उनमें से किसी ने भी अपने मुख से यह नहीं कहा कि हम पूर्णतया संशय रहित हैं।

भावार्थ- आज तक इस सृष्टि में बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, महर्षि, सन्त, अवतार, भक्त, ज्ञानी, तीर्थंकर, पैगम्बर,

और फकीर आदि हो चुके हैं, किन्तु तारतम ज्ञान के बिना कोई भी यह नहीं कह सकता कि हम अध्यात्म जगत के छः अनादि प्रश्नों का संशय रहित उत्तर जानते हैं। वे छः प्रश्न इस प्रकार हैं—

१. मैं कौन हूँ? २. मैं कहाँ से आया हूँ? ३. मेरी आत्मा का अनादि प्रियतम कौन है? ४. और वह कहाँ है? ५. वह कैसा है? ६. उसको पाने का वास्तविक मार्ग क्या है?

सो बेसक मैं जानिया, ए बात तेहेकीक बेसक।

मोमिन बेसक समझियो, बेसक बोले मैं हक॥१९॥

इस प्रकार मैंने यह बात निश्चित रूप से जान ली है कि उपरोक्त बातें पूर्णतया सत्य हैं। हे सुन्दरसाथ जी! इस बात को अच्छी तरह से जान लीजिए कि मेरे अन्दर से

अब श्री राज जी की "मैं" बोल रही है और इसमें किसी भी तरह का कोई संशय नहीं है।

केतेक मोमिन हो बेसक, जो बेसक करो विचार।

तो बेसक सुख अर्स का, इन तन बेसक ल्यो करार॥२०॥

हे सुन्दरसाथ जी! आपमें से ऐसे कितने हैं जो पूर्णतया संशय रहित हो चुके हैं? यदि आप बेशक होकर इस ब्रह्मवाणी का चिन्तन करें तो यह पूर्ण रूप से निश्चित है कि आपको इसी तन से परमधाम के सुखों की अनुभूति होगी और आपके हृदय में शाश्वत शान्ति विराजमान हो जायेगी।

दुनियां चौदे तबक में, कोई बेसक हुआ न कित।

सो सब थें सक मिट गई, ऐसी बेसकी आई इत॥२१॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक कहीं भी कोई बेशक नहीं हो सका था। इस ब्रह्मवाणी के द्वारा ऐसी स्थिति बन गयी है कि सबके संशय पूर्णतया समाप्त हो चुके हैं।

किस वास्ते हाँसी करी, किस वास्ते हुए फरामोस।

हाए हाए दिल न विचारहीं, हाए हाए आवत नाहीं माहें होस॥२२॥

हाय! हाय! सुन्दरसाथ अपने दिल में इस बात का विचार भी नहीं करता कि धाम धनी ने हमारे ऊपर हँसी क्यों की तथा हम माया की नींद (फराफोशी) में क्यों डूबे? हाय! हाय! माया का प्रभाव इतना गहरा है कि सुन्दरसाथ को तो होश ही नहीं आ रहा है।

ए कदम दिल कछू आवहीं, जब करे विचार दिल ए।

हाए हाए ए समया क्यों ना रहया, इन हाँसी फरामोसी के॥२३॥

जब दिल में इन बातों का विचार किया जाता है, तो दिल में धनी के चरणों की कुछ झलक आने लगती है। हाय! हाय! हमारी हँसी कराने वाली इस फरामोशी में आने से पहले मूल मिलावा में हमारी जो स्थिति थी वह पूर्व स्थिति हमें पुनः क्यों नहीं प्राप्त हो जाती?

भावार्थ- इस चौपाई में "समय" का तात्पर्य उस पूर्व स्थिति से है, जिसमें परात्म के तन पूर्णतया जाग्रत थे और वाहिदत के इश्क-आनन्द में मग्न थे। इस चौपाई में यही कामना की गयी है कि हमारी आत्मा जागनी की उस अवस्था में पहुँच जाये, जिसमें आत्मा और परात्म में कोई भी भेद न रह जाये। सागर ग्रन्थ ११/४४ में इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

अन्तस्करण आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

हाए हाए दिल में न आवहीं, किस वास्ते हाँसी भई।

ए कारन कौन फरामोस को, ए दिल खोल किने न कही॥२४॥

हाय! हाय! सुन्दरसाथ के दिल में यह बात आती ही नहीं कि हमारे ऊपर हँसी किस कारण से हुई। यह बात किसी ने भी दिल खोलकर नहीं कही कि इस फरामोसी का कारण क्या है?

समया न रह्या किन वास्ते, होए पेहेचान न वास्ते किन।

इस्क हक के दिल का, हाए हाए पाए नहीं लछन॥२५॥

यह विचारने योग्य बात है कि हमारी परमधाम वाली

स्थिति इस समय क्यों नहीं है? किस कारण से धनी की वास्तविक पहचान नहीं हो पा रही है? हाय! हाय! यह कितने शोक की बात है कि हम श्री राज जी के दिल में उमड़ने वाले इश्क के सागर की वास्तविक पहचान नहीं कर पा रहे हैं।

दृष्टव्य- इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "पाए नहीं लछन" का भाव पहचान न करने से है।

आप फरामोसी देय के, ऊपर से जगावत।

तरंग हक इस्क के, हाए हाए दिल में न आवत॥२६॥

अपनी अँगनाओं को माया में डालकर धाम धनी ज्ञान द्वारा ऊपर-ऊपर से जगा रहे हैं। हाय! हाय! यह बहुत ही चिन्तनीय बात है कि ज्ञान द्वारा जाग्रत होने के पश्चात् भी हमारे अन्दर श्री राज जी के इश्क रूपी सागर की

लहरें क्यों नहीं आतीं?

भावार्थ- यद्यपि इश्क और इल्म एक दूसरे के प्राण हैं, फिर भी दिल में तब तक इश्क नहीं आ सकता, जब तक इश्क के मूल अक्षरातीत की शोभा को दिल में न बसाया जाये। इस सम्बन्ध में परिक्रमा ग्रन्थ का चौथा प्रकरण बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें यह बात दर्शायी गयी है कि अक्षरातीत और धाम की शोभा को दिल में बसाने पर ही संसार से सम्बन्ध टूटता है और धनी का प्रेम आत्मा के हृदय-मन्दिर में विराजमान होता है। सागर ११/४६ में इसे इस प्रकार कहा गया है-

ताथे हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥

वस्तुतः पढ़ा हुआ और सुना हुआ ज्ञान अन्तःकरण का विषय है, जबकि प्रेम अन्तःकरण से भी परे होकर

अन्तरात्मा में वास करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धनी का प्रेम पाने के लिये युगल स्वरूप के ध्यान (चितवनि) की प्रक्रिया अनिवार्यतः अपनानी पड़ेगी।

खेल किया किस वास्ते, किस वास्ते देखाया दुख।

मेहेर प्रीत हक के दिल की, हाए हाए देखें ना इस्क के सुख॥२७॥

यह प्रश्न होता है कि धाम धनी ने माया का यह ब्रह्माण्ड क्यों बनाया? उन्होंने अपनी अँगनाओं को दुःख की लीला क्यों दिखायी? इसका उत्तर तो यही है कि हमारे प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने अपने दिल का प्रेम दिखाने के लिये ही अपनी मेहर से यह दुःख का खेल बनाया और उसे दिखाया। किन्तु हाय! हाय! सुन्दरसाथ जाग्रत होकर धनी के प्रेम के सुखों की अनुभूति क्यों नहीं करता?

किस वास्ते हलके जगावत, ऊपर करत बोहोतक सोर।

हाए हाए ए सुध कोई ना ले सके, हक के इस्क का जोर॥२८॥

क्या कारण है कि धाम धनी सुन्दरसाथ को बहुत धीरे-धीरे जगा रहे हैं, जबकि जागने के लिये वाणी द्वारा बहुत अधिक शोर मचाते हैं? हाय! हाय! श्री राज जी के दिल में छिपे हुए प्रेम की इस लीला की सुध किसी को भी नहीं है।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी द्वारा सुन्दरसाथ को जाग्रत होने के लिये बार-बार प्रबोधित करना ही शोर मचाना है। यदि धाम धनी चाहें तो एक पल में ही सबको जगा सकते हैं, किन्तु धीरे-धीरे जगाने का कारण यह है कि सुन्दरसाथ माया में बैठे-बैठे एक तरफ तो परमधाम का स्वाद लें और दूसरी ओर इस संसार को भी अच्छी तरह से देख लें जिसकी इच्छा उन्होंने परमधाम में की थी। यह भी

धनी के अगाध प्रेम की लीला का एक अंग है।

किस वास्ते दुनी ना समझी, किस वास्ते भेज्या फुरमान।

ए बातें हक के इस्क की, हाए हाए करी न काहूं पेहेचान॥२९॥

प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी अमृतमयी ब्रह्मवाणी किस लिये भेजी है? इसे संसार के लोग नहीं समझ पाये। हाय! हाय! श्री राज जी के अनन्त प्रेम की इन बातों की पहचान किसी को भी न हो सकी।

भावार्थ- "फुरमान" शब्द का तात्पर्य होता है- परब्रह्म के आदेश से अवतरित ज्ञान। इसकी परिधि में मात्र कुरआन ही नहीं, बल्कि श्रीमद्भागवत् जैसे ग्रन्थ और तारतम वाणी भी है। श्रीमुखवाणी में स्पष्ट कहा है - "फुरमान दूजा ल्याया सुकदेव..."। इस उन्तीसवीं चौपाई में "फुरमान" शब्द ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप (तारतम

वाणी, स्वसं वेद) के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसमें संसार के सभी ग्रन्थों के गुह्य भेद छिपे हुए हैं। इसमें वेद और कुरआन के उन अनसुलझे प्रश्नों का समाधान है, जिनका उत्तर आज दिन तक संसार में नहीं था।

कुंजी ल्याए किस वास्ते, किस वास्ते दई दूजे को।

मेहेर अल्ला के कलाम, हाए हाए आए ना काहूं दिल मौं॥३०॥

श्यामा जी तारतम ज्ञान किसलिये लेकर आयीं और उन्होंने अपने दूसरे स्वरूप श्री प्राणनाथ जी (आखरूल इमाम मुहम्मद महदी) को उसे क्यों दिया? हाय! हाय! अक्षरातीत की मेहर से अवतरित होने वाली ब्रह्मवाणी के शब्दों को किसी ने अपने दिल में क्यों नहीं उतारा?

भावार्थ— मूल स्वरूप ने अपने दिल में पहले ही ले लिया था कि श्यामा जी के पहले तन में तारतम उतरेगा

तथा दूसरे तन में ब्रह्मवाणी का उजाला। इसी के अनुसार ही सब कुछ हुआ। "एक मिने उपज्या तारतम, दूजे मिने उजास।" माया के प्रभाव से कुछ लोग ब्रह्मवाणी सुनना ही नहीं चाहते, तो कुछ लोग सुनकर भी उसे मात्र कहने-सुनने का विषय बना लेते हैं। दिल में या आचरण में तो कोई-कोई ही उतार पाता है।

किस वास्ते खिताब खुदाए का, एक सोई खोले कलाम।
 हाए हाए ए सुध मोमिनों ना लई, मीठा हक इस्क का आराम॥३१॥
 कुरआन के गुह्य भेदों को खोलकर "खुदा" (परब्रह्म) कहलाने की शोभा मात्र श्री प्राणनाथ जी को ही है। हाय! हाय! खेद का विषय है कि श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप से प्रवाहित होने वाले मीठे इश्क के आनन्द की सुध पूर्ण रूप से ब्रह्ममुनियों को भी नहीं हुई।

भावार्थ- श्रीजी के स्वरूप से ही ब्रह्मवाणी का अवतरण हुआ, जिसमें अक्षरातीत ने अपने हृदय का रस उड़ेल दिया। जब श्री प्राणनाथ जी चर्चा करते थे, तो सुन्दरसाथ को साक्षात् युगल स्वरूप के दर्शन होते थे—

सुर असुर सबों को ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को सांई, जिनहूं जैसा चाहया॥

किरंतन ५९/७

जाको दिल जिन भांत सो, तासों मिले तिन विध।

मन चाह्या सरूप होए के, कारज किये सब सिध॥

खुलासा १३/९४

अधिकतर सुन्दरसाथ श्रीजी के साथ रहकर भी उनकी पूर्ण पहचान नहीं कर सके थे। बीतक में वर्णित आकोट का प्रसंग इसी सन्दर्भ में है। वर्तमान समय में भी सुन्दरसाथ का एक वर्ग उन्हें सन्त, कवि, और आचार्य

के रूप में देखता है। यह समाज का दुर्भाग्य है। इसलिये तो रास ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में कहा गया है—

साथ मलीने सांभलो, जागी करो विचार।

जेणें अजवालूं आ करयूं, परखो पुरुख ए पार॥

रास १/४६

ए द्वार किने ना खोलिया, ए जो कुरान किताब।

पाई ना हकीकत किनहूं, हाए हाए एकै ठौर खिताब॥३२॥

हाय! हाय! कुरआन के छिपे हुए भेदों को स्पष्ट करके अखण्ड परमधाम की वास्तविक पहचान आज तक किसी ने भी नहीं करायी थी। संसार के लोगों को कुरआन के सत्य ज्ञान (हकीकत) का वास्तविक बोध नहीं हो सका था। यह शोभा तो मात्र श्री प्राणनाथ जी की है, जिन्होंने श्रीमुख द्वारा कुरआन की हकीकत एवं

मारिफत के ज्ञान का प्रकाश किया।

भावार्थ- यद्यपि कुरआन के पन्द्रहवें पारः (१५) सुब्हानल्लजी में मुहम्मद साहिब के द्वारा परमधाम में जाकर अल्लाह तआला के दीदार का वर्णन है, किन्तु तारतम ज्ञान (इल्म-ए-लदुन्नी) न होने से कोई भी परमधाम के बारे में यथार्थ रूप से नहीं जानता। इसके अतिरिक्त हौज कौसर (इन्ना आतेना सूरत में) तथा जोए (यमुना जी) का भी वर्णन है, किन्तु संसार के ज्ञानीजन इन भेदों से दूर हैं। यह शोभा मात्र श्री प्राणनाथ जी की है, जिन्होंने वेद-कतेब से एक सत्य की पहचान करायी।

साहेदी देवे जो खुदाए की, सोई खुदा जान।

सो साहेदी किन ना लई, हाए हाए मगज न पाया कुरान॥३३॥

कुरआन में लिखे हुए इस कथन के रहस्य को किसी ने

भी नहीं समझा कि कियामत के समय में खुदा की साक्षी देने वाला खुद खुदा ही होगा। हाय! हाय! कितने शोक की बात है कि कुरआन की इस साक्षी को लेकर संसार ने श्री प्राणनाथ जी (श्री जी) के स्वरूप को पहचाना नहीं।

भावार्थ- कुरआन के पार: एक (१) सूर: दो (२) अलिफ़ लाम् मीम आयत १०५-१०७ में यह वर्णित है कि खुदा की साक्षी देने वाला स्वरूप उनके तदोगत (वैसा ही) होगा। कुरआन में एहिया के नाम से भी उस स्वरूप को परिभाषित किया गया है। ऐसा ही प्रसंग बाइबल में भी है।

लिखी इसारतें रमूजें, हकें किन ऊपर।

ए बातें मोमिनों मिनें, हाए हाए छिपी रही क्यों कर॥३४॥

श्री राज जी ने कुरआन में संकेतों में गुह्य बातें किनके लिये लिखवायी थीं? हाय! हाय! यदि वे बातें ब्रह्मसृष्टियों के लिये थीं, तो अब तक छिपी क्यों रहीं?

भावार्थ- कियामत के समय में प्रकट होने वाले परब्रह्म स्वरूप श्री प्राणनाथ जी (आखरूल इमाम) तथा ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनों) की साक्षी देने के लिये कुरआन का अवतरण हुआ। ब्रह्मसृष्टियाँ मूलतः हिन्दू तनों में ही उतरी हैं। कहीं-कहीं कोई आत्मा मुस्लिम तन में हो सकती है। अरबी भाषा से अनभिज्ञता तथा इस्लामिक शरियत के कट्टर नियमों के कारण ये भेद ब्रह्ममुनियों तक नहीं पहुँच सके।

तरंग हक के इस्क के, पाए ना गिरो में किन।

अजूं माएने मगज, हाए हाए पाए नहीं मोमिन॥३५॥

अब तक ब्रह्मसृष्टियों में से किसी ने भी श्री राज जी के दिल में उमड़ने वाले इश्क के सागर की लहरों का रसास्वादन नहीं किया है। हाय ! हाय! अभी तक ब्रह्ममुनियों ने मारिफत (विज्ञान) के छिपे हुए गुह्य भेदों को क्यों नहीं प्राप्त किया?

भावार्थ- सागर और श्रृंगार की वाणी खिल्वत के पश्चात् ही उतरी है। मारिफत का इल्म श्रृंगार ग्रन्थ में है। हकीकत से परे हुए बिना मारिफत में नहीं पहुँचा जा सकता और गुह्य भेदों को नहीं जाना जा सकता। मारिफत की अवस्था में ही आत्मा श्री राज जी के दिल में बैठकर उसमें लहराने वाले सागरों का रसास्वादन करती है और सागर ग्रन्थ के द्वारा इश्क की लहरों का आनन्द प्राप्त करती है। इस चौपाई में जिन उपलब्धियों का वर्णन किया गया है, वे सागर और श्रृंगार ग्रन्थ के

अवतरण के पश्चात् ही सम्भव थी, इसलिये ऐसा कहा गया है कि अब तक सुन्दरसाथ ने उस मन्जिल को क्यों नहीं पाया है। अगली चौपाई में भी ऐसा ही प्रसंग है।

हक के दिल का इस्क, निपट बड़ी है बात।

अजूं जाहेर रूहों ना हुई, अर्स सूरत हक जात॥३६॥

धाम धनी के दिल में उमड़ने वाले इश्क के अनन्त सागर में गोते लगाना निश्चित रूप से बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह आश्चर्य की बात है कि रूहों के दिल में अभी तक श्री राजश्यामा जी और अपने परात्म के तनों की शोभा क्यों नहीं विराजमान हुई।

हाँसी करी किन वास्ते, फरामोसी की दे।

हाए हाए मोमिन ना समझे, बात इस्क की ए॥३७॥

हाय! हाय! ब्रह्ममुनि अभी भी धाम धनी की प्रेम भरी इस लीला के रहस्य को नहीं समझ पा रहे हैं कि उन्होंने माया की फरामोशी में हमें डालकर हमारी हँसी क्यों की है?

लिख्या ऐसा कुरान में, कुँआरी रही फुरकान।

ए दाग गिरो तब देखसी, हाए हाए होसी जब पेहेचान॥३८॥

कुरआन में ऐसा लिखा है कि कुरआन कुँआरी ही रही अर्थात् इसके छिपे भेदों को आज तक किसी ने भी नहीं खोला था। जब ब्रह्मसृष्टियों को इस बात की पहचान होगी कि धाम धनी ने संसार में उनको जाहिर करने के लिये ही कुरआन का भेद नहीं खुलने दिया था, तो उन्हें धनी की साहिबी को न पहचान सकने के अपने कलंक का अहसास होगा।

भावार्थ- जिस प्रकार कुँआरी कन्या पति के स्पर्श और प्रेम से वन्धित रह जाती है, उसी प्रकार अक्षरातीत के आए बिना इसके मारिफत के भेदों को कोई भी नहीं खोल सकता था। कुरआन के बारहवें सिपारः में यह प्रसंग है। पारः १२ सिपारः ५३ आयत २-४ में कहा गया कि बिना पवित्र हुए इसको मत छूना। वस्तुतः प्रेम रूपी जल के बिना कोई भी पवित्र नहीं हो सकता और वह प्रेम मात्र ब्रह्मसृष्टियों के पास है। श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप से जब कुरआन के मारिफत के रहस्य स्पष्ट हुए तो संसार ने ब्रह्ममुनियों की गरिमा को पहचाना। संसार में उनकी गरिमा को दर्शाने के लिये ही तो धनी ने कुरआन के गुह्य रहस्यों को छिपा रखा था। जब ब्रह्मसृष्टियों को धनी के इस प्रेम का पता चलेगा कि केवल उनको जाहिर करने के लिये ही कुरआन के गुह्य

ज्ञान को छिपाया गया था, तो वे अपनी उस भूल पर प्रायश्चित्त करेंगी कि परमधाम में अपने इश्क को बड़ा क्यों माना था और धनी की अनन्त साहिबी को क्यों नहीं समझा था? यही उनके ऊपर दाग (कलंक) बना हुआ है।

ए भी वास्ते इस्क के, फुरमाया यों कर।

तो कही कुँआरी फुरकान, हाए हाए गिरो न लई दिल धर॥३९॥

कुरआन के बारहवें सिपारे में ऐसा भी कहा गया है कि अपने इश्क की पहचान देने के लिये ही धाम धनी ने कुरआन के गुह्य रहस्यों को छिपा रखा था। इसी कारण तो कुरआन को कुँआरी (अनछुआ) कहा गया है। हाय! हाय! ब्रह्मसृष्टियों ने इस बात का अपने दिल में विचार क्यों नहीं किया?

उतरे नूर बिलंद से, मोमिन बड़ा मरातब।

हक के दिल का इस्क, हाए हाए मोमिन लेसी कब॥४०॥

ब्रह्मुनियों की गरिमा सर्वोपरि है। ये परमधाम से माया का खेल देखने के लिये आये हैं। हाय! हाय! अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाले इश्क की अमृतधारा का रसपान ये ब्रह्मात्मायें कब करेंगी?

ऐसा नूर-जमाल जो, रुहें रहें इन दरगाह।

ए किस्सा सुनते विचारते, हाए हाए उड़त नहीं अरवाह॥४१॥

स्वलीला अद्वैत परमधाम में प्रेम और सौन्दर्य के अनन्त सागर अक्षरातीत श्री राज जी विराजमान हैं। उनके चरणों में अँगनायें बैठी हुई हैं। हाय ! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस प्रसंग को सुनने और विचारने के पश्चात् भी सुरता इस संसार को नहीं छोड़ पा रही है।

भावार्थ- प्रत्येक चेतन प्राणी प्रेम और सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता है। "जमाल" शब्द का अर्थ ही सौन्दर्य होता है। माया की नींद के कारण ही हर प्राणी संसार के झूठे रिश्तों में फँसकर अपनी उम्र गँवा देता है , किन्तु सौन्दर्य और प्रेम के अनन्त सागर उस अक्षरातीत को दिल में बसा नहीं पाता। तृष्णाओं के पीछे भागते हुए वह यही कहता है कि मेरे पास श्री राज जी का ध्यान करने के लिये समय नहीं है। ऐसे बदनसीबों के लिये ही इस चौपाई में विशेष रूप से सिखापन है।

हक सूरत के दिल का, मोमिनों से सनेह।

हेत प्रीत इस्क की, हाए हाए आई नहीं काहूँ एह॥४२॥

श्री राज जी के दिल में ब्रह्मसृष्टियों के लिये अपार प्रेम है, किन्तु हाय! हाय! खेद की बात है कि सुन्दरसाथ में

धनी के प्रति वैसा प्रेम, प्यार क्यों नहीं आ रहा है?

भावार्थ- इस चौपाई में इश्क, स्नेह, प्रीति, और हेत शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यद्यपि इनका भाव एक ही है, फिर भी सूक्ष्म सा अन्तर है। स्नेह और हेत (लाड, प्यार) समानार्थक है, किन्तु ये प्रेम (इश्क) के अंश रूप हैं। प्रेम के सूक्ष्म में प्रीति वैसे ही होती है, जैसे यश में कीर्ति, सम्मान में प्रतिष्ठा, तथा सौन्दर्य में शोभा। यथार्थतः इस खेल में ही स्नेह, हेत, और प्रीति शब्द का प्रयोग हो सकता है, परमधाम में नहीं।

इस्क खेल हाँसी इस्क, इस्क फरामोस मोमिन।

इस्कें रसूल होए आइया, वास्ते इस्क न पाया किन॥४३॥

इश्क का ब्योरा करने के लिये ही यह खेल बनाया गया है। इसमें सखियों के अन्दर इश्क न होने की हाँसी होनी

है। इश्क की पहचान के लिये ही ब्रह्मात्माओं को नींद (फरामोशी) में डाला गया है। संसार में परमधाम के इश्क की थोड़ी सी पहचान देने के लिये ही मुहम्मद साहिब आये। इश्क की पहचान बताने के लिये ही आज तक कोई परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सका था।

भावार्थ- संसार के लोगों में इश्क (अनन्य प्रेम) नहीं होता। परिक्रमा ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

"इस्क न होए बिना सुहागिन।" (१/१४)

"प्रेम ब्रह्म दोऊ एक हैं, दोऊ दुनी में नाहें।"(३९/१०)

"ए प्रेम इनों जाहेर किया, ना तो प्रेम दुनी में कित" (३९/२) के अनुसार संसार के लोग प्रेम की राह पर नहीं चल सकते। आत्माओं ने इश्क की राह अपनाकर अक्षरातीत को पाया तथा संसार को इश्क की पहचान दी। इस चौथे चरण का यही भाव है।

इस्कें फुरमान आइया, वास्ते इस्क न खुल्या किन।

वास्ते इस्क के गैब हुआ, इस्कें खुले ना खुदा बिन॥४४॥

संसार को परमधाम के इश्क की पहचान देने के लिये कुरआन का ज्ञान अवतरित हुआ। परमधाम का इश्क न होने से ही कुरआन के गुह्य भेद नहीं खुल सके थे। इश्क की पहचान को स्पष्ट करने के लिये कुरआन के मारिफत का ज्ञान छिपा रहा। श्री राज जी के बिना इश्क के भेदों को अन्य कोई भी नहीं खोल सकता।

भावार्थ- कुरआन के मारिफत के भेदों को वही स्पष्ट कर सकता है, जो धनी के इश्क में डूबकर स्वयं मारिफत की अवस्था को पहुँच गया हो। श्री इन्द्रावती जी की आत्मा ने हब्सा में इश्क में डूबकर अपने प्रियतम को प्राप्त कर लिया। कालान्तर में इनके द्वारा ही कुरआन के भेद खुलवाये गये। संसार के लोग इश्क से दूर होने के

कारण कुरआन के मारिफत के इल्म की प्राप्ति नहीं कर सके। इस चौपाई के तीसरे चरण का यही भाव है।

इस्कें कुंजी ल्याइया, इस्कें ल्याया खिताब।

इस्कें आए मोमिन, इस्कें खुले ना सिताब॥४५॥

सुन्दरसाथ को परमधाम के इश्क की सुध देने के लिये श्यामा जी तारतम ज्ञान लेकर आयीं। मूल स्वरूप अक्षरातीत ने अपने इश्क की पहचान देने के लिये ही श्री इन्द्रावती जी को अपनी सारी शोभा (खिताब) दी। इश्क का ब्योरा पाने के लिये ही ब्रह्ममुनि इस मायावी जगत में आये। इश्क को स्पष्ट करने के लिये मारिफत के इल्म के भेदों को धाम धनी ने जल्दी से नहीं खोला।

भावार्थ- मारिफत के इल्म से हकीकत का इश्क आता है, जिससे धनी का दीदार होता है, और आत्मा जाग्रत

होती है—

मारफत देवे इस्क, इस्कें होवे दीदार।

इस्कें मिलिए हक सों, इस्कें खुले पट द्वार।

सिनगार २५/८६

यदि खेल में आते ही मारिफत का ज्ञान मिल जाता, तो आत्माएँ इश्क लेकर जाग्रत हो जातीं। इसी इश्क की परीक्षा लेने के लिये जल्दी में मारिफत का इल्म नहीं दिया गया। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

कई बानी इस्कें उपजी, कई इस्कें पड़ी पुकार।

ए रूहें भी वास्ते इस्क के, हाए हाए हुइयां न खबरदार॥४६॥

संसार के लोगों को प्रेम के बारे में ज्ञान देने के लिये ही अनेक धर्मग्रन्थों की रचना हुई। इन धर्मग्रन्थों में धनी को पाने के लिये इश्क की ही पुकार लगायी गयी है, अर्थात्

एकमात्र प्रेम के द्वारा ही परब्रह्म को पाया जा सकता है।
हाय! हाय! परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ भी इश्क की परीक्षा
में सावधान नहीं हो सकी।

हाए हाए इस्क हक का, समझे नहीं मोमिन।

ना तो अरवाहें थी अर्स की, पर हुआ न दिल रोसन॥४७॥

हाय! हाय! श्री राज जी के इश्क को परमधाम की
ब्रह्मसृष्टियाँ नहीं समझ पायीं। यद्यपि वे अखण्ड धाम की
आत्मायें हैं, फिर भी उनके दिल में इश्क की यथार्थ
पहचान नहीं हो सकी।

भावार्थ— इश्क की पूरी पहचान तो श्रृंगार ग्रन्थ के
अवतरण के पश्चात् ही सम्भव हो सकी, क्योंकि उसमें
मारिफत का ज्ञान है।

सो भी वास्ते इस्क के, जो लगत नहीं घाए।

सो भी वास्ते इस्क के, जो उड़त नहीं अरवाहे॥४८॥

यदि सुन्दरसाथ के हृदय में ब्रह्मवाणी की चोट नहीं लगती या उनकी आत्मा विरह में संसार छोड़कर परमधाम का दीदार नहीं कर पाती, तो इसका मुख्य कारण यही है कि आत्मा जिस जीव को अधिष्ठान बनाकर (बैठकर) इस खेल को देख रही है, उसका दिल माया के प्रभाव से काफी कठोर हो चुका है। उसकी इस भूल से उसकी हँसी होनी है, क्योंकि वह धनी के इश्क की राह पर नहीं चल पा रही है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित अरवाह के उड़ने का बाह्य अर्थ होता है— शरीर का छूट जाना (मृत्यु को प्राप्त हो जाना), किन्तु इसका बातिनी अर्थ होता है— आत्मिक दृष्टि का शरीर और संसार के बन्धनों से परे होकर परमधाम या युगल

स्वरूप की शोभा में डूब जाना।

इस्कें ऊपर पुकारहीं, आवत नाहीं होस।

सो भी वास्ते इस्क के, जो टलत नहीं फरामोस॥४९॥

श्री राज जी ब्रह्मवाणी द्वारा ऊपर से इश्क की राह पर चलने की पुकार कर रहे हैं, किन्तु माया की इस बेसुधी में किसी को होश नहीं आ रहा है। माया की यह नींद सुन्दरसाथ से इसलिये नहीं हट पा रही है, क्योंकि उनके पास इश्क नहीं है, जिसके कारण उनकी हँसी होनी है।

सो भी वास्ते इस्क के, जो लगत न कलाम सुभान।

सो भी वास्ते इस्क के, जो होत नहीं पेहेचान॥५०॥

यदि धनी की अमृतमयी वाणी के वचन सुन्दरसाथ के हृदय में नहीं चुभते हैं और उनके स्वरूप की पहचान

नहीं होती है, तो उसका मुख्य कारण है इश्क की हँसी कराना।

भावार्थ- प्रियतम की इश्क से सराबोर ब्रह्मवाणी को सुनते हुए भी अनसुना करने का अर्थ है- हमारे हृदय का सूना और कठोर होना जिसमें प्रेम के लिये कोई जगह नहीं है। पहचान भी इसी कारण नहीं होती है।

सो भी वास्ते इस्क के, जो पेहेचान आवत नाहें।

सो भी वास्ते इस्क के, जो पेहेचानत दिल माहें॥५१॥

यदि सुन्दरसाथ इस माया में इश्क और धनी के स्वरूप की पहचान नहीं कर पाता है, तो ऐसा होता है इश्क की हँसी कराने के लिये। किन्तु यदि कोई सुन्दरसाथ पहचान कर लेता है, तो उसका तात्पर्य है- धाम धनी उसे इश्क में डूबने की शोभा देना चाहते हैं।

ए करत है सब इस्क, जो खेल में कोई जीतत।

सो भी करत इस्क, जो कोई काहूँ भूलत॥५२॥

यदि कोई सुन्दरसाथ इस खेल में धनी के स्वरूप की पहचान कर और अपनी आत्मा को जाग्रत करके जीत जाता है, तो ऐसा इश्क पाने के कारण ही होता है। इसी प्रकार यदि कहीं कोई सुन्दरसाथ इस माया के खेल में धनी को भूला रहता है, तो इश्क न होने से ही वह ऐसा करता है। ऐसे सुन्दरसाथ की परमधाम में हँसी होनी निश्चित है।

ए बारीक बातें इस्क की, ए कोई समझत नाहें।

सो भी करत है इस्क, जानत बल जुबाँए॥५३॥

इश्क की ये बहुत सूक्ष्म बातें हैं, जिसे माया के प्रभाव से कोई समझ नहीं पा रहा। मेरी जिह्वा अपनी सीमित शक्ति

को जानती है कि उस शब्दातीत इश्क को यथार्थ रूप में समझना और व्यक्त करना कितना कठिन होता है।

सो भी करत है इस्क, जुदी जुदी जिनस।

काहू सुध थोड़ी काहू घनी, काहू इस्क न देत हरगिस॥५४॥

यह सब धनी का इश्क ही कर रहा है अर्थात् धनी अपने इश्क की पहचान कराने के लिए अपने हुकम से ऐसा करवा रहे हैं। धनी का इश्क अलग-अलग रूपों में लीला करता है। किसी को इश्क की थोड़ी सी सुध होती है, तो किसी को अधिक। यहाँ तक कि किसी को नाम मात्र के लिये भी इस संसार में इश्क की अनुभूति नहीं हो पाती।

इस्क सेती हारिए, जितावे इस्क।

इस्कें इस्क न आवहीं, इस्क करे बेसक॥५५॥

इस खेल में धनी का इश्क न मिलने पर हार हो जाती है। यदि प्रियतम का प्रेम आ गया, तो जीत निश्चित है। लौकिक सम्बन्धों से प्रेम करने पर परमधाम का इश्क नहीं आ सकता। धनी का इश्क आने पर ही पूर्ण रूप से बेशकी आ सकती है।

भावार्थ- सूफी मत की यह धारणा है कि इश्क-ए-मजाजी (सांसारिक प्रेम) से इश्क-ए-हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) प्राप्त होता है, किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो ऐसा होना सम्भव नहीं है। मनुष्य लाखों जन्मों में सांसारिक रिश्तों के मोह में भटकता रहता है, लेकिन बिना ज्ञान, वैराग्य, और भक्ति के उसमें आध्यात्मिक प्रेम जाग्रत नहीं हो पाता। यदि लौकिक प्रेम से ही आध्यात्मिक प्रेम मिल जाता, तो संसार के प्रायः सभी लोग परमहंस अवस्था को प्राप्त हो जाते और

संसार में धर्मग्रन्थों की कोई आवश्यकता ही नहीं होती।
श्रीमुखवाणी का कथन भी इसी सन्दर्भ में है कि
सांसारिक प्रेम से परमधाम का प्रेम नहीं मिल सकता।

ए बारीक बातें हक की, क्यों कर जानी जाए।

इस्क हक के दिल का, बिना हुकमें क्यों समझाए॥५६॥

श्री राज जी के दिल की इन बारीक बातों को कैसे
जाना जाये? बिना धनी के हुक्म के उनके दिल में इश्क
का जो सागर लहराता है, उसे नहीं समझा जा सकता।

ए हक देखावें इस्क, तो बेर न पल एक होए।

सौ साल सोहोबत कीजिए, बिना हुकम न समझे कोए॥५७॥

यदि धाम धनी अपने इश्क की पहचान कराना चाहें, तो
उसमें एक पल की भी देरी नहीं लगती। धनी के हुक्म के

बिना तो प्रेम के वास्तविक स्वरूप को कदापि नहीं समझा जा सकता, भले ही किसी ज्ञानी, प्रेमी, या भक्त की संगति में सौ साल भी क्यों न गुजार दिया जायें।

ए बातें हक के दिल की, निपट बारीक हैं सोए।

बिना इस्क दिए हक के, क्यों कर समझे कोए॥५८॥

श्री राज जी के दिल की बातें बहुत ही सूक्ष्म हैं। जब तक धाम धनी मेहर कर अपना इश्क नहीं देते, तब तक उनके दिल की बातों को कोई भी नहीं समझ सकता।

भावार्थ- धनी के दिल में बैठे बिना उनके दिल की बातों को जानना असम्भव है, जैसा कि श्रीमुखवाणी से स्पष्ट है-

तिन हक दिल अन्दर पैठ के, माप्या सागर इस्क।

इन हक के इलमें रोसनी, सब मापे सागर बेसक॥

सागर १४/१६

उनके दिल में बैठने के लिये उनकी शोभा को अपने दिल में बसाना अनिवार्य है। यह कार्य बिना इश्क के सम्भव नहीं है। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का यही भाव है।

इस्क हक के दिल का, क्यों आवे माहें बूझ।

हक देवें तो इस्क आवहीं, ए हक के इस्क का गुझ।५९॥

श्री राज जी के दिल में इश्क का जो अनन्त सागर लहरा रहा है, उसे लौकिक बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। श्री राज जी के इश्क की सबसे गुह्य बात यही है कि जब वे इश्क देते हैं तभी किसी के अन्दर इश्क आता है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय हो सकता है कि जब

धनी के देने से ही इश्क आता है, तो परिक्रमा के चौथे प्रकरण के अनुसार अपने अन्दर इश्क लाने के लिये परमधाम एवं युगल स्वरूप के ध्यान-चिन्तन की क्या आवश्यकता है?

इस संशय के निवारण के लिये हमें श्रीमुखवाणी के इस कथन को ध्यान में रखना होगा कि "मेहर सब पर मेहेबूब की, पर पावें करनी माफक।" सबको समान रूप से इश्क इसलिये नहीं मिल सकता, क्योंकि सबकी करनी एक जैसी नहीं है। यदि हम परमधाम और युगल स्वरूप का ध्यान (चितवनि) नहीं करेंगे, तो यह कल्पना में भी नहीं सोचना चाहिए कि हमें धनी का इश्क मिलेगा।

ए हक का बातून इस्क, तिन इस्क का बारीक बातन।

बिना पाए इस्क हक के, इस्क न आवे किन॥६०॥

लीला में दृष्टिगोचर होने वाला श्री राज जी का यह गुह्य (बातिन) इश्क है। उसका भी गुह्य मारिफत का इश्क है। जब तक श्री राज जी का हकीकत का इश्क नहीं आता, तब तक किसी को भी मारिफत का इश्क प्राप्त नहीं हो सकता।

भावार्थ- श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, तथा परमधाम के पच्चीस पक्ष हकीकत के स्वरूप हैं। एकमात्र श्री राज जी का स्वरूप ही मारिफत का स्वरूप है, जिससे हकीकत का अनादि रूप में प्रकटन होता है। हकीकत का इश्क वही है, जिसमें युगल स्वरूप, सखियाँ, तथा पच्चीस पक्षों का दृश्य दिखायी पड़े। मारिफत के इश्क में केवल श्री राज जी ही दृश्य में रहते हैं तथा स्वयं का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

ए खेल फरामोसीय का, इस्कें किया जो अब।

तुम कायम दायम इस्क में, पर ऐसा इस्क न कब॥६१॥

इश्क का ब्योरा करने के लिये ही माया की बेसुधी का यह खेल बनाया गया है। हे सुन्दरसाथ जी! आप तो परमधाम के अखण्ड इश्क में अनादि काल से डूबे रहे हैं, किन्तु ज्ञान द्वारा जाग्रत होने एवं इश्क की पहचान हो जाने पर इश्क के जिस रस की अनुभूति अब हो रही है, वह पहले कभी नहीं हुई।

ए हमेसा रूहन में, रहे भीगे बीच इस्क।

पर इस्क ए फरामोसीय का, जो हक के दिल माफक॥६२॥

परमधाम में सखियाँ हमेशा ही अपने धनी के साथ इश्क में भीगी रहती थीं, किन्तु फरामोशी के इस ब्रह्माण्ड में जो इश्क देखने को मिल रहा है, उसे धाम धनी ने अपने

दिल की इच्छा से दिखाया है।

भावार्थ- परमधाम के इश्क की यह विशेषता है कि वहाँ इश्क में डूबना होता है, जबकि यहाँ विरह में तड़प कर ज्ञान दृष्टि से उसका स्वाद (लज्जत) लिया जाता है।

बीच कायम ठौर बिछोहा नहीं, जो जुदी होवे गिरो दम।

खेल इस्क जुदागीय का, क्यों देखें अर्स में हम॥६३॥

परमधाम में कभी भी वियोग की लीला नहीं होती , इसलिये वहाँ पर सखियाँ एक क्षण के लिये भी धाम धनी से कभी अलग नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में यह सम्भव ही नहीं था कि हम इश्क की जुदायगी का खेल देख पातीं।

लेने लज्जत इस्क वास्ते, दर्द फरामोसी खेल हुकम।

जो रूह लेवे बीच दिल के, तो देखे इस्क खसम॥६४॥

अँगनायें इश्क की लज्जत (स्वाद) ले सकें, इसलिये ही धाम धनी ने अपने हुक्म से फरामोशी का यह खेल दिखाया है। यदि आत्मायें अपने दिल में इस बात का विचार कर लें, तो वे श्री राज जी के इश्क को यथार्थ रूप में देख सकती हैं।

आप आगूं रूहें बैठाए के, दिल से उपजाई हक।

सुख देने देखाइया, अपने दिल का इस्क॥६५॥

धाम धनी ने अपने सामने सखियों को बैठाया और उनके दिल में खेल देखने की इच्छा पैदा की। उन्होंने अपने दिल के प्रेम के आनन्द को दिखाने के लिये ही माया का यह खेल दिखाया।

भावार्थ— सामान्यतः इस संसार में सर्वत्र दुःख ही दुःख की लीला दिखायी देती है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि

श्री राज जी ने अपने इश्क का सुख दिखाने के लिये यह बनाया है, संशय पैदा कर सकता है।

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि दुःखमय संसार में ही तो इश्क के सुख की गरिमा का अहसास होता है। परमधाम में वहदत के इश्क में डूबने की लीला होती है, किन्तु यहाँ ज्ञान और विरह द्वारा उसके स्वाद का अहसास होता है। इसे श्रीमुखवाणी में इन शब्दों में कहा गया है—

सुख हक इश्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सो करो विचार॥

सागर १२/३०

आप दे फरामोसी, और जगावें भी आप।

देखाई जुदाई फरामोस में, देने इस्क मिलाप॥६६॥

धाम धनी ने स्वयं ही अँगनाओं को माया की फरामोशी में डाला है और स्वयं ही जगा भी रहे हैं। माया के ब्रह्माण्ड में उन्होंने इश्क की जुदायगी दिखायी, ताकि पुनः इश्क मिलने पर इश्क के वास्तविक स्वरूप की पहचान हो सके।

ना मांग्या ना दिल उपज्या, दिल हकें उठाया एह।

तो मांग्या खेल जुदागीय का, देने अपना इस्क सनेह॥६७॥

न तो अँगनाओं ने खेल माँगा और न उनके दिल में खेल माँगने की इच्छा ही हुई। श्री राज जी ने ही अपने दिल में माया का खेल एवं अपना इश्क-स्नेह दिखाने की इच्छा की, तो सखियों ने यह जुदायगी का खेल माँगा।

इस्क तरंग उपजत है, दूर जाए मिलिए आए।

वास्ते इस्क हक के दिल का, खेल फरामोसी देखाए॥६८॥

इश्क का वास्तविक आनन्द तो तब मिलता है, जब बिछुड़ने के पश्चात् पुनः मिलन हो। धाम धनी ने अपने दिल में उमड़ने वाले इश्क के सागर को दिखलाने के लिये ही माया का यह खेल दिखाया है।

इस्क बिछुरे से जानिए, आए दूर थें मिलिए जब।

ए दोऊ बातें अर्स में ना थीं, इस्क चिन्हार देखाई अब॥६९॥

इश्क की पहचान या तो वियोग में होती है या लम्बे अन्तराल के बाद होने वाले संयोग में होती है। परमधाम में न तो संयोग था और न वियोग था। कालमाया के इस ब्रह्माण्ड में दोनों ही चीजें देखने को मिलीं, जिससे अब इश्क की पहचान हो गयी है।

जो हक का इस्क विचारिए, तो बड़ा दिल देत लज्जत।

ए बुजरक मेहरबानगी, हकें ऐसी दई न्यामत॥७०॥

यदि श्री राज जी के इश्क के सम्बन्ध में विचार किया जाये, तो दिल में उसका बहुत अधिक स्वाद आता है। धाम धनी की यह बहुत बड़ी मेहरबानी है, जो उन्होंने संयोग-वियोग वाले संसार में इश्क की पहचान रूपी न्यामत हमें दी है।

भावार्थ- फरामोशी में आने के कारण सखियों का धाम धनी से वियोग हुआ, किन्तु ब्रह्मवाणी और विरह-प्रेम के कारण संयोग हुआ। इस प्रकार की लीला परमधाम में सम्भव नहीं थी। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में ही इश्क की वास्तविक पहचान हुई है।

जैसा साहेब बुजरक, तैसा बुजरक इस्क।

जो दिल देय के देखिए, तो सुख आवे हक माफक॥७१॥

धाम धनी जितने महान हैं, उतना ही उनका इश्क भी महान है। हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप धनी को अपना दिल देकर देखें, तो प्रियतम अक्षरातीत की तरह ही आपको अनन्त आनन्द की प्राप्ति होगी।

भावार्थ- "दिल देने" का अर्थ होता है- अपने दिल का सर्वस्व भाव अपने प्रेमास्पद (माशूक) के लिये समर्पित कर देना। यही समर्पण की पराकाष्ठा है। समर्पण के इस स्तर तक पहुँचने पर जो इश्क का अमृत रस बहता है, उसमें आशिक-माशूक दोनों एक हो जाते हैं। इस स्थिति में आत्मा परब्रह्म के अनन्त आनन्द का रसपान करने लगती है। इसे ही चौथे चरण में "हक माफक" कहकर दर्शाया गया है।

आसिक की एही बन्दगी, जाहिर न जाने कोए।
और आसिक भी न बूझहीं, एक होत दोऊ से सोए॥

सिनगार २३/६८

जैसा मेहेबूब बुजरक, तैसा हादी हक का तन।

रुहें तन हादी माफक, इनों माफक बका वतन॥७२॥

मारिफत के स्वरूप श्री राज जी की गरिमा सर्वोपरि है।
लीला भेद से वे ही हकीकत के रूप में युगल स्वरूप श्री
राजश्यामा जी के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों का
स्वरूप अनन्त नूर और इश्क से भरपूर है। इसी प्रकार
सखियों का तन भी श्यामा जी जैसा है। सम्पूर्ण परमधाम
की शोभा सखियों जैसी नूरमयी इश्क से भरपूर है।

भावार्थ— श्री राज जी का स्वरूप अनन्त इश्क का
सागर है। उनके हृदय का स्वरूप श्यामा जी हैं, जो

आनन्द का स्वरूप हैं। श्यामा जी के हृदय की स्वरूपा (अँगरूपा) अँगनायें हैं, जिनमें इश्क और आनन्द क्रीड़ा कर रहा है। ऐसे ही सखियों की अँगरूपा खूब – खुशालियाँ हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम ही श्री राज जी के दिल का स्वरूप है, अर्थात् इश्क, आनन्द, नूर, सुगन्धि, तथा चेतनता से भरपूर है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी की यह चौपाइयाँ देखने योग्य हैं—

और तो कोई है नहीं, बिना एक हक जात।

जात माहें हक वाहेदत, हक हादी गिरो केहेलात॥

सिनगार २३/३

ना अर्स जिमीएं दूसरा, कोई और धरावें नाउँ।

ए लिख्या वेद कतेब में, कोई नाहीं खुदा बिना काहूँ।

खुलासा १६/८३

ऐसा साहेब इस्क, करत निसबत जान।

हाए हाए भूली अरवाहें असल, परत नहीं पेहेचान॥७३॥

ऐसे अक्षरातीत श्री राज जी सुन्दरसाथ से मूल सम्बन्ध के कारण प्रेम करते हैं। हाय! हाय! खेद की बात है कि अँगनायें धनी से अपने मूल सम्बन्ध को भुला चुकी हैं। उन्हें प्रियतम के इश्क की पहचान नहीं हो पा रही है।

भूले हक और आप को, और भूले बका घर।

हक हँससी इसी बात को, रुहें भूली क्यों कर॥७४॥

ब्रह्मसृष्टियाँ इस खेल में आकर श्री राज जी को, स्वयं को, तथा अपने अखण्ड घर परमधाम को भी भूल चुकी हैं। श्री राज जी इसी बात की हँसी करेंगे कि माया में अँगनायें सब कुछ भूल कैसे गयीं?

औलिया लिह्ला दोस्त, हकसों रखें निसबत।

फरामोसी दर्ई हाँसीय को, कछू चल्या न हकसों इत॥७५॥

कुरआन-हदीसों में इन ब्रह्ममुनियों को औलिया , लिह्लाह, और खुदा का दोस्त कहा गया है। ये अँगना भाव से अपना सम्बन्ध अक्षरातीत से रखते हैं। धाम धनी ने इन पर हँसी करने के लिये माया की फरामोशी में इन्हें डाला है। इस खेल में इन ब्रह्ममुनियों का श्री राज जी के सामने कुछ बल नहीं चला।

द्रष्टव्य- कुरआन की तरह वेद में अनेक मन्त्रों में सच्चिदानन्द परब्रह्म को सखा और प्रियतम के रूप में वर्णित किया गया है-

येषाम् इन्द्रो युवा सखा। साम ऐन्द्र काण्ड २।४।२।२।९

इन्द्रः सःनो युवा सखा। साम ऐन्द्र काण्ड २।२।४।३

यया सपत्निं बाधते यया संविन्दते पतिम्।

अथर्ववेद ३।१८।१

ब्रह्मवाणी से जाग्रत होने के पश्चात् सुन्दरसाथ की इस खेल में क्या स्थिति है और पहले क्या स्थिति थी, यह आगे की चौपाइयों में दर्शाया गया है?

कैसे थे इन खेल में, किन माफक थे तुम।

किन से ए निसबत भई, कैसा बका पाया खसम॥७६॥

हे सुन्दरसाथ जी! ब्रह्मवाणी का रसपान करने से पहले आपकी इस खेल में क्या स्थिति थी? आप किस योग्य थे? अब आपका सम्बन्ध किससे हो गया है? अब आपने कैसे अखण्ड-अनादि प्रियतम को पा लिया है?

भावार्थ- परमधाम के तारतम ज्ञान के बिना सुन्दरसाथ असहाय स्थिति में था। वह भी अन्य सांसारिक लोगों की तरह वृक्षों, पत्थरों, और नदियों के जल आदि की पूजा

किया करता था। उसे न तो अपने स्वरूप का बोध था और न अपने प्रियतम का। इस चौपाई के दूसरे चरण का यही भाव है।

कहां थे फना के खेल में, कैसा था अर्स घर दूर।

किन बुजरकों न पाइया, सो क्यों कर लिए तुमें हजूर॥७७॥

इसके पहले आप माया के नश्वर खेल के जाल में कैसे फँसे हुए थे? आपको परमधाम कितना दूर प्रतीत होता था? जिस परमधाम को आज दिन तक बड़े-बड़े ज्ञानी, सन्त, और भक्त जन नहीं प्राप्त कर सके, उसे आपने इतनी सरलता से कैसे प्राप्त कर लिया?

कैसा अर्स देखाइया, क्यों लिए खिलवत माहें।

ए जो अरवाहें अर्स की, क्यों अजूं विचारत नाहें॥७८॥

जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, वे इस समय भी इस बात का विचार क्यों नहीं करतीं कि धाम धनी ने जिस परमधाम की अनुभूति करायी है, वह कैसा है? प्रियतम अक्षरातीत ने क्यों आपकी सुरता को मूल मिलावा में पहुँचाया अर्थात् दीदार कराया?

किन सूरत न पाई हक की, न पाया अर्स बका ठौर।

सब कहें हमों न पाइया, कर कर थके दौर॥७९॥

आज दिन तक इस सृष्टि में कोई भी यह नहीं जान सका कि अखण्ड परमधाम कहाँ है। उनको यह भी पता नहीं चल सका कि सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप कैसा है। सभी का यही कहना है कि हम सारे प्रयास कर-कर थक गये, किन्तु उस परब्रह्म को हम प्राप्त नहीं कर सके।

धनी मलकूत के कई गए, पर पाया न नूर-मकान।

खोज खोज के कई थके, पर देख्या नहीं निदान॥८०॥

अब तक असंख्य वैकुण्ठों के स्वामी असंख्य विष्णु भगवान भी महाप्रलय में अपने मूल स्वरूप को प्राप्त होते रहे, किन्तु वे अक्षरधाम का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके। वे खोज-खोज कर थक गये, किन्तु अक्षर ब्रह्म का दर्शन नहीं कर सके।

भावार्थ- महानारायणोपनिषद् में कहा गया है कि एक आदिनारायण के रोम-रोम में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव सहित अनेकों ब्रह्माण्ड भ्रमण करते रहते हैं। आदिनारायण को निराकार से परे का बोध नहीं है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि विष्णु भगवान अक्षर धाम को जान सकें। श्रीमुखवाणी में इन बातों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

फिरे जहां थे नारायन, नाम धराया निगम।

सुन्य पार ना ले सके, हटके कहया अगम॥

सनंध ५/४०

प्रकृति पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥

किरंतन ६५/२०

एक इनसे बड़े कहे, ऐसे जाए जाकी नाक में।

तो भी उन्हें सुध ना पड़े, अन्दर फिरके मुंह निकसे॥

मारफत सागर ३/५३

यदि यहाँ यह कहा जाये कि अक्षर ब्रह्म की वासना होने से विष्णु भगवान और शिव जी तो अक्षर धाम तथा अक्षर ब्रह्म को जानते हैं, तो इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि उनका ज्ञान मात्र बेहद तक सीमित है।

उसके परे परमधाम में स्थित अक्षर धाम और अक्षर ब्रह्म के बारे में वे नहीं जानते। वे मूलतः सबलिक को अक्षर तथा केवल को अक्षरातीत मानते हैं।

ऐसा साहेब बुजरक, जो हमेसा कायम।

सो तले झांकत नूरजमाल के, आवे दीदारे दायम॥८१॥

अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी अक्षर ब्रह्म की इतनी महिमा है। उनका स्वरूप शाश्वत एवं अखण्ड है। वे भी धाम धनी के दर्शन करने के लिये हमेशा ही चाँदनी चौक में आते हैं और दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं।

कैसा हाल है तुमारा, हो कैसे वतन में तुम।

कौन बड़ाई तुमारी, हाए हाए आवे न याद खसम॥८२॥

हे साथ जी! इस बात पर विचार कीजिए कि इस नश्वर

संसार में आपकी स्थिति कैसी है? धाम धनी ने अपनी मेहर से आपकी ज्ञान दृष्टि को किस अखण्ड धाम में पहुँचा दिया है। धनी की अर्धांगिनी होने से आपकी गरिमा कितनी ऊँची है, इसका विचार क्यों नहीं करते? हाय! हाय! क्या आपको अब श्री राज जी की याद भी नहीं आती?

कैसा घर बुजरक बका, कैसी खसम साहेबी।

किन चाहया तुमारा दीदार, कैसी तिनकी है बुजरकी॥८३॥

इस बात का विचार कीजिए कि आपके अखण्ड घर परमधाम की महिमा कितनी बड़ी है तथा प्रियतम अक्षरातीत की साहिबी (स्वामित्व) कितनी महान है? वह कौन है, जो आपका दीदार चाहता था? उनकी महिमा कितनी महान है?

कैसी जिमी थी कुफर की, और कैसी थी अकल।

किन झूठे कबीले में थे, कैसे तुमारे अमल॥८४॥

इसके पहले आप किस नश्वर संसार में फँसे पड़े थे? आपकी बुद्धि भी किस प्रकार स्वप्न की थी? संसार के झूठे सम्बन्धियों के जाल में किस प्रकार उलझे हुए थे? इस मायावी जगत में आपका चाल-चलन कैसा था?

अब कैसा सहूर है तुम पे, पाई कौन सोहोबत।

किन कबीले में थे, अब कैसी राखत हो निसबत॥८५॥

अब आपका चिन्तन किस प्रकार का है? अब आपको किस प्रियतम के प्रेम का सान्निध्य मिला है? यह विचार कीजिए कि पहले आप किन परिवारों के मकड़जाल में फँसे थे? अब आप उनसे कैसा सम्बन्ध रखते हैं?

कैसी पाई सराफी, कैसी आई तुमें पेहेचान।

हक बका चीन्हया कौन जिमिएं, पाया कैसा इस्क ईमान॥८६॥

ब्रह्मवाणी से आपने कैसी जानकारी पायी है और अपनी कैसी पहचान हुई है? किस झूठे संसार में रहकर आपने श्री राज जी तथा अपने अखण्ड घर की पहचान की है? आपने किस प्रकार का इश्क और ईमान पाया है?

जागत हो के नींद में, विचारत हो के फरामोस।

सीधी बात जाग करत हो, तुम हो होस में के बेहोस॥८७॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप इस बात का विचार कीजिए कि आप जाग्रत अवस्था में हैं या माया की नींद में? आप चिन्तनमग्न हैं या बेसुध हैं? आप जाग्रत होकर श्री राज जी से सीधी बात कर रहे हैं या नहीं? इस समय आप सावचेत अवस्था (होश) में हैं या बेहोशी में?

विचार नींद में तो ना होए, जागे नींद रहे क्यों कर।

विचार देखो तो अचरज, देखो फरामोसी हाँसी दिल धर॥८८॥

निद्रावस्था में कोई विचार हो नहीं सकता और जाग्रत हो जाने पर तो नींद भी नहीं रह सकती। यदि इस पर विचार करके देखा जाये तो बहुत आश्चर्य होता है। हे साथ जी! इस फरामोशी की हाँसी के बारे में अपने दिल में विचार कीजिए।

आड़ा ब्रह्मांड देय के, ऐसी जुदागी कर।

करत गुफ्तगोए हजूर, खेल ऐसा किया जोरावर॥८९॥

हे धाम धनी! आपने माया का ऐसा शक्तिशाली खेल दिखाया है, जिसमें आपने हमारे और अपने बीच में ब्रह्माण्ड का परदा दे दिया है। अपने से जुदाई भी कर रखी है और इस तरह से बातें भी करते हैं, जैसे प्रत्यक्ष

ही उपस्थित हों।

ना तो बैठे हो कदम तले, पर लागत ऐसे दूर।

हक आप इस्क देखावने, करत आपनसों मजकूर॥९०॥

हे साथ जी! आप मूल मिलावा में धनी के चरणों में ही बैठे हैं, लेकिन खेल में ऐसा लग रहा है जैसे बहुत दूर हो गये हैं। धाम धनी अपना इश्क दिखाने के लिये ही हमसे बातें करते हैं।

हक का इस्क बढ़ाया, इस्क अपना जरा नाहें।

जब दर्ई इत बेसकी, तो इस्क क्यों न आवे दिल माहें॥९१॥

इस खेल में जहाँ धनी का इश्क बढ़ा हुआ है, वहीं अपना इश्क नाम मात्र के लिये भी नहीं है। आश्चर्य होता है कि जब धाम धनी ने अपनी ब्रह्मवाणी से हमें बेशक

कर दिया है, तो हमारे दिल में इश्क क्यों नहीं आता?

तुम कहोगे हम बेसुध हुए, दिल में रही ना खबर।

ना कछू रही सो अकल, तो इस्क आवे क्यों कर॥९२॥

हे साथ जी! इसके उत्तर में आप कह सकते हैं कि इस माया के संसार में आकर हम पूरी तरह से बेसुध हो गये। हमारे दिल में जरा भी धाम धनी या परमधाम का ज्ञान नहीं रहा। जब हमारे पास धाम की जाग्रत बुद्धि और निजबुद्धि ही नहीं रही, तो हमारे अन्दर इश्क कहाँ से आ जाता?

ना सुध आप ना खसम, ना सुध घर गुफ्तगोए।

ज्यों जीवत मुरदे भए, रूहें क्यों कर बल होए॥९३॥

इस खेल में न तो हमें अपनी सुध है और न धनी की।

परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द की बातों की भी जानकारी नहीं है। हमारी स्थिति तो ऐसी बन गयी है, जैसे जीवित रहते हुए ही कोई मृतक समान हो जाये। ऐसी स्थिति में जाग्रत होने के लिये आत्मिक बल कहाँ से आ सकता है?

आप भूले बेसक, बेसक भूले खसम।

बेसक भूले बुध वतन, पर हकें बेसक दिया इलम॥९४॥

इसमें कोई शक नहीं है कि इस मायावी खेल में हम स्वयं को तथा अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को भूल चुके हैं। यहाँ तक कि हम अपने निजधाम तथा निजबुद्धि को भी भुला चुके हैं, किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि धाम धनी ने हमें संशय रहित करने वाली ब्रह्मवाणी तो दी है।

मुए भी इत बेसक, और जिए भी बेसक।

सहूर भी बेसक दिया, दिया इलम बेसक हक॥९५॥

यह तो निश्चित है कि इस संसार में अज्ञानता के अन्धकार से आवृत्त होकर हम मृतक के समान हो गये थे, किन्तु धाम धनी ने हमारे हृदय में ब्रह्मवाणी का प्रकाश देकर हमें जीवित भी कर दिया है। धनी ने हमें अपनी मेहर से संशय रहित चिन्तन की शक्ति दी और सबके संशयों को दूर करने वाली श्रीमुखवाणी भी दी।

तब सुध पाई सब बेसक, हुए बेसक खबरदार।

हकें ऐसी दर्ई बेसकी, हुए बेसक बेसुमार॥९६॥

ब्रह्मवाणी का ज्ञान मिलने के पश्चात् हमें सारी सुध आ गयी और निश्चित रूप से हम अपनी करनी-रहनी के प्रति सावचेत हो गये। धाम धनी ने हमें अपने ज्ञान से

इतना बेशक कर दिया है कि अब उसकी कोई सीमा ही नहीं है।

इनहीं बात की हाँसी है, उड़त ना फरामोस।

ना तो जब बेसक हुए, हाए हाए क्यों न आवत होस॥९७॥

इतना होने पर भी हमारी इस बात की हंसी हो रही है कि हमारे अन्दर से माया की नींद क्यों नहीं समाप्त होती? हाय! हाय! कितने आश्चर्य की बात है कि इस समय हम पूर्ण रूप से संशय रहित तो हैं, किन्तु हमारे अन्दर अभी भी बेहोशी बनी हुई है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि चाहे हम ब्रह्मवाणी का कितना ही ज्ञान क्यों न प्राप्त कर लें और परमधाम तथा धाम धनी के प्रति कितना ही संशय रहित क्यों न हो जायें, फिर भी यदि हमारे पास धनी का

इश्क नहीं है तो हमारे दिल में धनी की शोभा नहीं विराजमान हो सकती और हमारे अन्दर से माया की नींद भी नहीं जा सकती।

एही हाँसी इसही बात की, फरामोसी में जाग्रत।

जागे में भी सक नहीं, कोई ऐसी इस्कें करी जो इत॥९८॥

हमारी हँसी इसी बात की होनी है कि फरामोशी के इस ब्रह्माण्ड में यद्यपि हम ज्ञान दृष्टि से जाग्रत हैं, फिर भी हमारे अन्दर से नींद की बेसुधी (मायावी विकारों के प्रति आसक्ति) नहीं जा रही है। धनी के इश्क ने ऐसी विचित्र लीला की है कि हमारे ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होने में तो कोई शक नहीं है, फिर भी हमारे अन्दर इश्क नहीं है जिससे हमारी स्थिति नींद में डूबने जैसी बनी हुई है।

बैठाए बेसक अर्स में, और जगाए बेसक।

हाँसी भी बेसक हुई, जो आया नहीं इस्क॥९९॥

यद्यपि धाम धनी ने ब्रह्मवाणी द्वारा हमें निश्चित रूप से परमधाम-मूल मिलावा में बैठा दिया है अर्थात् हमें ज्ञान दृष्टि से परमधाम की ओर उन्मुख करके जाग्रत कर दिया है, इसमें कोई भी शक नहीं है। इसके साथ ही विशेष बात यह है कि इस्क न आने के कारण निश्चित रूप से हमारी हँसी होनी है।

कहे महामत तुम पर मोमिनों, दम दम जो बरतत।

सो सब इस्क हक का, पल पल मेहेर करत॥१००॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! आपके साथ इस खेल में जो पहले पल-पल बीता करता था, वर्तमान में बीत रहा है, और भविष्य में भी पल-पल

घटित होगा, उन सबमें श्री राज जी का प्रेम भीना हुआ है। आप पर पल-पल धनी की मेहर बरस रही है।

भावार्थ- जिस प्रकार सूर्य निरन्तर तेजोमयी प्रकाश देता है और चन्द्रमा भी अबाध रूप से अपनी चाँदनी की शीतलता से संसार को सुख देता है, उसी प्रकार अक्षरातीत के हृदय का इश्क पल-पल ब्रह्ममुनियों पर बरस रहा है। यदि हमारे साथ कोई दुःख की घटना घटित भी होती है तो उसमें भी कहीं न कहीं धनी का प्रेम छिपा होता है। हमारे ऊपर उनकी मेहर और इश्क की वर्षा तो निरन्तर होती ही है। यदि हमें उसका अहसास नहीं होता है, तो यह आत्म-मन्थन करने की आवश्यकता है कि हमारे दिल रूपी बर्तन में छिद्र कहाँ पर है?

प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥७०५॥

बुलाए ल्याओ तुम रुहअल्ला

यह प्रकरण उस प्रसंग से सम्बन्धित है, जिसमें श्री राज जी ने श्री देवचन्द्र जी को श्याम जी के मन्दिर में दर्शन देकर कहा था। यह कथन परमधाम का नहीं है, क्योंकि इसी प्रकरण की चौपाई १७-२६ तक में सखियों के इस खेल में भूल जाने का वर्णन किया गया है।

ल्याओ बुलाए तुम रुहअल्ला, जो रुहें मेरी आसिक।

रब्द किया प्यार वास्ते, कहियो केहेलाया हक॥१॥

श्री राज जी ने श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी) से कहा कि हे श्यामा जी! परमधाम की जिन आत्माओं ने स्वयं को आशिक होने का दावा किया था और परमधाम में मुझसे प्रेम के सम्बन्ध में रब्द किया था, उनसे कहना कि श्री राज जी ने मुझसे ऐसा कहा है।

रुहअल्ला सों बका मिने, हकें करी मजकूर।

उतरी अरवाहें अर्स से, बुलाए ल्याओ हजूर॥२॥

श्री राज जी ने परमधाम में श्यामा जी से होने वाली अपनी वार्ता का वर्णन करते हुए कहा कि हे श्यामा जी! निजधाम से जो भी आत्मायें इस खेल में आयी हुई हैं, उन्हें तारतम ज्ञान द्वारा जाग्रत करके मेरे सम्मुख (चरणों में) लाओ।

भावार्थ- इस चौपाई की पहली पंक्ति के बाह्य अर्थ से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे श्री राज जी ने परमधाम में ही कहा है कि आप सबको जाग्रत करके मेरे चरणों में लाइये, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री राज जी ने परमधाम में होने वाली वार्ता का जिक्र किया था। वहदत के सिद्धान्त के अनुसार सभी सखियाँ श्यामा जी के साथ ही खेल में

आयीं। "रूह अल्ला मिसल गाजियों, मोमिन उतरे तब" का कथन इसी सन्दर्भ में है। सभी अँगनाओं को खेल में भेजकर श्यामा जी से परमधाम में अकेले वार्ता करना वहदत के सिद्धान्त का उल्लंघन है।

इस चौपाई के चौथे चरण का मूल भाव है— आत्मा को जाग्रत करके धनी के सम्मुख करना। अक्षरातीत तो हर आत्मा के सम्मुख सर्वदा हैं ही, किन्तु आत्मा भी ऐसा ही अनुभव करे कि मैं धनी के पास हूँ।

हक बका का बातून, जो किया रूहों सो गुझ।

केहेलाइयां बातें छिपियां, खिलवत करके मुझ॥३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों के बीच होने वाला इश्क-रब्द ही परमधाम की गुह्य बात है। युगल स्वरूप ने मेरे धाम हृदय में

विराजमान होकर परमधाम की गुह्य बातें मेरे तन से कहलवार्यीं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में प्रयुक्त "खिलवत करके" का भाव है- युगल स्वरूप का दिल में विराजमान हो जाना। अर्श दिल हुए बिना खिल्वत का आशय पूरा नहीं होता।

मैं वास्ता कहूं तुमको, उतरियां कारन इन।

इनों रब्द किया इस्क का, आगूं मेरे बीच वतन॥४॥

श्री राज जी श्याम जी के मन्दिर में श्यामा जी से कह रहे हैं कि मैं वह कारण बताता हूँ, जिसके कारण आप सभी को इस नश्वर संसार में आना पड़ा है। इन अँगनाओं ने परमधाम में मुझसे प्रेम का विवाद (इश्क-रब्द) किया था।

करी रूहों मसलहत मिलके, कहे हमको प्यारे हक।

और बड़ीरूह प्यारी हमको, ए बात जानो मुतलक॥५॥

सभी सखियों ने मिलकर आपस में विचार किया और कहा कि हे धाम धनी! आप हमारी इस बात को निश्चित रूप से सत्य मानिये कि आप हमें बहुत प्यारे हैं, अर्थात् हम आशिक हैं क्योंकि हम आपसे प्रेम करती हैं। इसी प्रकार श्यामा जी भी हमें बहुत प्यारी हैं।

बड़ीरूह कहे प्यारे मुझे, मेरा साहेब बुजरक।

और प्यारी रूहें मेरे तन हैं, ए जानो तुम बेसक॥६॥

उनकी इस बात पर श्यामा जी ने कहा कि हे धाम धनी! आप इस बात को निश्चित रूप से सत्य मानिये कि आप सबसे महान हैं, किन्तु आप मुझे प्यारे हैं अर्थात् आपकी आशिक मैं हूँ। ये सभी सखियाँ मेरे ही तन हैं, और ये भी

मुझे बहुत प्यारी हैं।

तुम रूहें नूर मेरे तन का, इन विध केहेवे हक।

बोहोत प्यारी बड़ीरूह मुझे, मैं तुमारा आसिक॥७॥

उनकी इस बात को सुनकर श्री राज जी ने इस प्रकार कहा कि हे सखियों! तुम सभी मेरे तन का नूर हो। मुझे श्यामा जी बहुत प्यारी हैं। इस प्रकार मैं श्यामा जी सहित सभी सखियों का आशिक हूँ।

भावार्थ- इस प्रकरण की छठी चौपाई में श्यामा जी ने कहा है कि सखियाँ मेरे तन हैं और सातवीं चौपाई में तथा अन्य में भी कहा गया है कि तुम रूहें मेरे तन हो अर्थात् सभी सखियाँ श्री राज जी के तन का नूर हैं या तन हैं। यहाँ यह संशय हो सकता है कि यथार्थ में सखियाँ किसकी तन हैं- श्री राज जी की या श्यामा जी

की?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इस संसार में तन और अंग के नाम पर झिक-झिक होनी स्वाभाविक है, किन्तु परमधाम में ऐसा कुछ भी नहीं है। हमारी बुद्धि में वहाँ की लीला को समझाने के लिये ही शब्दों में ऐसा कहा गया है। मारिफत के स्वरूप एकमात्र श्री राज जी ही हकीकत के रूप श्यामा जी, सखियों, और २५ पक्षों के स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। सम्पूर्ण परमधाम एक अक्षरातीत का ही स्वरूप है, जो नूर, इश्क, वहदत आदि के स्वरूप में प्रकट होता है।

प्यार हक का ज्यादा हमसों, ए उपजी रूहों दिल सक।

इस्क हमारा हक सों, क्या नहीं हक माफक॥८॥

यह सुनकर सखियों के दिल में संशय पैदा हो गया कि

श्री राज जी का प्रेम हमसे ज्यादा कैसे हो सकता है?
क्या हमारा प्रेम श्री राज जी के प्रेम के बराबर भी नहीं
है?

और भी ए रूहों कह्या, हक प्यारे हैं हमको।

और प्यारी बड़ीरूह, जरा सक नहीं इनमों॥९॥

सखियों ने भी अपनी यह बात कह दी कि इसमें कोई
भी संशय नहीं है कि श्री राज जी हमें बहुत प्यारे हैं तथा
श्यामा जी भी हमें बहुत प्यारी हैं, अर्थात् हम सभी
सखियाँ श्री राज जी और श्यामा जी की आशिक हैं।

तब ए बात सुन हकें कह्या, मैं प्यारा हों तुमको।

पर मैं आसिक अरवाहों का, सो कोई जानत नहीं तुममों॥१०॥

उनकी इस बात को सुनकर श्री राज जी ने कहा कि हे

सखियों! यह सत्य है कि मैं तुमको बहुत प्यारा हूँ, किन्तु तुम्हारा आशिक मैं हूँ। इस भेद को तुममें से कोई भी नहीं जानता है।

तुम ज्यादा प्यार कहया अपना, हादी कहे मेरा अधिक।
मैं कहया प्यार मेरा ज्यादा, तब तुमें उपजी सक।।११।।

तुम कहती हो कि तुमारा प्रेम अधिक है और श्यामा जी कहती हैं कि उनका प्रेम अधिक है, किन्तु जब मैं कहता हूँ कि मेरा प्रेम अधिक है तो तुम्हारे मन में संशय क्यों उत्पन्न होता है?

तुम रूहें मेरे नूर तन, सो वाहेदत के बीच एक।

इस्क बेवरा बका मिने, क्यों पाइए ए विवेक।।१२।।

हे सखियों! तुम सभी मेरे नूरी तन हो। परमधाम की इस

वहदत में हम सभी का एक ही स्वरूप है, इसलिये इस धाम में इश्क का ब्योरा हो ही नहीं सकता।

तुम बड़ा इस्क कहया अपना, मेरा न आया नजर।

खेल देखाया तिन वास्ते, अब देखो सहूर कर॥१३॥

तुमने अपने इश्क को तो मेरे इश्क से बड़ा कहा, किन्तु तुम्हें मेरा इश्क नहीं दिखायी दिया। यही कारण है कि मैंने तुम्हें माया का यह खेल दिखाया है। इस माया के संसार में तुम विचार करके देखो कि किसका इश्क बड़ा है?

भावार्थ— संसार के सभी धर्मग्रन्थों का यही कथन है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म ही सर्वोपरि है। ज्ञान, प्रेम, शक्ति, आनन्द आदि किसी भी क्षेत्र में कोई भी उनसे अधिक न तो कभी था, न वर्तमान में है, और न कभी भविष्य में

होगा ("न त्वावां अन्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते" –अथर्ववेद)। अपने प्रेम को बड़ा कहने की भूल उनकी ही अँगरूपा आत्माओं ने की थी, किन्तु वहदत में सबका एक ही स्वरूप होने से यह बात कही गयी। वहाँ आशिक और माशूक एक ही स्वरूप हैं, तो यह स्वाभाविक है कि दोनों स्वयं को आशिक होने का दावा कर सकते हैं और वह सच भी है।

ए बेवरा बीच बका मिने, इस्क का न होए।

दई जुदागी तिन वास्ते, बात करी बका में सोए॥१४॥

परमधाम की एकदिली में इश्क का ब्योरा होना सम्भव नहीं था। तुमने परमधाम में अपने प्रेम को बड़ा कहा था, इसलिये मैंने तुम्हें जुदायगी का यह खेल दिखाया है।

छिपाइयां अपनी मेहेर में, देखाया और आलम।

देखो कौन आवे दौड़ अर्स में, लेय के इस्क खसम॥१५॥

मैंने तुम्हें मेहर की छाँव तले रखा है और मूल मिलावा में ही बैठाकर माया का झूठा संसार दिखाया है। अब देखना यह है कि मेरा इश्क लेकर कौन दौड़ते हुए परमधाम में आती है?

भावार्थ— दौड़ते हुए आने का भाव है— प्रेम लेकर बहुत शीघ्रतापूर्वक परमधाम के ध्यान में स्वयं को डुबो देना। यह संसार तभी छूटेगा, जब हम युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों के ध्यान में लग जायेंगे।

रुहों ऐसा खेल देखाऊं मैं, जित झूठे झूठ पूजत।

ढूँढे अव्वल आखिर लग, तो हक न कहूं पाइयत॥१६॥

सखियों! मुझे तुम्हें ऐसा खेल दिखाना है, जिसमें झूठे

मनुष्य झूठे जड़ पदार्थों की पूजा करते हैं। वे सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर महाप्रलय होने तक मुझे (परब्रह्म को) ढूँढते रहते हैं, लेकिन कोई भी प्राप्त नहीं कर पाता।

भावार्थ- महाप्रलय में सभी प्राणी आदिनारायण में लय हो जाते हैं, इसलिये इस चौपाई में परमात्मा की खोज में लगे हुए मनुष्यों, देवताओं, और असुरों को "झूठे" शब्द से सम्बोधित किया गया है। उपास्य के रूप में माने जाने वाले सभी देवी-देव एवं जड़ पदार्थ नश्वर हैं।

आए फंसे तिन फरेब में, पानी पत्थर आग पुजात।

अर्स साहेब कायम की, कहूं सुपने न पाइए बात॥१७॥

ब्रह्मसृष्टि ऐसे झूठे संसार में फँस गयी है, जिसमें पानी, पत्थर, और अग्नि की पूजा होती है। इस संसार में तो अखण्ड परमधाम और अक्षरातीत की बात कोई सपने में

भी नहीं करता।

द्रष्टव्य- पौराणिक हिन्दू ही नदियों के रूप में जल की, पत्थरों की मूर्तियों की, तथा अग्नि की पूजा करते हैं। इसी प्रकार पारसी भी अग्नि की पूजा करते हैं। वैदिक मान्यता वाले हिन्दू यज्ञ करते हुए भी अग्नि को पूज्य नहीं मानते। मूर्ति पूजा किसी न किसी रूप में संसार के अधिकतर पन्थों में है। मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी माने जाने वाले इस्लाम धर्म में भी "संगे असवद" को चूमा जाता है तथा पीरों की मजारों पर चादरें चढ़ायी जाती हैं। यह सब मूर्ति पूजा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

आइयां तिन आलम में, जित हक को न जानत कोए।

पूजें खाहिस हवाए को, जो कोई इनमें बुजरक होए॥१८॥

ब्रह्मसृष्टि ऐसे झूठे संसार में आयी है, जिसमें कोई भी

सच्चिदानन्द परब्रह्म को नहीं जानता। इस संसार में जो बड़े-बड़े ज्ञानीजन हैं, वे भी लौकिक इच्छाओं में बँध जाते हैं तथा निराकार को ही परब्रह्म मानकर उपासना करते हैं।

झूठे मोहोरे जो खेल के, मिल गैयां माहें तिन।

कबीला कर बैठियां, कहे एह हमारा वतन॥१९॥

इस संसार के अग्रगण्य ब्रह्मा, विष्णु, और शिव की सृष्टि में ब्रह्मसृष्टियाँ भी मिल गयीं। वे सांसारिक जीवों जैसा ही आचरण करने लगीं और अपने-अपने परिवार बनाकर यही कहने लगीं कि यह संसार ही हमारा परमधाम है।

समझाईयां समझें नहीं, मानें नहीं फुरमान।

कहें कौन तुम कौन हम, अपने कैसी पेहेचान॥२०॥

अब तो वे इतनी अधिक भटक गयी हैं कि समझाने पर भी नहीं समझतीं। वे श्री राज जी के आदेश को भी नहीं मानतीं। वे साफ शब्दों में कहती हैं कि हमें नहीं मालूम कि आप कौन हैं तथा हम कौन हैं? हम तो आपको जरा भी नहीं पहचानतीं।

ए सोई हमारा साहेब, जो बड़कों दिया बताए।

ए पत्थर पानी आग है, पर हमसों छोड़या न जाए॥२१॥

हम भी इस बात को जानती हैं कि यह सब अग्नि, पानी, और पत्थर की ही पूजा है, लेकिन हम इसे नहीं छोड़ सकतीं, क्योंकि हमारे पूर्वजों ने यही बताया है कि इनकी पूजा ही परमात्मा की पूजा है। इसलिये हम इनको ही परमात्मा मानेंगी।

बड़के हमारे कदीम के, पूजत आए ए।

सो क्यों छूटे हमसे, रब बाप दादों का जे॥२२॥

हमारे बाप-दादा सदा से ही अग्नि, पानी, और पत्थरों की पूजा करते आये हैं। वे इनको ही अपना परमात्मा मानते आये हैं। ऐसी स्थिति में अपनी वंशानुगत परम्पराओं को हम कैसे छोड़ सकती हैं?

रब रसूल बतावे गैब का, हम पूजें जाहेर।

हम बातून को पोहोंचे नहीं, देखें नजर बाहेर॥२३॥

भले ही रसूल मुहम्मद साहिब (सल्ल.) इस संसार से परे (अदृश्य) परमधाम में परब्रह्म का स्वरूप बताते हैं, किन्तु हम तो प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले मन्दिरों, मस्जिदों, और गिरजाघरों में ही परमात्मा को खोजती हैं। हम इस संसार से अदृश्य रहने वाले परमात्मा को नहीं

जानती। हमारे लिये तो दिखायी देने वाले पूजा स्थलों में ही परब्रह्म विराजमान है। अगली चौपाई में सांसारिक लोगों की स्थिति का वर्णन किया गया है।

केतिक करें लड़ाइयां, सामी देवें फरेब।

कौन रसूल कौन रुहअल्ला, कौन वेद कौन कतेब॥२४॥

कुछ लोग आपस में लड़ते-झगड़ते भी हैं, तो कुछ लोग अपने पड़ोसी (सामने वाले) को धोखा भी देते हैं। वे कहते हैं कि हम नहीं जानते कि कौन रसूल मुहम्मद साहिब है, तो कौन रुहअल्लाह (श्यामा जी) हैं? वेद और कतेब क्या होते हैं? हमें इनसे कुछ भी लेना-देना नहीं है।

इन हाल जो दुनियां, ए गईयां तिन में मिल।

मोहे इस्क बिना पावें नहीं, रूहों ऐसी भई मुस्किल॥२५॥

श्री राज जी कहते हैं कि संसार की ऐसी हालत है कि ब्रह्मसृष्टियाँ भी उनमें मिलकर भटक गयी हैं। सखियों के लिये यह बहुत ही विकट स्थिति है क्योंकि इस संसार में वे मुझे बिना प्रेम के नहीं पा सकतीं।

कठिन हाल है रूहों का, पर तुम विरचो जिन।

भूल गईयां उन्हें सुध नहीं, हाँसी एही मोमिन॥२६॥

माया के इस ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ की स्थिति बहुत ही शोचनीय (नाजुक, चिन्तनीय) है। हे श्यामा जी! आप उनको इस स्थिति में छोड़कर अलग नहीं होना, बल्कि तारतम ज्ञान के द्वारा जाग्रत करना। ब्रह्मसृष्टियों को माया में मेरी जरा भी सुध नहीं है और वे मुझे भूल गयी हैं।

इसी बात पर उनकी हँसी होनी है।

बड़ी हाँसी इत होएसी, जब सब होसी रोसन।

खेल खुसाली इत होएसी, इस्क बेवरे इन॥२७॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में जब सभी आत्मायें जाग्रत हो जायेंगी और परमधाम पहुँचेगी, तो वहाँ बहुत अधिक हँसी होगी। इश्क का निर्णय हो जाने से वहाँ बहुत अधिक आनन्द होगा।

एक रोसी एक हँससी, होसी खूबी बड़ी खुसाल।

बिना इस्क बीच अर्स के, कोई देखे न नूरजमाल॥२८॥

इस खेल में एक हँसेगी, तो एक रोयेगी। परमधाम में वापस पहुँचने पर बहुत अधिक आनन्द आयेगा। बिना इश्क के किसी की भी दृष्टि न तो परमधाम में पहुँचेगी

और न मेरा दीदार ही कर सकेगी।

रोसी इनहीं हाल में, वास्ते हाँसी के।

मुदा सब हाँसीय का, फरामोसी का जे॥२९॥

माया के इस खेल में अपनी हँसी कराने के लिये ब्रह्मसृष्टियाँ खूब रोयेंगी भी। माया की फरामोशी के इस ब्रह्माण्ड में आने का आशय (मुद्दा) ही हँसी कराना है।

रुहअल्ला एता कहियो, तुम मांग्या सो फरामोस।

जब इस्क ज्यादा आवसी, तब आवसी माहें होस॥३०॥

हे श्यामा जी! उन सखियों से आप इतना ही कहना कि तुमने माया का खेल देखने की इच्छा की थी, इसलिये तुमको यह झूठा खेल दिखाया गया है। जब तुम अपने दिल में मेरे लिये बहुत अधिक प्रेम भरोगी, तभी तुम

माया की नींद से अलग हो सकोगी।

मैं छिपा हों इनसे, रूहें नजर में ले।

वह देखत झूठा आलम, मोको देखत नहीं ए॥३१॥

मैंने सखियों को मूल मिलावा में अपनी नजरों के सामने ही चरणों में बिठा रखा है किन्तु इनसे छिप सा गया हूँ, अर्थात् मूल मिलावा में भी ये मुझे नहीं देख पा रही हैं। इनकी नजर (हुक्म की) माया के झूठे संसार को देख रही है।

जब इस्क इनों आवसी, तब देखेंगे मुझको।

इस्क बिना इन अर्स में, मैं मिलों नहीं इनसों॥३२॥

ये मुझे तभी देख पायेंगी, जब इनके अन्दर मेरे लिये इश्क पैदा होगा। इश्क लेकर जब तक ये अपने मूल तनों

में जाग्रत नहीं होगी, तब तक मैं इनसे परमधाम में नहीं मिल सकूँगा।

भावार्थ- इश्क के द्वारा ही आत्मा जाग्रत होती है और चितवनि द्वारा मूल मिलावा में विराजमान अक्षरातीत का दीदार करती है, किन्तु इस चौपाई में परात्म में जाग्रत होकर धनी से मिलने की बात कही गयी है। परात्म में जाग्रति एकसाथ होगी, जबकि आत्माओं की जाग्रति आगे-पीछे इश्क लेकर होगी।

रब्द रूहों ने हकसों, किया इस्क का जोए।

तो अर्स में इस्क बिना, पैठ न सके कोए॥३३॥

अँगनाओं ने मुझसे इश्क का ही रब्द किया था, इसलिये जब तक उनके अन्दर इश्क नहीं आयेगा, तब तक न तो आत्मिक रूप से जाग्रत हो सकेंगी और न परात्म में

जाग्रत होकर परमधाम ही आ सकेंगी।

इनों रब्द किया इस्क का, हम जैसा हक का नाहें।

दई फरामोसी इन वास्ते, देखों कैसा इस्क इनों माहें॥३४॥

इन्होंने मुझसे इस बात का विवाद किया था कि उनके इश्क के समान मेरा इश्क नहीं है। मैंने इसी कारण इन्हें माया के संसार में भेजा है, ताकि यह देखा जा सके कि इनके अन्दर कितना इश्क है?

ऐसी देखाई दुनियां, जित कोई हक को जानत नाहें।

काहूँ तरफ न पाइए अर्स की, बैठे बका बैत के माहें॥३५॥

मैंने सखियों को ऐसी दुनियां दिखायी है, जिसमें कोई भी मुझे नहीं जानता। वहाँ कहीं भी कोई परमधाम का ज्ञान देने वाला नहीं है। यद्यपि इनके मूल तन परमधाम

में हैं, फिर भी इन्हें परमधाम दिखायी नहीं पड़ रहा।

पार ना अर्स जिमीय का, बैठियां कदम तले इत।

ऐसा पट आड़ा किया, जानूं कहूं गईयां हैं कित॥३६॥

परमधाम का विस्तार अनन्त है। सखियाँ मूल मिलावा में ही मेरे चरणों में बैठी हुई हैं , किन्तु उनके सामने फरामोशी का ऐसा परदा है कि उन्हें ऐसा लगता है कि वे कहीं बाहर चली गयी हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार दूरदर्शन के परदे पर दृश्य देखते-देखते हम स्वयं को भूल जाते हैं तथा परदे पर दिखने वाले दृश्य के वास्तविक स्थान पर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार श्री राज जी ने अपने दिल रूपी परदे पर माया का खेल दिखाया है और हमारी सुरता (हुक्म की) को माया में उतारा है। इसी को कहते हैं-

परदा भी कहया दिल को, फरामोसी भी कहया दिल।

सिनगार ११/६९

जब याद तुमें मैं आऊंगा, तबहीं बैठोगे जाग।

गए आए कहूं नहीं, सब रूहें बैठी अंग लाग॥३७॥

जब तुमको (सखियों को) मेरी याद आयेगी, तो तुम तुरन्त ही जाग्रत हो जाओगी। सभी सखियाँ तो मूल मिलावा में एक-दूसरे से लिपट कर बैठी हैं। उनके कहीं बाहर जाने या आने का प्रश्न ही नहीं है।

भावार्थ- सखियों के नूरी तन का खेल में आना तो किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। धनी के हुक्म से उनकी सुरता इस नश्वर जगत को देख रही है और धनी का प्रेम लेकर वह ही निजधाम जायेगी। इसे ही सखियों का आना और जाना कहते हैं। श्रीमुखवाणी में इसे इस

प्रकार कहा गया है—

महामति कहे अरवाहें अर्स से, जो कोई आई होए उतर।
सो इन स्वरूप के चरण लेय के, चलिए अपने घर॥

सागर ८/११८

मैं लाड़ किया रूहन सों, वास्ते इस्क इन।

क्यों ना लें मेरा इस्क, अंग असलू मेरे तन॥३८॥

इन सखियों का प्रेम देखने के लिये ही मैंने इनसे लाड किया। जब ये मेरे नूरी तन हैं और दिल के अंग हैं, तो मेरा इश्क लेकर ये जाग्रत क्यों नहीं हो जातीं?

भावार्थ— लाड करने का अर्थ होता है— चाहना करना, प्यार करना। आशिक ही माशूक को रिझाता है (लाड करता है)। इसकी अगली चौपाई में कहा गया है कि सखियाँ धाम धनी को हमेशा ही रिझाती थीं किन्तु जब

धनी ने लाड किया तो उन्हें माया में आना पड़ा, अर्थात् मेहर का दरिया दिल में लिया तो रूहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपजा।

अक्षरातीत ही श्यामा जी और सखियों के रूप में होकर, स्वयं ही, स्वयं को रिझाते हैं। सखियाँ अनादि काल से धनी को रिझाती रही हैं, इसलिये उन्होंने स्वयं को आशिक कह दिया। जब धनी ने लाड किया अर्थात् रिझाया, तो अपने दिल के मारिफत का सारा खजाना ही लुटा दिया। इसी को श्रीमुखवाणी में अन्यत्र कहा गया है कि मेरे एक ही लाड में सभी बह गयीं, अर्थात् मेरे अनन्त प्रेम को सम्भालने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं रहा।

बोहोत लाड़ किए मुझसों, इनों अर्स में मिल।

एक लाड़ किया मैं इनों से, प्यार देखन सब दिल॥३९॥

सब सखियों ने मिलकर परमधाम में मुझसे बहुत अधिक प्यार किया। मैंने इनके दिल का प्रेम देखने के लिये केवल एक ही लाड किया (प्यार किया), जिसके कारण इन्हें माया का खेल देखना पड़ा।

भावार्थ- अपनी स्वलीला अद्वैत वहदत का रहस्य बताने के लिये ही धाम धनी ने यह खेल बनाया। धनी के ही इश्क से सखियाँ उन्हें रिझाती थीं। जब वे अपने इश्क को बड़ा कहती हैं, तो देखना यह है कि माया में इश्क न रहने पर वे कहाँ से इश्क लाती हैं और धनी को रिझाती हैं? इसी को कहा गया है कि सखियों के दिल का प्रेम देखने के लिये धनी ने लाड किया।

मैं फुरमान भेज्या है अव्वल, हाथ अमीन रसूल।

इमाम भेज्या रूहों वास्ते, जिन जावें ए भूल॥४०॥

मैंने शुरु में ही यह निर्णय ले लिया था कि ब्रह्मसृष्टियों को साक्षी देने के लिए शुरु में ही सत्य स्वरूप रसूल मुहम्मद साहिब (सल्ल.) के हाथों से कुरआन भिजवाना है और बाद में आखरुल इमाम मुहम्मद महदी को भेजना है, ताकि सखियाँ माया में भूल न जायें।

भावार्थ- श्यामा जी के साथ होने वाली राज जी की वार्ता से पहले ही इमाम महदी (श्री प्राणनाथ जी) का भेज दिया जाना सम्भव नहीं है। यह बात भविष्य काल के लिये कही गयी है, जो श्री राज जी के दिल में थी।

याद दीजो अरवाहों को, जो मैं करी खिलवत।

सो ए लिखी फुरमान में, रमूजें इसारत॥४१॥

हे श्यामा जी! मूल मिलावा में मैंने जो भी बातें कही थीं, उसे सभी सुन्दरसाथ को याद दिलाना। ये सारी बातें

गुह्य संकेतों के द्वारा धर्मग्रन्थों (कुरआन, पुराण संहिता, तथा माहेश्वर तन्त्र) में लिखी हुई हैं।

अव्वल बातें जो अर्स की, जाए कहियो तुम।

फुरमान पेहेले भेजिया, लिखी हकीकत हम॥४२॥

हे श्यामा जी! आप परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द की बातें सुन्दरसाथ से कहना और यह भी बताना कि धर्मग्रन्थों (कुरआन, पुराण संहिता, तथा माहेश्वर तन्त्र) में परमधाम की इन सब बातों को लिखवाकर मैंने पहले ही भिजवा दिया है।

बातें बका में जो हुई, जब उनों होसी रोसन।

तब तुरत ईमान ल्यावसी, जो मेरे हैं मोमिन॥४३॥

परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द की बातें जब मेरी

अँगनाओं को मालूम होंगी, तो वे तुरन्त ही मेरे ऊपर
अटूट विश्वास (ईमान) ले आयेंगी।

इलम मेरा उनों में, जाए करो जाहेर।

मैं सेहेरग से नजीक, नहीं बका थें बाहेर॥४४॥

हे श्यामा जी! आप जाकर परमधाम का यह ज्ञान उन
आत्माओं को बताइये। मैं अपने नूरी स्वरूप से परमधाम
से बाहर भी नहीं हूँ, किन्तु इस संसार में सुन्दरसाथ की
प्राणनली से भी अधिक निकट हूँ।

तुम बैठे मेरे कदम तले, कहूं गईयां नाहीं दूर।

ए याद करो इन इस्क को, जो अपन करी मजकूर॥४५॥

उन्हें यह भी बताना कि सभी सखियाँ मूल मिलावा में
मेरे चरणों में ही बैठी हुई हैं। वे मुझसे जरा भी दूर नहीं

हैं। इसलिये सभी परमधाम के उस अनन्य प्रेम को याद करें, जिसके लिये हमारे बीच में रब्द हुआ था।

इत जो करी मजकूर, अजूं सोई है साइत।

चार घड़ी दिन पीछला, तुम जानो हुई मुद्धत॥४६॥

परमधाम में इश्क-रब्द से खेल में आने के समय चार घड़ी दिन बाकी था, अर्थात् वर्तमान गणना में साढ़े चार बजे का समय था। अभी भी वही समय है, किन्तु तुम सभी जानती हो कि बहुत लम्बा समय बीत गया है।

जो रब्द किया इत बैठ के, अजूं बैठे हो ठौर इन।

रात दिन ना पल घड़ी, सोई बात सोई खिन॥४७॥

परमधाम के मूल मिलावा में बैठकर तुमने मुझसे प्रेम विवाद किया था। इस समय भी तुम वहीं बैठी हुई हो।

तब से लेकर अब तक न तो कोई रात बीती है, न दिन बीता है, न कोई पल बीता है, और न कोई घड़ी व्यतीत हुई है। अभी वही क्षण है तथा वही बात हो रही है कि "अलस्तो बिरब्बि कुंम" और "कालू वला" शब्द गूँज रहे हैं।

याही अजमाइस वास्ते, खेल देखाया ए।

जब इलम मेरे बेसक हुई, तब दौड़सी इस्क ले॥४८॥

तुम्हारे प्रेम की परीक्षा के लिये ही मैंने यह माया का खेल दिखाया है। जब तुम मेरी ब्रह्मवाणी के ज्ञान से संशय रहित हो जाओगी, तब इश्क लेकर मेरे प्रति दौड़ लगाओगी।

भावार्थ— अक्षरातीत श्री राज जी सर्वज्ञ हैं। उन्हें स्वयं की जानकारी के लिये रूहों की परीक्षा लेने की कोई

आवश्यकता नहीं थी। परीक्षा का उद्देश्य सखियों को यह बोध कराना था कि आशिक कौन है? इस खेल में जो इश्क की कसौटी पर खरी सिद्ध नहीं होगी, वह परीक्षा में असफल मानी जायेगी और परमधाम में उसकी हँसी होगी।

नाम मेरा सुनते, और सुनत अपना वतन।

सुनत मिलावा रूहों का, याद आवे असल तन॥४९॥

जो भी ब्रह्मसृष्टि मेरा नाम सुनेगी, ब्रह्मवाणी से अपने अखण्ड घर परमधाम तथा मूल मिलावा में रूहों की बैठक के बारे में जान जायेगी, उसे अवश्य ही अपने मूल तन की याद आ जायेगी।

द्रष्टव्य— इस चौपाई में "नाम" शब्द से तात्पर्य किसी लौकिक नाम से नहीं है, बल्कि अक्षरातीत की पहचान

से है। परब्रह्म किसी भाषा या शब्द विशेष के बन्धन में नहीं हैं। वह पूर्णतया शब्दातीत हैं और शब्दातीत का सम्बोधन भावात्मक होता है।

सक मिटी जिनों हक की, और मिटी हादी की सक।

बेसक हुइयां आप वतन, ताए क्यों न आवे इस्क॥५०॥

ब्रह्मवाणी के ज्ञान रूपी अमृत से जिसे श्री राज जी, श्यामा जी, और अपने परमधाम के सम्बन्ध में कोई भी संशय नहीं रहेगा, निश्चित ही उसके अन्दर धाम धनी का इश्क आयेगा।

सांच झूठ में मिल गईयां, तुरत होसी तफावत।

करसी पल में बेसक, ऐसा इलम मेरी न्यामत॥५१॥

सत्य झूठ में मिल गया है अर्थात् ब्रह्मसृष्टि इस नश्वर

जगत में स्वयं को भूल गयी हैं। मेरी ब्रह्मवाणी का ज्ञान
ऐसा अनमोल धन है, जो पल भर में ही किसी को भी
संशय रहित कर देता है और सत्य तथा झूठ में भेद
दर्शाता है।

अजमावने अरवाहों को, हकें दिया वास्ते इन।

अव्वल फरामोसी देय के, इलमें खोले दीदे बातन॥५२॥

ब्रह्मसृष्टियों की परीक्षा लेने के लिये धाम धनी ने उन्हें
पहले माया की फरामोशी में डाला। इसके पश्चात् इनके
लिये ब्रह्मवाणी का अवतरण कराया। इस ब्रह्मवाणी ने
सुन्दरसाथ की आत्मिक दृष्टि (अन्तःचक्षु) खोल दी।

बातून खुले ऐसा हुआ, सेहेरग से नजीक हक।

तुम बैठे बीच अर्स के, कदम तले बेसक॥५३॥

आत्मिक दृष्टि खुल जाने से सुन्दरसाथ को ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे श्री राज जी उनकी प्राणनली से भी अधिक निकट हैं और हम परमधाम के मूल मिलावा में धनी के चरणों में ही बैठे हुए हैं।

चौदे तबकों न पाइए, हक बका ठौर तरफ।

सो कदम तले बैठावत, ऐसा इलम का सरफ॥५४॥

चौदह लोक में आज तक यह कोई भी नहीं जान सका कि अक्षरातीत और परमधाम कहाँ है? श्रीमुखवाणी की महिमा ही ऐसी है कि इससे यह बोध हो जाता है कि हम तो धनी के चरणों में ही बैठे हैं।

इलम हक के बेसकी, बेसक आवे सहूर।

बेसक पेहेचान हक की, बरस्या बेसक बका नूर॥५५॥

अक्षरातीत का यह ज्ञान पूर्ण रूप से संशय रहित कर देता है। इसके द्वारा यथार्थ चिन्तन की गहराइयों में उतरा जाता है। इस ब्रह्मवाणी से श्री राज जी के स्वरूप की पहचान होती है तथा परमधाम के प्रेम और आनन्द की वर्षा होती है।

बेसक असल सुख की, आवे बेसक रूहों इलम।

जरे जरे की बेसकी, जो बीच नजर खसम॥५६॥

इस संशय रहित ज्ञान के द्वारा ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के अखण्ड सुख का स्वाद आता है। यदि उनकी आत्मिक दृष्टि मूल मिलावा में विराजमान अक्षरातीत का दीदार कर लेती है, तो उन्हें परमधाम के कण-कण का दीदार होने लगता है। उसके सम्बन्ध में उन्हें कोई भी संशय नहीं रहता।

बेसक देखी फरामोसी, बेसक गिरो मोमिन।

बेसक फुरमान रमूजें, पाई बेसक बका वतन॥५७॥

इसमें कोई शक नहीं कि ब्रह्मसृष्टियों ने इस फरामोशी के खेल को देखा है। उन्होंने तारतम ज्ञान द्वारा धर्मग्रन्थों में छिपे हुए रहस्यों को जानकर अखण्ड परमधाम के विषय में भी स्वयं को संशय रहित कर लिया है।

बेसक ठौर कादर, पाई बेसक कुदरत।

बेसक खेल जो मांगया, बेसक बातें उमत॥५८॥

अक्षर ब्रह्म का धाम कहाँ है तथा उनकी लीला का स्थान योगमाया (बेहद) का ब्रह्माण्ड कहाँ है, इसके विषय में कोई भी संशय नहीं रहा। सखियों ने जो श्री राज जी से इश्क-रब्द की बातें की तथा खेल माँगा, इस सम्बन्ध में भी अब कोई संशय नहीं रह गया है।

बेसक हकें देखाइया, बेसक करी मजकूर।

बेसक रद-बदल करी, हुआ बेसक इलम जहूर॥५९॥

धाम धनी के संशय रहित तारतम ज्ञान से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया है कि हमने धाम धनी से इश्क-रब्द सम्बन्धी वार्ता की थी, जिसमें हमने माया का खेल माँगा। हमारी इच्छा पूरी करने के लिये ही धाम धनी ने फरामोशी का यह खेल दिखाया है।

बेसक जगाई फरामोस में, बेसक दे इलम।

होसी रुहों बका की बेसक, ले बेसक इलम खसम॥६०॥

धाम धनी ने अपनी संशय रहित ब्रह्मवाणी देकर इस मायावी संसार में भी हमें जाग्रत कर दिया है। जो भी परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह धनी की इस अमृतमयी वाणी को आत्मसात् कर पूर्णतया संशय रहित हो

जायेगी।

भुलाइयां खेल में बेसक, हुआ बेसक बेवरा ए।

क्यों ना लें इस्क बेसक, कहाए बेसक संदेसे॥६१॥

इसमें कोई संशय नहीं है कि धाम धनी ने हमें माया के खेल में भुला दिया। इस खेल में भूल जाने के कारण ही इश्क का निरूपण स्पष्ट हो सका। जब धाम धनी ने सन्देश के रूप में अपनी ब्रह्मवाणी दी है तो सुन्दरसाथ संशय रहित होकर इश्क की राह क्यों नहीं अपनाता?

रुहों को हकें बेसक, भेज्या पैगाम बेसक।

इस्क बेसक ले आइयो, भेजी बेसक रुह बुजरक॥६२॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत करने के लिये संशय रहित ब्रह्मवाणी दी है। ब्रह्मसृष्टियों में प्रमुख (सरदार)

श्यामा जी को भेजकर यह कहलाया कि हे रुहों! इश्क लेकर तुम निश्चय ही परमधाम आ जाओ।

भावार्थ- चौपाई ६१ में कथित शब्द "संदेसे" और चौपाई ६२ में प्रयुक्त "पैगाम" शब्द समानार्थक हैं। यहाँ कुरआन का कोई प्रसंग नहीं है, बल्कि ब्रह्मवाणी ही धनी का संशय रहित सन्देश है। कुरआन पढ़ने वालों की संख्या करोड़ों में है, किन्तु परमधाम और अक्षरातीत के सम्बन्ध में संशय रहित रहने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता। यदि "पैगाम" शब्द का तात्पर्य हम कुरआन से लें, तब तो हर सुन्दरसाथ के लिये कुरआन पढ़ना अनिवार्य हो जायेगा, जो व्यवहार में सम्भव नहीं। परमधाम और अक्षरातीत से सम्बन्धित ज्ञान तो पुराण संहिता और माहेश्वर तन्त्र में भी है। यह अवश्य है कि कतेब परम्परा के ग्रन्थों में मात्र कुरआन में ही परमधाम,

ब्रह्मसृष्टियों, तथा अक्षरातीत का वर्णन है।

इस्क रूहों कम बेसक, हादी ज्यादा इस्क बेसक।

सब थेँ इस्क बढ़या, बेसक इस्क जो हक॥६३॥

अब तो यह निश्चित रूप से स्पष्ट हो गया है कि इस खेल में सुन्दरसाथ का इश्क कम है। उनसे अधिक श्यामा जी का है। सबसे अधिक श्री राज जी का है। इसमें कोई भी संशय नहीं है।

भावार्थ- परमधाम की वहदत में तो सबका इश्क बराबर है, किन्तु इस खेल में सब कुछ स्पष्ट रूप से निरूपित (दृष्टिगत) हो गया है। श्यामा जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) ने धाम धनी को पाने के लिये अनेक प्रकार के कष्ट सहे। तारतम ज्ञान पाने के पश्चात् उन्होंने दोनों तनों (श्री देवचन्द्र जी एवं श्री मिहिरराज) से

जागनी की। दूसरे तन में आशिक बनकर गाँव-गाँव नगर-नगर में उन्होंने जागनी की। इस जागनी कार्य में उन्हें बहुत अधिक कष्ट झेलना पड़ा, इसलिये उनका इश्क सुन्दरसाथ से अधिक माना गया।

श्री राज जी का इश्क श्यामा जी से भी अधिक इसलिये माना गया कि प्रथम तो वे पूर्णातिपूर्ण हैं। उनसे अधिक कोई हो ही नहीं सकता। दूसरा, आशिक के रूप में उन्होंने ही श्यामा जी को जगाया है तथा सुन्दरसाथ के दिल में पल-पल विराजमान होकर सबको जगा रहे हैं।

महामत कहे बेसक मोमिनो, बेसक बेवरा कमाल।

फरामोसी में हक का, पाइए बेसक इस्क हाल॥६४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस खेल में इस प्रकार का निर्णय तो निश्चित रूप से कमाल

(अदभुत) का है। इस फरामोशी के ब्रह्माण्ड में ही श्री राज जी के इश्क की पूर्ण पहचान सम्भव हो सकी है।

प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥७६९॥

सूरत अर्स अजीम की बातूनी रोसनी

इस प्रकरण में परमधाम के गुह्य रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है।

रूहअल्ला सुभाने भेजिया, रूहें अर्स अपनी जान।

पिउ प्यारे भेजी रूह अपनी, तुम क्यों ना करो पेहचान॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! आपको परमधाम की अपनी अँगना जानकर प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी आनन्द स्वरूपा श्यामा जी को इस खेल में भेजा है। आप उनकी पहचान क्यों नहीं करते?

अरवाहें जो अर्स की, सो उरझियां माहें फरेब।

सो सुरझाइयां पट खोल के, केहे हकीकत वेद कतेब॥२॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ यहाँ के मायावी छल में उलझ गयी हैं। श्यामा जी ने तारतम ज्ञान, वेद, और कतेब के रहस्यों को उजागर कर दिया है तथा माया का परदा हटाकर परमधाम का दरवाजा खोल दिया है।

भावार्थ— श्यामा जी ने अपने दूसरे तन में ही कतेब के रहस्यों को खोला। अपने पहले तन में उन्होंने स्वयं श्री मिहिरराज जी से कहा था कि मिहिरराज! मैंने कुरआन को देखना चाहा था, लेकिन कर्मकाण्डी लोगों ने बाधाएँ खड़ी की, इसलिये मैं इसे देख नहीं पाया। अब वेद – कतेब के सारे रहस्य तुमसे ही खुलेंगे।

मजकूर बका बीच में, किया हक हादी रूहन।

दर्द फरामोसी हाँसीय को, बीच अपने अर्स मोमिन॥३॥

परमधाम में श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों के

बीच इश्क-रब्द हुआ था, इसलिये धाम धनी ने सखियों को अपने चरणों में ही बिठाकर माया की हँसी का खेल दिखा दिया।

ऐसी तुमें देखाऊं दुनियां, और पनाह में राखों छिपाए।

ओ तुमें ना चीन्ह हीं, ना तुमें ओ चिन्हाए॥४॥

श्री राज जी ने सखियों से कहा – मैं तुम्हें अपने चरणों में बिठाकर ऐसी दुनियां दिखाऊँगा, जिसके लोग न तो तुम्हें पहचान सकेंगे और न तुम उनको ही पहचान सकोगी।

भावार्थ– इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "पनाह में राखों छिपाए" का भाव है– मूल मिलावा में अपने सामने (अपनी शरण में) ही बैठाकर खेल को दिखाना।

मैं छिपोंगा तुमसों, तुम नजर में ले।

पाओ ना अर्स या मुझे, काहू तरफ न पाओ ए॥५॥

मैं तुम्हें अपनी नजर में लेकर छिप जाऊँगा, अर्थात् मैं तो तुम्हें पल-पल देखता रहूँगा लेकिन तुम मुझे नहीं देख सकोगी। उस मायावी जगत में तुम कहीं भी चली जाओ, लेकिन न तो तुम मुझे पा सकोगी और न अपने परमधाम को पा सकोगी।

ढूँढोगे तुम मुझको, बोहोतक सहूर कर।

मेरा ठौर न पाओ या मुझे, क्योंए ना खुले नजर॥६॥

उस संसार में तुम बहुत सोच-विचार कर मुझे खोजोगी, लेकिन न तो तुम मुझे पा सकोगी और न मेरे धाम को ही पाओगी। मुझे देखने के लिये किसी भी तरह से तुम्हारी आत्मिक नजर नहीं खुल सकेगी।

आंखां होसी खुलियां, मेरी बातां करो माहों-माहें।

ढूढोगे माहें बाहेर, और पावे ना कोई क्याहें॥७॥

तुम्हारी बाह्य आँखें भी खुली होंगी और तुम आपस में मेरी बातें भी करोगी। तुम ध्यान द्वारा अपने शरीर में तथा ब्रह्माण्ड-निराकार में खोजोगी, लेकिन तुममें से कोई भी कहीं भी मुझे नहीं पा सकेगी।

भावार्थ- बिना ब्रह्मवाणी के आत्मिक दृष्टि नहीं खुल सकती। बाह्य आँखों से केवल मायावी जगत को ही देखा जा सकता है। तारतम ज्ञान के बिना ध्यान द्वारा केवल प्रकृति और जीव के स्वरूप का ही साक्षात्कार हो पाता है, निराकार को पार कर कोई विरला ही बेहद में प्रवेश कर पाता है। बिना तारतम ज्ञान के परमधाम का साक्षात्कार असम्भव है।

क्या कहूं भेजोगे हमको, के इतथें करोगे दूर।

के इतहीं बैठे देखाओगे, हमको अपने हजूर॥८॥

यह सुनकर ब्रह्मात्माओं ने पूछा— हे धाम धनी! क्या आप हमें यहाँ से कहीं बाहर भेजेंगे और अपने से दूर कर देंगे, या अपने सामने बैठाकर यहाँ से ही उस खेल को दिखायेंगे?

इतहीं बैठे देखोगे, खेल हांसी का फरामोस।

सहूर करोगे बोहोतक, पर आए न सको माहें होस॥९॥

इसके उत्तर में श्री राज जी ने कहा— तुम यहीं पर बैठे— बैठे उस मायावी खेल को देखोगी। बेसुधी का वह खेल तुम्हारी हँसी कराने वाला होगा। तुम उस खेल के बन्धन से निकलने के लिये बहुत सोच-विचार करोगी, किन्तु होश में नहीं आ सकोगी।

ज्यों जाने बेसुध हुए, जैसे अमल चढ़या जोर।

सो तुम क्यों ए ना सुनोगे, हादी करे बोहोतक सोर॥१०॥

जिस प्रकार बहुत गहरा नशा चढ़ने पर कोई व्यक्ति बेसुध हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी माया के नशे में बेसुध हो जाओगी। श्यामा जी तुम्हें जाग्रत करने के लिये बहुत अधिक ज्ञान सुनायेंगी, लेकिन तुम उसे किसी भी तरह से नहीं सुनोगी।

भावार्थ- मायावी विकारों से जीव ही ग्रसित होता है, आत्मा नहीं। जीव को माया में डूबा हुआ देखने में आत्मा इतनी तल्लीन हो जाती है कि लगता है जैसे आत्मा ही माया में डूब गयी हो। श्रीमुखवाणी में इसी बात को इन शब्दों में कहा गया है—

जीवें आतम अंधी करी, मिल अंतस्करण अंधेर।

किरन्तन ७४/५

ना तुमें अमल ना नींद कछू, पर ऐसा खेल हाँसी का ए।
खेलें हँसें बातें करें, याद आवे ना हक घर जे॥११॥

वहाँ तुम्हें कोई जाहिरी नशा या नींद नहीं घेरेगी, बल्कि अज्ञान रूपी नींद (नशा) होगी। वह विचित्र प्रकार की हाँसी का खेल होगा। वहाँ तुम आपस में खेलोगी, हँसोगी, और बातें करोगी, लेकिन तुम्हें मेरी या अपने घर की याद नहीं आयेगी।

ऐसा इलम हादीय पे, देखावे हक वतन।

आप पाओ पल में जगावहीं, इन इलम आधे सुकन॥१२॥

श्यामा जी के पास ऐसा तारतम ज्ञान होगा, जो तुम्हें मेरी और परमधाम की पहचान करायेगा। उस ज्ञान के आधे वचनों से एक पल के चौथाई हिस्से में ही तुम जाग्रत हो सकती हो।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात आलंकारिक रूप से कही गयी है कि तारतम ज्ञान के आधे वचनों से ही आत्मा जाग्रत हो जायेगी। यहाँ तारतम ज्ञान का तात्पर्य एक चौपाई या छः चौपाइयाँ नहीं है। यहाँ उस प्रकार की भाषा प्रयुक्त की गयी है, जैसे-

एक लवा सुने जो वासना, सो संग ना छोड़ें खिन मात्र।
होसी सब अंगों गलित गात्र, प्रगट देखाए प्रेम पात्र॥

क. हि. २३/५९

यहाँ मात्र एक अक्षर सुनने से गलितगात्र होना व्यवहारिक रूप में सम्भव नहीं लगता, किन्तु ब्रह्मवाणी का भाव यह है कि ब्रह्मज्ञान का कोई नाम मात्र का अंश भी यदि हृदय में चुभ गया तो वह आत्मा धनी पर फिदा हो जायेगी। इसी प्रकार इस प्रकरण की बारहवीं चौपाई में भी यही भाव व्यक्त है कि यदि हमारा हृदय श्रद्धा से

भरपूर है, तो उसमें ब्रह्मवाणी के किसी भी शब्द की चोट हृदय को झकझोर कर आत्मा को अति अल्प समय में जाग्रत कर सकती है। एक पल के चौथाई हिस्से का तात्पर्य है, अति अल्प समय।

जो हुए होवें मुरदे, तिनको देत उठाए।

इन विध इलम लदुन्नी, पर तुमें न सके जगाए॥१३॥

यह तारतम ज्ञान इतना प्रभावशाली होगा कि माया में डूबे हुए लोगों को तो जाग्रत कर देगा, किन्तु तुम्हें जाग्रत नहीं कर पायेगा, क्योंकि तुम्हारी हँसी होनी है।

ऐसी देखोगे दुनियां, हक न काहूँ खबर।

ना सुध अर्स न आपकी, कई ढूँढत सहूर कर॥१४॥

तुम ऐसा संसार देखोगी, जिसमें किसी को भी मेरी

जानकारी नहीं होगी। उन्हें परमधाम तथा अपने स्वरूप के बारे में भी कोई ज्ञान नहीं होगा। यद्यपि बहुत से लोग ज्ञान-चिन्तन में डूबकर खोज रहे होंगे।

ना सुध मेरी ना वतन की, आपुस में जाओगे भूल।

ना सुध मेरे कागद की, ना सुध मेरे रसूल॥१५॥

उस मायावी संसार में जाकर न तो तुम्हें मेरी सुध रहेगी और न परमधाम की। तुम आपस में भी एक-दूसरे को भूल जाओगी। उस संसार में न तो मेरी ब्रह्मवाणी की सुध रहेगी और न मेरे संदेशवाहक श्यामा जी की।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई १५ में "कागद" और "फुरमान" का सूक्ष्म (बातिनी) अर्थ श्री कुल्जुम स्वरूप (तारतम वाणी) है। इसी प्रकार "रसूल" शब्द श्यामा जी के लिये प्रयुक्त हुआ है। "धनी आए वेद कतेब छुड़ावने"

के कथनानुसार भी सुन्दरसाथ के लिये आखिरी वेद या आखिरी कुरआन के रूप में श्रीमुखवाणी है, जिसे स्वसं वेद या कुल्जुम स्वरूप भी कहते हैं।

लिखी इसारतें रमूजें, निसान हकीकत।

सुध कछू तुमें न परे, भूलोगे मेरी न्यामत॥१६॥

मेरे आदेश से धर्मग्रन्थों में संकेत के रूप में परमधाम की वास्तविकता दर्शायी गयी है। उस संसार में तुम्हें इसकी कोई भी जानकारी नहीं रहेगी। तुम मेरे द्वारा दी गई इस आध्यात्मिक सम्पदा को भूली रहोगी।

ऐसा फुरमान भेजसी, और याद देसी रसूल।

जिन अंग इस्क तिनका, क्यों होसी ऐसा सूल॥१७॥

मैं तुम्हारे लिये ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप भेजूँगा

और श्यामा जी तुम्हें परमधाम की याद दिलायेंगी।
आश्चर्य की बात है कि जिनके अंग ही इश्क के हैं, इस
संसार में उनकी स्थिति इतनी भटकाव वाली कैसे हो
जायेगी?

भूलोगे तेहेकीक तुम, मेरी पाओ ना तुम खबर।

ए खेल देखे ऐसा होएसी, ना सुध आप ना घर॥१८॥

उस माया में तुम निश्चित रूप से भूल जाओगी। तुम्हें
मेरी थोड़ी भी जानकारी नहीं होगी। माया के इस खेल
को देखकर तुम्हें ऐसा हो जायेगा कि तुम्हें न तो अपनी
सुध रहेगी और न अपने घर परमधाम की सुध रहेगी।

एक दूजी आपुस में, रहे ना रूह चिन्हार।

ना चीन्हों बड़ी रूह को, ना कछू परवरदिगार॥१९॥

उस संसार में तुम आपस में एक-दूसरे को भी नहीं पहचान सकोगी। न तो तुम श्यामा जी को और न मुझे पहचान पाओगी।

**रुहें कहें हाँसी होसी अति बड़ी, तुम हूजो सबे हुसियार।
क्यों ए न भूलें आपन, जो खेल जोर करे अपार॥२०॥**

यह सुनकर ब्रह्मात्मायें आपस में एक-दूसरे से कहने लगीं कि हे सखियो ! माया के खेल में हमारी बहुत अधिक हँसी होनी है, इसलिये तुम सभी सावधान हो जाओ। माया भले कितनी ही शक्ति क्यों न लगाये , लेकिन हमें किसी भी तरह से न तो अपने धाम को भूलना है, न प्रियतम को भूलना है, और न श्यामा जी या एक-दूसरे को भूलना है।

अपन सामी हाँसी करें हकसों, चले ना खेल को बल।

अपन आगूं चेतन हुइयाँ, रहिए एक दूजी हिल मिल॥२१॥

हम परमधाम आकर श्री राज जी से हाँसी करेंगी कि आपकी माया ने हमारा क्या कर लिया? हमारे ऊपर आपकी माया के खेल की शक्ति नहीं चल सकी। अब तो हम पहले से ही सावचेत हो गयी हैं कि हमें आपस में खूब मिलजुल कर रहना है।

जब आंगूं से खबर करी, क्या करे फरेब असत।

इस्क हमारा कहां जाएसी, क्या करसी नहीं मदत॥२२॥

हे धाम धनी! जब आपने पहले ही हमें सावचेत कर दिया है, तो वह झूठी माया हमारा क्या कर लेगी? वहाँ हमारा प्रेम कहाँ चला जायेगा? क्या हमारे अन्दर का प्रेम हमारी कुछ भी सहायता नहीं करेगा?

इस्क का बल भान के, क्या फरेब होसी जोर।

निसबत अपनी हकसों, क्यों देसी मरोर॥२३॥

क्या माया की शक्ति इतनी अधिक होगी कि वह हमारे इश्क की शक्ति को नष्ट कर देगी ? धनी के चरणों से हमारी अखण्ड निस्बत है, क्या माया की शक्ति उसे भी खण्डित कर देगी?

दूर तो कहूं जाए नहीं, बैठे पकड़ हक चरन।

तो फरामोसी बल क्या करे, आपन आगूं हुइयां चेतन॥२४॥

हे धाम धनी! हम सब आपसे कहीं दूर तो जा नहीं रही हैं। यहाँ पर हम आपके चरणों को पकड़कर बैठी हैं। जब हम आपके बताने से सावचेत हो गयी हैं, तो माया की शक्ति हमारा क्या करेगी?

कहें रूहें एक दूजी को, नजीक बैठो आए।

जिन कोई जुदी परे, रहिए अंग लपटाए॥२५॥

सखियाँ आपस में एक-दूसरे से कहने लगीं कि तुम बिल्कुल मेरे निकट आकर बैठ जाओ। हम सभी आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार लिपट कर बैठ जायें कि कोई भी किसी से अलग न हो सके।

हाथों-हाथ न छोड़िए, लग रहिए अंगो अंग।

इन विध एक दिल राखिए, कोई छोड़े ना काहू को संग॥२६॥

सखियों! हम सभी एक-दूसरे का हाथ पकड़कर बैठ जायें। उसे कभी भी छोड़ना नहीं है। एक-दूसरे के अंग से अंग लगकर बैठें अर्थात् बिल्कुल सटकर (चिपककर) बैठें। इस प्रकार हमें आपस में एकदिली रखनी है तथा किसी को भी किसी का साथ नहीं छोड़ना है।

भावार्थ- इस चौपाई में "लग रहिए अंगो अंग" का अर्थ है- सभी सखियों के बीच में थोड़ी सी भी जगह न हो। इसी सन्दर्भ में सागर ग्रन्थ में कहा गया है-

आवे न निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सखियों को दूर-दूर बैठाकर अलग-अलग हारों और रास्तों की मान्यता श्रीमुखवाणी के विपरीत है।

हम हमेसा एक दिल, जुदियां होवें क्यों कर।

हक खेल देखावहीं, कर आगे से खबर॥२७॥

हम सभी सखियाँ एकदिली के अन्दर हैं। ऐसी स्थिति में भला एक-दूसरे से अलग कैसे हो सकती हैं? वैसे भी धाम धनी ने हमें खेल दिखाने से पहले ही सावधान कर दिया है।

अंग जुदे ना हो सकें, तो क्यों होए जुदे दिल।

एक जरा जुदे ना होए सकें, अंग यों रहे हिल मिल॥२८॥

जब हमारे शरीर के अंग एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते, तो हमारे दिल कैसे अलग हो सकते हैं? हमारे शरीर के अंग तो आपस में इस प्रकार मिले हुए हैं कि उनका एक जरा (कण) मात्र भी अलग नहीं हो सकता।

रुहें कहें एक दूजी को, जिन अंग जुदा करो कोए।

इन विध रहो लपटाए के, सब एक वजूद ज्यों होए॥२९॥

सखियाँ एक-दूसरे से कहने लगीं कि तुम इस तरह से बैठो कि हमारा कोई भी अंग एक-दूसरे से अलग न होने पाए। सभी आपस में इस प्रकार लिपट कर बैठ जाओ कि ऐसा प्रतीत हो जैसे मात्र एक ही शरीर बैठा है।

भावार्थ- एक के अंगों को दूसरों से अलग न करने का

भाव अपने पास की सखियों से अलग न करने का है। इस प्रकार यदि सभी बैठेंगी, तो सभी आपस में सट-सट कर बैठी रहेंगी। इस चौपाई में ऐसा भाव नहीं लेना चाहिए कि सब एक तन जैसे हैं। वहदत में तो सभी एक जैसे तन वाले हैं ही, सबकी बैठक ही इस प्रकार की है जैसे लगता है कि १२००० सखियाँ न बैठकर एक ही बैठी है।

रुहें रब्द कर बैठियां, जानें सामी हाँसी करें हक सों।

पर हकें हाँसी ऐसी करी, सुध जरा न रही किनमों॥३०॥

सभी सखियाँ धाम धनी से रब्द करके उनके सामने इस प्रकार बैठ गयीं, जैसे खेल खत्म होने के पश्चात् वे ही श्री राज जी से हाँसी करेंगी। किन्तु प्रियतम अक्षरातीत ने ऐसी हाँसी की है कि किसी के अन्दर नाम मात्र की भी

सुध नहीं रह गयी।

एक वजूद होए बैठियां, खेलें ऐसी दर्ई भुलाए।

कौल फैल हाल सब जुदे, दिल ऐसे दिए फिराए॥३१॥

परमधाम में तो सभी एक तन होकर बैठी हैं, लेकिन इस माया के खेल ने उनको इस प्रकार भुला दिया है कि उनके दिल अलग-अलग हो गये हैं। सबकी कथनी, करनी, और रहनी भी अलग-अलग हो गयी है।

जात भांत जिनसें जुदी, जुदी जुदी जिमी पैदाए।

सब बैठियां अंग लगाए के, खेलें कहूं दिए उलटाए॥३२॥

यहाँ ब्रह्मसृष्टियाँ अलग-अलग रस्मों, भिन्न-भिन्न जातियों, तथा अलग-अलग स्थानों में आ गयी हैं। परमधाम में तो सभी एक-दूसरे से सट-सट कर बैठी

हैं, किन्तु इस माया के खेल में सब कुछ उल्टा हो गया।

जुदे जुदे कबीलों, कर बैठियां अपना घर।

जानें हम इत कदीम के, जुदे होवें क्यों कर॥३३॥

यहाँ पर तो वे अलग-अलग परिवारों को ही अपना घर बनाकर बैठ गयी हैं। वे यही मान बैठी हैं कि इस परिवार से तो हमारा सदा का सम्बन्ध है। इससे हम किसी भी प्रकार से अलग नहीं हो सकतीं।

भावार्थ- इस संसार में कोई ब्रह्मसृष्टि पुरुष तन में आयी है, तो कोई स्त्री तन में। यदि वे आपस में पति - पत्नी के सम्बन्ध में बन्ध जाती हैं, तो अपने इस सम्बन्ध को वे अनादि मान लेती हैं और अक्षरातीत को भुला देती हैं। इस सम्बन्ध में पुराण संहिता के अध्याय ३१ श्लोक ३९-४३ में बहुत ही सुन्दर वर्णन दिया गया है।

सो भी कबीले स्वारथी, दुख आए न कोई अपना।

जात वजूद भी रंग बदले, ज्यों फना होत सुपना॥३४॥

ब्रह्मसृष्टियाँ जिन पारिवारिक सम्बन्धियों के मोह में फँसी हैं, वे सभी स्वार्थी होते हैं। दुःख के समय में कोई भी साथ नहीं देता। जिस तरह स्वप्न के दृश्य नश्वर होते हैं, उसी प्रकार जाति-पाति और शारीरिक सम्बन्धियों का रिश्ता भी झूठा होता है।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी की अमृत धारा का रसपान करके भी सुन्दरसाथ परिवार और जाति-पाति के मोहपाश से मुक्त नहीं हो पाता। यह उसकी बहुत बड़ी हँसी का कारण बनेगा।

रुहें सुध ना एक दूजी की, ना मिनों मिने पेहेचान।

याद बिना जात मुद्धत, काहूँ सुपने न आवें सुभान॥३५॥

माया के इस खेल में न तो ब्रह्मसृष्टियों को एक-दूसरे की सुध है और न आपस में एक-दूसरे की पहचान है। धाम धनी को याद किये बिना लम्बा समय व्यतीत हो गया है, लेकिन स्वप्न में भी उनकी याद नहीं आती।

खेल तो है एक खिन का, रुहें जानें हुई मुदत।

कई कुरसी हुई कई होएसी, गईयां भूल मूल सोहोबत॥३६॥

परमधाम के समय के अनुसार माया का यह खेल मात्र एक पल का है, किन्तु इस संसार के अनुसार तो सखियाँ यही मानती हैं कि बहुत लम्बा समय बीत गया है। ये परमधाम से अपने मूल सम्बन्ध को ही भुला बैठी हैं। इस संसार में उनकी कई पीढ़ियाँ बीत गयी हैं तथा भविष्य में भी कई होंगी।

भावार्थ— इस चौपाई में "कुरसी" का शुद्ध रूप करशी

है, जिसका अर्थ वंशावलि होता है। कई पीढ़ियों के बीत जाने और भविष्य में भी कई पीढ़ियों के होने का भाव यह है कि ब्रह्मसृष्टियों ने अब तक कई जीवों के ऊपर बैठकर इस खेल को देखा है, किन्तु उन तनों में वह जाग्रत नहीं हो सकी। इसलिये ऐसी सम्भावना की जा रही है कि आत्मा को भविष्य में अभी कई और जीवों के ऊपर बैठकर इस खेल को देखना है, तभी आत्म-जाग्रति का प्रकाश मिलेगा।

आइयां झूठे कबीले में, भूल गईयां बका वतन।

सुख अर्स अजीम के, हाए हाए फरेब दिया दुनी इन॥३७॥

ब्रह्मसृष्टियाँ यहाँ के झूठे परिवारों में आकर फँस गयी हैं। वे माया के प्रभाव में अपने अखण्ड घर परमधाम को भी भुला बैठी हैं। हाय! हाय! इस झूठे संसार ने उन्हें

परमधाम के अनन्त सुखों से छलपूर्वक अलग कर दिया।

तिन कबीले में रहेना, पूजें पानी आग पत्थर।

बेसहूर इन भांत के, जान बूझ जलें काफर॥३८॥

ब्रह्मसृष्टियों को ऐसे परिवारों में रहना पड़ता है, जिसमें आग, पानी, और पत्थरों की पूजा होती है। संसार के इन लोगों को तो इतनी सी बात की भी समझ नहीं होती कि हमें भक्ति आखिरकार किसकी करनी है? यदि वे सत्य को जानते हैं, तो भी अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म को न मानने के कारण वे प्रायश्चित् की अग्नि में जलते रहते हैं।

बड़के फना हो गए, और हाल होत फना।

आखिर फना सब पीछले, जाए गिनते रात दिना॥३९॥

परिवार के पूर्वज तो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। वर्तमान

में जो वयोवृद्ध लोग हैं, वे भी मृत्यु की कगार पर हैं। जो भविष्य में बच जायेंगे, वे भी अपनी उम्र के दिन और रात पूरे करके अन्ततोगत्वा मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे।

कहें हमको इन वतनमें, मौत आवेगी अब।

नफा नुकसानी हो चुकी, फेर जनम लेवें कब॥४०॥

संसार के लोग यही सोचा करते हैं कि हमारी मृत्यु कब होगी? हमने तो इस संसार में पुण्य और पाप का लाभ-हानि देख लिया है, अर्थात् सुख-दुःख भोग लिया है। अब पता नहीं कब हमें पुनः जन्म मिलेगा?

ऐसा मौत अपना जान के, लेत हैं नुकसान।

जाग के नफा न लेवहीं, सुन ऐसा हक फुरमान॥४१॥

अपनी मृत्यु को अनिवार्य मानकर भी संसार के जीव

व्यर्थ में अपनी उम्र गँवाते रहते हैं। अमृतमयी ब्रह्मवाणी को सुनकर न तो वे अपने जीव को जगाते हैं और न जन्म-मरण के चक्र से छूट पाते हैं।

भावार्थ- सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा - विश्वास रखना ही जीव की जाग्रति है, किन्तु सांसारिक जीवों से इतना भी नहीं होता।

उमर खोवें नुकसान में, पर करें नहीं सहूर।

याद न करें तिनको, जिनका एता बड़ा जहूर॥४२॥

वे अपनी सारी उम्र क्षणिक विषयों के सेवन में गँवा देते हैं, लेकिन अपने इस भटकाव के बारे में कभी भी आत्म-चिन्तन नहीं करते। वे संसार के झूठे कामों को तो करते रहते हैं, किन्तु जिस सच्चिदानन्द परब्रह्म की अनन्त महिमा है, उन्हें याद करने के लिये उनके पास

समय ही नहीं होता।

कहें हिन्दू पीछे मौत के, हम जनम लेसी फेर।

जो अब हम भूलेंगे, तो नफा लेसी और बेर॥४३॥

हिन्दू कहते हैं कि कदाचित् इस जन्म में हम परमात्मा को नहीं जान सके, तो मरने के बाद पुनः जन्म धारण करेंगे। उस समय परब्रह्म को जानकर हम अखण्ड मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे।

भावार्थ- "अनेक जन्म संसिद्धिः ततो याति परां गतिम्" अर्थात् अनेक जन्मों की साधना के फलस्वरूप ही परमगति रूपी मोक्ष प्राप्त होता है। गीता के इस कथन को आधार मानकर हिन्दू आलस्य में पड़े रहते हैं और मुक्ति प्राप्त करने के लिये यथोचित पुरुषार्थ नहीं कर पाते। इस चौपाई में उन्हें इस भूल के लिये सावचेत किया गया है।

खेल ऐसा फरेब का, सब हवा को पूजत।

सुध दोऊ को ना परी, कायम बका सुख कित॥४४॥

यह माया का ऐसा झूठा खेल है, जिसमें सभी लोग निराकार को ही परब्रह्म का स्वरूप मानकर आराधना करते हैं। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों में से किसी को भी यह पता नहीं चल पाया कि अखण्ड परमधाम का आनन्द कहाँ पर है?

भावार्थ- निराकार जड़-प्रकृति का स्वरूप है। उसे सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप मानकर संसार के सभी पन्थ भटके हुए हैं। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

ए तेहेकीक किने ना किया, कहावें सब बुजरक।

जेती बात ल्यावें इलम की, तिन सबों में सक॥४५॥

यद्यपि सभी लोग ज्ञानी कहलाते हैं, लेकिन तारतम ज्ञान के न होने से इस बात का आज तक कोई भी निर्णय नहीं कर सका कि परब्रह्म का धाम तथा स्वरूप क्या है? वे ज्ञान के सम्बन्ध में जो भी बातें करते हैं, उनमें संशय ही संशय भरा होता है।

ए दुनियां इन विध की, ताए एती सुध सबन।

हम सब बीच फना मिने, ठौर बका न पाया किन॥४६॥

यह माया का ऐसा संसार है जिसमें सभी को इस बात का ज्ञान तो है कि हम नश्वर ब्रह्माण्ड में रह रहे हैं, किन्तु आज तक किसी को भी इस बात का ज्ञान नहीं हो सका कि वह अखण्ड परमधाम कहाँ है?

एता न जाने दुनियां, कहां से आए कौन हम।

आए कौन फरेब में, ए हुआ किन के हुकम॥४७॥

संसार के लोगों को तो इतना भी नहीं मालूम है कि हम कौन हैं और कहाँ से आए हैं? हम किस झूठे संसार में आये हैं और यह संसार किसके हुकम से बना है?

सब कोई कहें हुकमें हुआ, जिन हुकम किया सो कित।

सो किनहूँ न पाइया, ताए खलक गई खोजत॥४८॥

सभी अध्यात्मवादी यही कहते हैं कि यह खेल परमात्मा के आदेश से हुआ है, किन्तु किसी के पास भी इस प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं है कि आदेश देने वाला कहाँ पर है? उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को खोजते-खोजते सारी सृष्टि थक गयी, किन्तु कोई भी परब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर सका।

अवतार तीर्थकर बड़े हुए, बड़े कहावें पैगंमर।

पट बका किन खोल्या नहीं, सबों कहा खुले आखिर॥४९॥

इस संसार में बड़े-बड़े अवतार, तीर्थकर, और खुदाई सन्देश लाने का दावा करने वाले पैगम्बर हो चुके हैं, किन्तु किसी ने भी अखण्ड परमधाम का दरवाजा नहीं खोला। सभी का यही कहना है कि वक्त आखिरत (कियामत के समय) में अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्रकट होगा।

भावार्थ- हिन्दुओं की पौराणिक मान्यता में चौबीस अवतारों का कथन है, जबकि जैनी लोग चौबीस तीर्थकरों का कथन करते हैं जिनके द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान प्रकट होता है। कतेब परम्परा में परब्रह्म का सन्देश लाने का दावा पैगम्बर करते हैं। हिन्दू धर्मग्रन्थों (पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, तथा बृहत् सदाशिव संहिता) में

परब्रह्म और ब्रह्मसृष्टियों के अवतरण का जो समय है ,
वही समय कुरआन-हदीसों के अनुसार कियामत का है।

सब पूजें खाहिस अपनी, याही फना की वस्त।

मिट्टी आग पानी पत्थर, करें याही की सिफत॥५०॥

संसार के जीव अपनी लौकिक इच्छाओं की पूर्ति के
लिये नश्वर एवं जड़ पदार्थों की पूजा करते हैं। वे मिट्टी,
अग्नि, पानी, और पत्थरों की पूजा करते हैं तथा उनकी
महिमा गाते हैं।

भावार्थ- वेदादि सभी धर्मग्रन्थों में जड़ पूजा का सर्वथा
निषेध है, किन्तु यह हिन्दू समाज का दुर्भाग्य है कि वह
वेदों-उपनिषदों के विरुद्ध जड़ पूजा का आचरण कर
रहा है। वह पत्थरों और मिट्टी से महापुरुषों की मूर्तियाँ
बनाकर पूजता है। पुनः उसे नदी में प्रवाहित भी कर देता

है। आज प्रायः सभी तीर्थों में सच्चिदानन्द परब्रह्म के स्थान पर इन्हीं जड़ मूर्तियों की महिमा गायी जाती है।

झूठे झूठा राचहीं, दिल सांच न पावत।

ए सांच क्यों कर पावहीं, पेहेले दिल में न आवत॥५१॥

संसार के झूठे लोगों को झूठी वस्तुएँ ही अच्छी लगती हैं। उनका दिल सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर पाता। जब इनके दिल में सत्य स्वरूप परमात्मा की बातें ही नहीं आती हैं, तो उनकी भक्ति करके कैसे उन्हें प्राप्त कर सकते हैं?

भावार्थ— संसार के जीव जड़ पूजा तथा तांत्रिक क्रियाओं के द्वारा लौकिक सिद्धियाँ, प्रतिष्ठा, एवं धन आदि की प्राप्ति करते हैं। इसी में वे स्वयं को धन्य-धन्य समझते हैं। सच्चिदानन्द परब्रह्म के ज्ञान तथा उनकी

भक्ति के बारे में ये स्वप्न में भी नहीं सोचते। इनका आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्म-साक्षात्कार से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है।

नासूत और मलकूत लग, इनकी याही बीच नजर।

देख किताबें यों कहें, हम पाई नहीं खबर॥५२॥

इन जीवों की सारी सोच इस पृथ्वी लोक तथा वैकुण्ठ से आगे नहीं जा पाती। धर्मग्रन्थों को पढ़ने के पश्चात् भी इनका एक ही उत्तर होता है— "क्या करें? हमने पढ़ा तो बहुत, किन्तु हमें अक्षरातीत के बारे में समझ में ही नहीं आया।"

भावार्थ— राम चरित मानस तथा पौराणिक ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले लोग अपने अवतारों या देवी-देवताओं की भक्ति नहीं छोड़ पाते। सच्चिदानन्द

अक्षरातीत के प्रति उनके मन में निष्ठा ही नहीं बन पाती।
इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

इन बिध बोलें किताबें, देखो दिल के दीदों माहें।

कानों सुन्या सो कछुए नहीं, ए देख्या सो भी नाहें॥५३॥

यदि दिल के नेत्रों से देखा जाये, तो सभी धर्मग्रन्थों का यही निर्णय होता है कि कानों से जो कुछ सुना जाता है या आँखों से जो भी देखा जाता है, वह नश्वर होता है।

भावार्थ— कानों से शब्द की अनुभूति होती है तथा बाह्य नेत्रों से इस पञ्चभूतात्मक संसार को देखा जाता है, जो नश्वर होता है। केनोपनिषद् तथा तैत्तरीयोपनिषद् आदि में इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा गया है – "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" (तैत्तरीयो.), "यत् वाचा न वदति", एवं "यत् चक्षुषा न पश्यते येन चक्षूषि पश्यन्ति"

(केनो.)।

जान बूझ पूजें फना को, कहें एही हमारा खुदाए।

हम छोड़े ना कदीम का, जो बड़कों पूज्या इमदाए॥५४॥

कदाचित् इन मायावी जीवों को यदि यह पता भी चल जाये कि सच्चिदानन्द परब्रह्म चेतन स्वरूप हैं , उसे छोड़कर अन्य किसी भी जड़ पदार्थ की पूजा नहीं करनी चाहिए, तो भी ये नश्वर पदार्थों की पूजा करना नहीं छोड़ते। वे एक ही बात की रट लगाते रहते हैं कि हमारा परमात्मा तो बस यही है। हमारे पूर्वज जब शुरु से इसकी पूजा करते आये हैं, तो हम इतने पुराने मार्ग को कैसे छोड़ सकते हैं?

भावार्थ- भारत के विशेषकर ग्रामीण समाज में ग्राम देवता, कुल देवता, कुल देवी, फकीरों की मजारों, गोबर

के पिण्डों, पीपल और केले आदि वृक्षों, तथा तुलसी आदि पौधों की पूजा बहुत अधिक प्रचलित है, जो धर्मग्रन्थों के अनुसार निरर्थक है।

इस्क लगावें तिनसों, जो दुख रूपी दिन रात।

कायम सुख अर्स का, कहूँ सुपने न पाइए बात॥५५॥

इस संसार के लोग उन्हीं स्वार्थी रिश्तेदारों और नश्वर पदार्थों से प्रेम रखते हैं, जो हमेशा ही (दिन-रात) दुःख का कारण होते हैं। यद्यपि परमधाम के सुख अखण्ड हैं, फिर भी उनकी चर्चा यहाँ पर कोई स्वप्न में भी नहीं करता।

ऐसी देखाई दुनियां, जानें सांच है हमेसगी।

सांचो विचार जब कर दिया, तब झूठों भी झूठ लगी॥५६॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों को ऐसी दुनियां दिखायी है, जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह संसार हमेशा ही अखण्ड रहने वाला है। जब ब्रह्मवाणी से अखण्ड परमधाम की पहचान हो जाती है, तो झूठे जीवों को भी यह संसार झूठा ही लगने लगता है।

हुई रात अंधेरी फरेब की, फिरत चिरागें दोए।

आप अर्स हक की, इन से खबर न होए॥५७॥

यह सम्पूर्ण सृष्टि अज्ञानता के घने अन्धकार की रात्रि में स्थित है। इसमें सूर्य और चन्द्रमा के समान वेद और कतेब रूपी दो दीपक घूमते रहते हैं। सम्पूर्ण प्रयास करने के पश्चात् भी इन दोनों ज्ञान के ग्रन्थों (दीपकों) से स्वयं की, अक्षरातीत की, तथा अखण्ड परमधाम की पहचान नहीं हो पाती है।

भावार्थ- सभी ब्रह्माण्डों में प्रायः दो प्रकार की सृष्टि होती है। सात्विक सृष्टि में देव वर्ग आता है और तामसिक सृष्टि में असुर वर्ग आता है। "वेद आया देवन पे, असुरन पे कुरान" (खुलासा १३/१२) के आधार पर दोनों वर्ग उस परब्रह्म को पाना चाहते हैं , किन्तु तारतम ज्ञान न होने से आज दिन तक कोई भी अक्षरातीत की पहचान नहीं कर सका।

दुनियां इन चिराग को, रोसन कर बूझत।

आप वतन हक बका की, इनसे कछू ना सूझत॥५८॥

संसार के लोग वेद और कतेब रूपी इन दोनों दीपकों को ही ज्ञान के प्रकाश का मूल स्रोत समझते हैं, किन्तु इनसे अपने स्वरूप की, सच्चिदानन्द परब्रह्म की, तथा अखण्ड परमधाम की जानकारी नहीं मिल पाती।

भावार्थ- सृष्टि में सबसे पहले वेद का ज्ञान अवतरित हुआ, इसलिये उसे सूर्य की उपमा दी गई है। जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का प्रकाश हुए बिना वेद-कतेब के द्वारा अक्षरातीत या परमधाम का वास्तविक ज्ञान पाना सम्भव नहीं है।

ढूँढ थके अर्स को, चौदे तबक न पाया किन।

रात फना को छोड़ के, किन देख्या न सूर रोसन॥५९॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के जीव उस अनादि, अनन्त, और अखण्ड परमधाम को खोजते-खोजते थक गये, किन्तु प्राप्त नहीं कर सके। अज्ञान रूपी रात्रि के घने अन्धकार से आच्छादित इस नश्वर ब्रह्माण्ड को छोड़कर किसी ने भी सूर्य के समान प्रकाशमान उस परमधाम को नहीं देखा।

चौदे तबक जुलमत से, पेहेले कही जो रात।

दिन कायम सूर अर्स की, इत काहूँ न पाइए बात॥६०॥

चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निराकार से पैदा हुआ है, जिसे अज्ञान रूपी रात्रि के समान अन्धकारमय कहा गया है। परमधाम तो अक्षरातीत रूपी सूर्य के प्रकाश से सदा ही प्रकाशित रहने वाला है, जिसकी चर्चा इस संसार में कहीं भी नहीं होती।

भावार्थ- निराकार को ही मोह, अज्ञान, भ्रम, और शून्य आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकृति मण्डल में असंख्य जड़ सूर्य हैं, जो अन्धकार से पैदा हुए हैं। परब्रह्म उस चेतन सूर्य के समान है, जो सम्पूर्ण परमधाम को प्रकाशित करता है। कठोपनिषद् तथा मुण्डकोपनिषद् का कथन "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। वस्तुतः

परमधाम का एक-एक कण परब्रह्म का ही स्वरूप है और उन्हीं के द्वारा प्रकाशित है। उनके अतिरिक्त वहाँ किसी भी अन्य पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। ऐसे दिव्य परमधाम का ज्ञान इस सम्पूर्ण सृष्टि में खोजने पर भी नहीं मिलता।

सूर ऊग्या तब जानिए, ए रोसन हुआ अर्स हक।

दुनियां सब के अंग में, काहूँ जरा न रही सक॥६१॥

ज्ञान रूपी सूर्य का उदय होना तभी माना जा सकता है, जब अक्षरातीत और परमधाम की पहचान प्रकट हो जाये तथा संसार के सभी लोगों के दिल में कहीं भी किसी भी प्रकार का नाम मात्र भी संशय न रहे।

भावार्थ— यद्यपि इस ब्रह्माण्ड में सबके संशय मिटना सम्भव नहीं है क्योंकि सभी लोग इस ज्ञान को सुनेंगे ही नहीं। हाँ, योगमाया के ब्रह्माण्ड में जब सबको जाग्रत

बुद्धि प्राप्त होगी, उस समय ब्रह्मवाणी का ज्ञान उन्हें प्राप्त हो जायेगा और सबके संशय मिट जायेंगे।

अर्स बका जाहेर हुआ, तब हुई फजर।

अर्स देखाया इलमें, खुली बातून सबों नजर॥६२॥

जब अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्रकट हो जाये, तब यह समझ लेना चाहिए कि जाग्रत बुद्धि के ज्ञान का प्रातःकाल हो गया है। इस ब्रह्मवाणी ने धनी के चरणों में आने वाले सुन्दरसाथ को परमधाम का अनुभव कराया है तथा सबकी आत्मिक दृष्टि को खोल दिया है।

हकीकत कुरान में, ए लिखी नीके कर।

सबको करसी कायम, जाहेर हुए कायम खबर॥६३॥

कुरआन में इस बात को बहुत अच्छी तरह से दर्शाया

गया है कि जब अक्षरातीत परब्रह्म तथा परमधाम का अलौकिक ज्ञान जाहिर हो जायेगा, तो इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी अखण्ड मुक्ति को प्राप्त हो जायेंगे।

जो होसी रूहें अर्स की, तिन आवे ईमान अव्वल।

आखिर तो सब ल्यावसी, दोजख की आग जल॥६४॥

जो भी परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह ब्रह्मवाणी के ज्ञान पर सबसे पहले अटूट विश्वास (ईमान) धारण करेगी। आखिर में तो सम्पूर्ण सृष्टि को ही प्रायश्चित की अग्नि में जल कर विश्वास करना पड़ेगा।

भावार्थ— योगमाया के ब्रह्माण्ड में जाग्रत बुद्धि होने से सभी जीवों को अक्षरातीत की पहचान हो जायेगी। उस समय सभी प्राणी श्री जी की पहचान करके प्रायश्चित् के आँसू बहायेंगे। इसे ही दोजख की आग में जलना कहा

गया है। उस समय सभी मत-पन्थों के झगड़े मिट जायेंगे और सभी इस बात पर सहमत होंगे कि "सब दुनिया मिलसी एक ठौर, कोई ना कहे धनी मेरा और।"

सो ताला इन मुसाफ का, क्यों खुले ईमान बिन।

खोले ताला फरेब क्यों रहे, जब उग्या बका अर्स दिन॥६५॥

अक्षरातीत पर ईमान आए बिना कुरआन के छिपे हुए गुह्य रहस्यों को नहीं खोला जा सकता। जब कुरआन के भेद खुल जायें तथा अखण्ड परमधाम के ज्ञान का सूर्य रूपी तारतम ज्ञान भी प्रकट हो जाये, तो माया का बन्धन भला कैसे रह सकता है?

भावार्थ- बिना ज्ञान के वास्तविक पहचान नहीं होती और बिना पहचान के वास्तविक ईमान नहीं हो सकता। मात्र कुरआन के शब्द-ज्ञान से अक्षरातीत पर वास्तविक

ईमान नहीं हो सकता, क्योंकि बिना तारतम ज्ञान के अक्षरातीत की पहचान सम्भव नहीं है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि बिना अक्षरातीत पर ईमान के कुरआन की हकीकत और मारिफत के भेदों को नहीं जाना जा सकता।

जोलों ताला खुले नहीं, द्वार अथरवन कतेब।

पाई ना तरफ हक बका, ना कछू खेल फरेब॥६६॥

जब तक अथर्ववेद और कुरआन के गुह्य भेदों का स्पष्टीकरण नहीं था, तब तक संसार में किसी को भी यह पता नहीं था कि अखण्ड परमधाम कहाँ है और माया का यह झूठा खेल क्या है?

भावार्थ— चारों वेदों में मात्र अथर्ववेद ही ऐसा है , जिसके केन सूक्त में ब्रह्मपुरी (परमधाम) का वर्णन है।

इसी प्रकार अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् में भी दिव्य ब्रह्मपुर और अक्षरातीत का वर्णन है। अन्य वेदों में मात्र सांकेतिक वर्णन है। इसी प्रकार तौरेत, इंजील, जंबूर, और कुरआन में से केवल कुरआन के अन्दर ही अर्श-ए-अजीम का वर्णन है। यही कारण है कि श्रीमुखवाणी में सर्वत्र ही अथर्ववेद और कुरआन की महत्ता दर्शायी गयी है।

ए हकीकत जिनकी, अपनी खोले सोए।

सो खोले हक जाहेर हुआ, तब क्यों कर रहेवे दोए॥६७॥

जिस अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, और लीला का वर्णन अथर्ववेद और कुरआन में है, एकमात्र वे परब्रह्म ही इन ग्रन्थों के भेदों को स्पष्ट कर सकते हैं। उनके द्वारा इन ग्रन्थों के भेद खुलने पर जब अक्षरातीत परब्रह्म की

पहचान हो गयी, तो ब्रह्मसृष्टियों के लिए इस द्वैत के ब्रह्माण्ड का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

भावार्थ- प्रियतम अक्षरातीत की पहचान हो जाने पर यह संसार ऐसा लगता है, जैसे है ही नहीं। इस चौपाई के चौथे चरण में यही भाव दर्शाया गया है।

फरेब कछुए ना रह्या, रोसन उमत करी जब।

हक अर्स जाहेर हुआ, तब कायम दुनी हुई सब॥६८॥

जब ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप से ब्रह्मसृष्टियों में ज्ञान का उजाला हो गया, तो उनमें माया का थोड़ा भी प्रभाव नहीं रहा। जब अक्षरातीत तथा परमधाम का ज्ञान संसार में फैल गया, तो सम्पूर्ण जीव सृष्टि को अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

लिख्या दिन बका मुसाफ में, खोले बातून होसी फजर।

लिए हकीकत हैयाती, बका सुख पावें आखिर॥६९॥

कुरआन में लिखा है कि जब तारतम ज्ञान से उसके गुह्य भेद खुल जायेंगे, तो ज्ञान का सवेरा हो जायेगा अर्थात् अज्ञान की रात मिट जायेगी। दिन के उजाले में अक्षरातीत और परमधाम का ज्ञान जाहिर होने से सारी सृष्टि कियामत का समय बीतने पर योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड मुक्ति एवं ब्रह्मानन्द को प्राप्त करेगी।

भावार्थ- कुरआन में शरियत एवं तरीकत के तीस हजार हरुफों का ही ज्ञान है। हकीकत के भेद खुले नहीं तथा मारिफत के शब्द मुहम्मद साहिब की जबान पर चढ़े नहीं। कुरआन के भेद खुलने पर केवल परमधाम की साक्षी ही मिलेगी। परमधाम की हकीकत एवं मारिफत का ज्ञान तो श्रीमुखवाणी में है, इसलिये संसार के जीवों को

अखण्ड मुक्ति श्रीमुखवाणी के ज्ञान से मिलेगी, कुरआन के ज्ञान से नहीं।

कुन्जी भेजी हाथ रुहअल्ला, पर खोल न सके ए।

फुरमान खुले आखिर, हाथ सूरत हकी जे॥७०॥

धाम धनी ने श्यामा जी (मल्की सूरत) के हाथ में तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी (चाभी) भेजी, लेकिन वे कुरआन के छिपे हुए भेदों को नहीं खोल सके। कुरआन के गुह्य रहस्य तो कियामत के समय में श्री प्राणनाथ जी (हकी सूरत) के द्वारा ही खुले।

सहूर दिया साहेब ने, फुरमान भेज्या हाथ रसूल।

पावे न हकीकत मुसाफ की, ए खोलिए किन सूल॥७१॥

धाम धनी ने मुहम्मद साहिब के हाथ जो कुरआन

भिजवाया, उसको खोलने का सामर्थ्य केवल हकी सूरत को दिया। ब्रह्मवाणी के बिना कुरआन की वास्तविकता को नहीं जाना जा सकता। बिना तारतम ज्ञान के संसार कुरआन के गुह्य भेदों को किसी भी तरह नहीं खोल सकता था।

भावार्थ— संसार के सभी धर्मग्रन्थों (वेद-कतेब) के भेद ब्रह्मवाणी के बिना नहीं समझे जा सकते।

रसूल कहे फुरमान में, मेरी तीनों एक सूरत।

सो पोहोंची नजीक हक के, और कोई न पोहोंच्या तित॥७२॥

कुरआन में मुहम्मद साहिब कहते हैं कि बशरी, मल्की, एवं हकी तीनों ही मेरी सूरते हैं, जो परब्रह्म के हुक्म से धारण की गयी हैं। मात्र ये तीन सूरतें (स्वरूप) ही परब्रह्म के नजदीक पहुँची अर्थात् उनका दीदार किया।

इनके अतिरिक्त और कोई भी परमधाम का दर्शन नहीं कर सका।

भावार्थ- बशरी, मल्की, और हकी ये तीनों सूरतें धाम धनी ने ही अपने हुक्म से धारण की हैं, इसलिये इस चौपाई में कहा गया है कि तीनों सूरतें एक ही हैं। केवल तीन सूरतों के द्वारा हक के नजदीक होने का भाव संसार के लोगों की असफलता को दर्शाने के लिये है। तारतम ज्ञान पाकर इश्क के द्वारा कोई भी ब्रह्मसृष्टि अक्षरातीत और परमधाम का वैसे ही दर्शन कर सकती है, जैसे इन तीन सूरतों ने किया है।

बसरी मलकी और हकी, माहें फैल तीनों के।

सो खोले फुरमान को, आखिर सूरत हकी जे॥७३॥

कुरआन में बशरी (मुहम्मद साहिब), मल्की (सद्गुरु

धनी श्री देवचन्द्र जी), तथा हकी (श्री प्राणनाथ जी) की करनी लिखी हुई है। यह भी लिखा हुआ है कि केवल हकी सूरत ही कुरआन के मारिफत के भेदों को खोलेगी।

भावार्थ- बशरी सूरत के द्वारा कुरआन लाया गया तथा संसार को शरियत एवं तरीकत की राह पर चलाया गया। मल्की सूरत के द्वारा तारतम ज्ञान (इल्मे लदुन्नी) लाया गया तथा हकी सूरत ने संसार के सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को उजागर कर दिया।

और चाहे कोई खोलने, क्योंकर खोले सोए।

सो कौल खोले हक हुकमें, फैल हाल जिनों के होए॥७४॥

इन तीन सूरतों के अतिरिक्त यदि और कोई कुरआन के भेद खोलना भी चाहे तो वह नहीं खोल सकता। अक्षरातीत के वचनों के भेद तो वही खोल सकता है,

जिस को श्री राज जी का हुक्म हो और जिसकी करनी-
रहनी उसके अनुकूल हो।

हुआ दीदार सब मेयराज में, जो हरफ कहे हकें मुझ।
जो छिपे रखे मैं हुकमें, सो कौन जाहेर करे मेरा गुझ॥७५॥
मुहम्मद साहिब कहते हैं कि दर्शन की उस रात्रि में मुझे
परब्रह्म का साक्षात्कार हुआ और उनसे मेरी ९०,०००
(नब्बे हजार) हरुफ बातें हुईं। परब्रह्म के हुक्म से मैंने
हकीकत और मारिफत के हरुफों को छिपा रखा है।
भला मेरे सिवाय और कौन है, जो मेरी गुह्य बातों को
स्पष्ट कर दे।

जो हुक्म हुआ जाहेर का, सो जाहेर किए मैं तब।
बाकी रखे जो हुकमें, सो हुकमें जाहेर करों अब॥७६॥

उस समय मुझे जितना जाहिर करने का आदेश था, मैंने उतना कर दिया। शेष जो उनके हुक्म से छिपा रखा था, उसे मैं अब जाहिर कर रहा हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि बशरी सूरत में तो अक्षर ब्रह्म की सुरता थी। क्या वह परमधाम की वहदत, खिल्वत, और निस्बत की हकीकत तथा मारिफत के भेदों को खोल सकती है? यदि अक्षर ब्रह्म की आत्मा इन रहस्यों को खोलने में सक्षम है, तो उन्होंने इश्क की लीला देखने की ही इच्छा क्यों की और मल्की सूरत के रूप में श्यामा जी की सुरता भेजने की क्या आवश्यकता थी? खुलासा १२/१२ में स्वयं अक्षरातीत ने कहा है-

बाकी जो तीस रहे, सो तुम राखियो छिपाए।

बका दरवाजा खोलसी, आखिर को हम आए॥

यहाँ यह भी संशय होता है कि खुलासा की इस चौपाई में श्री राज जी स्वयं कह रहे हैं कि मारिफत के भेदों को मैं स्वयं आकर खोलूँगा तथा खिल्वत की यह चौपाई यही दर्शाती है कि मुहम्मद साहिब ही श्री राज जी के हुक्म से खोल रहे हैं। आखिरकार ब्रह्मवाणी में इस प्रकार का विरोधाभास क्यों है?

इसके समाधान में यही कहना पड़ेगा कि ब्रह्मवाणी में कहीं लेशमात्र भी विरोधाभास नहीं है। अक्षरातीत की लीला को लौकिक बुद्धि से कदापि नहीं समझा जा सकता।

हाकिम और हुक्म में आन्तरिक रूप से कोई भेद नहीं होता, किन्तु बाह्य रूप से देखने पर इनमें प्रत्यक्ष भेद स्पष्ट होता है। इस सम्बन्ध में सनन्ध ३६ / ६२ में कहा गया है—

हुकम लेकर आइया, तब नाम धराया गैन।

हुकम बजाए पीछा फिरया, तब सोई ऐन के ऐन॥

इस संसार में लीला रूप में मुहम्मद साहिब रात-रात भर निमाज पढ़ते हैं, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी चालीस वर्ष तक कठोर साधनायें करते हैं, तथा श्री मिहिरराज जी हब्से में विरह में छः माह तक तड़पते रहते हैं। प्रश्न यह है कि क्या अक्षर ब्रह्म की आत्मा और श्यामा जी परमधाम में भी ऐसा करते हैं?

वस्तुतः संसार को सिखापन देने के लिये अक्षरातीत ने इन तीनों स्वरूपों के द्वारा इस प्रकार की लीला करायी और इन्हें हादी की शोभा दी। जब स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राज जी (हाकिम) के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं, तो यह "हुकम" नाम की बला कहाँ से आ गयी। यदि हम परमधाम की मारिफत की नजर से

देखें, तो यह स्पष्ट होता है कि विधि और निषेध की मर्यादा वाले इस संसार में लोगों के बौद्धिक स्तर के अनुसार तीनों सूरतों को अलग-अलग प्रकार की लीला करनी पड़ती है। आन्तरिक रूप से तीनों एक हैं, किन्तु बाह्य रूप से सर्वदा अलग हैं। इसी भाव में खिलवत १४/७६ में कहा गया है कि जिन भेदों को मैंने उस समय नहीं कहा था, अब मैं कह रहा हूँ।

ए बातें सब मेयराज की, रखें जाहेर तीन सूरत।

और कोई न केहे सके, ए अर्स हक न्यामत॥७७॥

परब्रह्म के दर्शन की ये सारी बातें हैं, जिनके भेदों को मात्र तीन सूरतें ही उजागर कर सकती हैं। परमधाम की इस अनमोल सम्पदा को बखान करने का सामर्थ्य और किसी में भी नहीं है।

और तीनों सूरत, रूहें फरिस्ते उमत।

जो आखिर इनों में गुजरी, मुसाफ में सोई हकीकत॥७८॥

लैल-तुल-कद्र की इस रात में तीनों सूरतों तथा ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि के साथ होने वाली सारी लीला का वर्णन सांकेतिक रूप से धर्मग्रन्थों एवं विस्तृत रूप से ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप में है।

भावार्थ- पुराण संहिता तथा माहेश्वर तन्त्र में श्री देवचन्द्र जी, श्री प्राणनाथ जी, ब्रह्मसृष्टियों, तथा ईश्वरी सृष्टि की लीला का विस्तृत वर्णन है। इसी प्रकार तौरेत, इंजील और जंबूर के कई अंश कुरआन में है, जिनमें तीनों सूरतों तथा ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि का वर्णन है, जैसे जिकरिया एवं एहिया, कियामत के निशान, मूसा आदि का वर्णन बाइबिल एवं कुरआन दोनों में ही है, किन्तु श्री प्राणनाथ जी की ब्रह्मवाणी के बिना इनके भेदों

को कदापि नहीं जाना जा सकता। जागनी लीला में घटित होने वाली अनेक घटनाओं को सांकेतिक रूप से धर्मग्रन्थों में लिखा हुआ है।

सो खोले आपे अपनी, हकीकत फुरमान।

खोले परदे नूर पार के, हुई अर्स पेहेचान॥७९॥

अक्षरातीत ने श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में आकर धर्मग्रन्थों में छिपी अपनी पहचान को प्रकट कर दिया। जब अक्षर से भी परे का ज्ञान मिला, तो सबको ही परमधाम की पहचान हो गयी।

सक जरा किन ना रही, जब खोले ताले ए।

हुआ सूर बका अर्स जाहेर, लिख्या मुसाफ में जे॥८०॥

जब ब्रह्मवाणी के अवतरित होने से सभी धर्मग्रन्थों के

रहस्य स्पष्ट हो गये, तो किसी के मन में किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रहा। धर्मग्रन्थों में जिस परमधाम का मात्र संकेतों में वर्णन है, वह परमधाम उगते हुए अखण्ड सूर्य की तरह सबकी नजरों (ज्ञान-दृष्टि) में आ गया।

ए इलम आए पीछे, नींद आवत क्यों कर।

जब सक जरा ना रही, रूहों क्यों न आवे याद घर॥८१॥

ऐसी अलौकिक ब्रह्मवाणी के अवतरित होने के पश्चात् भी ब्रह्मसृष्टियों को माया की नींद क्यों सता रही है? यह आश्चर्य की बात है कि सारे संशय समाप्त हो जाने के पश्चात् भी सुन्दरसाथ को निज घर की याद क्यों नहीं आ रही?

भावार्थ— ज्ञान के क्षेत्र में परिपक्व हो जाने के बाद भी यदि हमारा ध्यान परमधाम और युगल स्वरूप की शोभा

में नहीं लगता , तो जाग्रत होने की मन्जिल दूर रह जायेगी। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

याद करो बीच अर्स के, जो हकसों किया मजकूर।

मांग्या खेल फरामोस का, बैठ के हक हजूर॥८२॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप उस प्रसंग को याद कीजिए जिसमें आपने परमधाम में श्री राज जी के सामने बैठकर इश्क-रब्द किया था और उनसे माया के इस झूठे खेल को देखने की इच्छा की थी।

तुम बका सुख छोड़ के, खेल मांग्या हाँसी को।

सो देखो हकीकत अपनी, हकें भेजी फुरमान मों॥८३॥

आपने परमधाम के अखण्ड सुखों को छोड़कर माया का हँसी का खेल माँगा था। इस बात की सच्चाई श्रीमुखवाणी

में वर्णित है, जो धाम धनी ने आपके लिये अवतरित की है।

भावार्थ- इस चौपाई में फुरमान का अर्थ कुरआन नहीं, बल्कि ब्रह्मवाणी होगा, क्योंकि कुरआन में इश्क-रब्द का कोई वर्णन नहीं है। सांकेतिक भाषा में एक आयत में "अलस्तो बिरब्ब कुम्म" तथा तीसवें पारे में "इन्ना इन्जुलना" आयत में अवश्य खेल में उतरने का प्रसंग है।

खेल देखाया तुमको, वास्ते तफावत।

इत याद देत सुख पावने, हक बका निसबत॥८४॥

धाम धनी ने परमधाम के अनन्त आनन्द तथा यहाँ के असीम दुःखों के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिये ही तुम्हें माया का यह खेल दिखाया है। अब प्राण प्रियतम अक्षरातीत परमधाम के उस असीम आनन्द को प्राप्त

कराने के लिये अपनी अखण्ड निस्बत (मूल सम्बन्ध) की याद दिला रहे हैं।

इन झूठी जिमी में बैठाए के, देखाई हक बका निसबत।

मेहेर करी रूहों पर, देने अर्स लज्जत॥८५॥

इस झूठे संसार में बैठाकर धाम धनी ने अपनी अखण्ड निस्बत की पहचान करायी है। धाम धनी ने परमधाम का स्वाद देने के लिये ही ब्रह्मसृष्टियों पर इस प्रकार की मेहर की है।

भावार्थ- धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों को मात्र दुःख दिखाने की लीला कर रहे हैं। वे उन्हें स्वप्न में भी दुःख नहीं दे सकते। उनका तो स्पष्ट कथन है- "जिन जुबां मैं दुःख कहूं, सो जुबां करूं सत टूक" (कलश हि. ११/३२)। इस मायावी खेल में भी परमधाम का रसास्वादन कराना

ही धनी को अभीष्ट है। इस सम्बन्ध में श्रृंगार १२ / ३०
का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥

इन ख्वाब जिमी में बैठ के, अर्स सुख लीजे इत।

हक याद देत तिन वास्ते, सब बका न्यामत॥८६॥

हे सुन्दरसाथ जी! इस स्वप्नवत् संसार में रहकर भी
आप परमधाम के अखण्ड सुखों का स्वाद लीजिए।
परमधाम के अखण्ड सुखों का रसपान करने के लिये ही
धाम धनी आपको ब्रह्मवाणी द्वारा याद दिला रहे हैं।

कैसा इलम था तुम पे, पूजते थे किन को।

कैसे झूठे कबीले में थे, अब आए किनमों॥८७॥

हे साथ जी! अपनी आत्म-जाग्रति से पूर्व की अपनी स्थिति का विचार कीजिए कि आपके पास किस प्रकार स्वप्न की बुद्धि का ज्ञान था? आप किस तरह से देवी-देवताओं एवं नश्वर जड़ पदार्थों की पूजा किया करते थे? पहले परिवार के झूठे बन्धनों में फँसे थे, अब आप किस प्रकार सुन्दरसाथ के समूह में शामिल हैं जिनमें मात्र आत्मिक सम्बन्धों की ही प्रधानता है?

कौन किया था वतन, जामें कबूँ मिटी ना सक।

कौन फना सोहोबत में, कहावते थे बुजरक॥८८॥

पहले आपने किस झूठे संसार को अपना घर मान लिया था, जिसमें आज तक किसी के भी संशय नहीं मिटे ?

आप यह विचार कीजिए कि आप सांसारिक जीवों की किस झूठी संगति में फँसे पड़े थे और स्वयं को बड़ा कहलवाया करते थे?

अब कैसा पाया हक इलम, कैसे हुए बेसक।

कैसा पाया बका वतन, कैसा पाया धनी हक॥८९॥

अब आप इस विषय पर चिन्तन कीजिए कि आपने किस प्रकार की ब्रह्मवाणी प्राप्त की है, जिससे आप पूर्णतया संशय रहित हो चुके हैं? अब आपने किस प्रकार अपने अखण्ड घर परमधाम तथा अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत को प्राप्त कर लिया है?

कैसा पाया रूहों कबीला, कैसी पाई हक निसबत।

कैसे दुख से निकस के, पाई सांची न्यामत॥९०॥

अब आपने किस प्रकार ब्रह्ममुनियों का साहचर्य (साथ-साथ रहना) पा लिया? ब्रह्मवाणी के द्वारा आपने अक्षरातीत से अपनी अखण्ड निस्वत को कैसे जान लिया? किस प्रकार आपने इस दुःखमय संसार से अपना नाता तोड़कर परमधाम की अखण्ड सम्पदा प्राप्त की है? ये बातें बहुत ही विचारणीय हैं।

कैसे फना में हुते, आए कैसे बका वतन।

आए कैसे सुख में, छूटी कैसी जलन॥९१॥

पहले आप किस प्रकार की झूठी दुनियां में रह रहे थे? अब आप किस प्रकार अखण्ड परमधाम की शोभा में डूब रहे हैं? सांसारिक दुःखों की अग्नि में जलना छोड़कर अब आप परमधाम के असीम आनन्द में किस प्रकार डूब रहे हैं?

कैसे झूठे घर हुते, पाई कैसी अर्स मोहोलात।

जागत हो के नींद में, कछू विचारत हो ए बात॥९२॥

क्या आपने कभी इस बात का विचार किया है कि आप जाग्रत अवस्था में हैं या नींद में? इस बारे में सोचिए कि पहले आप झूठे संसार में रह रहे थे, अब आप किस प्रकार परमधाम के नूरी महलों में विचरण कर रहे हैं?

कौन जंगल गुमराह में हुते, कैसा पाया अर्स बाग।

नींद उड़ाओ विचार के, क्यों ना देखो उठ जाग॥९३॥

पहले आप जंगलों में भटका करते थे, अब परमधाम के नूरी बागों में भ्रमण करते हैं। हे सुन्दरसाथ जी! अपनी माया की नींद छोड़कर उठते क्यों नहीं? अब जाग्रत होकर विचार कीजिए।

चरकीन जिमी में बैठ के, कैसी लेते थे वाए।

अब वाए झरोखे अर्स के, कैसी लेत हो अब आए॥९४॥

पहले आप गन्दी बस्तियों में दुर्गन्धित हवा से दुःखी थे। अब आप परमधाम के महलों के झरोखों से किस प्रकार शीतल, मन्द, एवं सुगन्धित हवा के झोंके लेते हैं? इसका विचार कीजिए।

कौन बदबोए में हुते, अब आई कौन खुसबोए।

सहूर अपने दिल में, तौल देखो ए दोए॥९५॥

अब आप अपने दिल में दोनों स्थितियों की तुलना करके चिन्तन कीजिए कि पहले आप किस गन्दगी भरी दुनियाँ में रहते थे और अब आपकी सुरता परमधाम की कैसी खुशबू का रसपान करती रहती है?

ए कैसा था दुख वजूद, दुख में थे रात दिन।

अब पाया सुख अर्स ठौर में, और कैसे अर्स तुम तन॥९६॥

पहले आपका शरीर दुःखों का घर था। दिन-रात आप दुःखों की अग्नि में जलते रहते थे। अब आपकी सुरता अपने नूरमयी तन को देख रही है और परमधाम के अखण्ड आनन्द से बाहर नहीं निकल पा रही है।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ८७-१०२ तक का कथन उन सुन्दरसाथ के लिये एक सबक (सिखापन) है, जो तारतम लेने के बाद भी या तो अपने दुःखों का रोना रोते रहते हैं या श्रीमुखवाणी के ज्ञान को कोसते हुए गीता, भागवत आदि ग्रन्थों की महत्ता प्रतिपादित करते हैं।

कैसे सुख पाए कायम तन के, किनसों हुआ मिलाप।

अब देखो साहेब अर्स का, पूछो रूह अपनी आप॥९७॥

हे सुन्दरसाथ जी! अपनी अन्तरात्मा से पूछिए कि अपनी परात्म के दीदार के पश्चात् आपको किस प्रकार के सुखों की अनुभूति हो रही है? आपका मिलन किससे हुआ? निश्चित रूप से आपने अपने प्रियतम का दीदार पाया है। अब जी भरकर धाम धनी के दीदार का आनन्द लीजिए।

भावार्थ— जब हमारी सुरता अपने मूल तन का दीदार करती है, तो माया से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। इसी को कहते हैं— "परआत्म को आत्म देखसी, तब टलसी उलटो फेर जी" (किरंतन ३०/४४)।

अपनी परात्म का दीदार करने वाला सुन्दरसाथ निश्चित रूप से ब्रह्मसृष्टि होता है। उसके धाम हृदय में युगल

स्वरूप विराजमान हो जाते हैं और उसे परमधाम के सुखों का रसास्वादन होने लगता है। इस चौपाई में यही बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है।

कहां रात दिन गुजरानते, अब पाया अर्स रात दिन।

देखो दिल विचार के, कछू फरक है उन इन॥९८॥

पहले आप झूठे संसार के दिन एवं रात में अपनी उम्र व्यतीत कर रहे थे, अब परमधाम के नूरमयी दिन एवं रात्रि का आनन्द ले रहे हैं। अब आप ही अपने दिल में इस बात का विचार कीजिए कि पहले की स्थिति में और अब की स्थिति में कोई अन्तर है या नहीं?

कैसी झूठी निसबत में, करते थे गुजरान।

अब निसबत भई अर्स की, लेत संग सुभान॥९९॥

आत्म-जाग्रति से पहले आप संसार के झूठे सम्बन्धियों में फँसे हुए थे और किसी तरह अपना समय गुजारा करते थे। अब आपका सम्बन्ध परमधाम और अक्षरातीत से हो गया है, जिनके आनन्द में आप पल-पल डूबे रहते हैं।

पेहेनावा फना मिने, और पेहेनावा अर्स का।

कछू पाई है तफावत, तुम देखो दिल अपना॥१००॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप अपने दिल में इस बात का विचार करके देखिए कि संसार के पहनावे में और परमधाम के नूरमयी वस्त्रों एवं आभूषणों के पहनावे में कुछ अन्तर है या नहीं?

भावार्थ- इस चौपाई में उस प्रसंग का वर्णन है, जब आत्मा ध्यान द्वारा परमधाम पहुँचती है तथा यमुना जी में

स्नान करके दयोहरियों में परमधाम का श्रृंगार करती है।

सागर ग्रन्थ ७/४१ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥

अर्थात् अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर ही मूल मिलावा में प्रवेश होगा। उस श्रृंगार में तथा ध्यान टूटने के पश्चात् संसार के श्रृंगार में क्या अन्तर है, इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

अब जिमी फना के, और जिमी बका पटंतर।

पसु पंखी देखो फना के, देखो अर्स जानवर॥१०१॥

इस मायावी संसार की गन्दगी से भरपूर धरती में तथा चेतनता, कोमलता, एवं सुगन्धि से भरपूर परमधाम की अखण्ड नूरमयी धरती में अन्तर देखिए। इसके साथ ही

नश्वर जगत के पशु-पक्षियों एवं परमधाम के जानवरों तथा पक्षियों की शोभा में कितना अन्तर है, इस पर भी विचार कीजिए।

देखो ताल नदी झूठी जिमी, और देखो अर्स हौज जोए।

करो याद सुख दयो रूह को, दिल देख तफावत दोए॥१०२॥

इस नश्वर संसार की गन्दगी से भरपूर ताल-तलैयाँ, नदियों, एवं धरती को देखिए, तथा परमधाम के हौज कौसर एवं यमुना जी की शोभा को देखिए। अपने दिल में इस बात का विचार कीजिए कि संसार में और परमधाम में कितना अन्तर है? इस प्रकार ध्यान द्वारा परमधाम की शोभा में डूबकर (याद कर) अपनी आत्मा को शाश्वत् आनन्द दीजिए।

दिल मजाजी और हकीकी, कहे कुरान में दोए।

ए लेसी तफावत देख के, जो रूह अर्स की होए॥१०३॥

कुरआन में दो प्रकार के दिल कहे गये हैं— झूठा दिल और सच्चा दिल। जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह कुरआन में कहे हुए इस प्रसंग को देखकर दोनों में अन्तर समझ जायेगी।

भावार्थ— कुरआन के सिपार: दश (१०) सूरे तौबा की आयत में इन दो दिलों का प्रसंग है। वस्तुतः दिल और हृदय एकार्थवाची हैं। इनमें मात्र भाषा भेद है। अन्तःकरण का तात्पर्य सूक्ष्म दिल या सूक्ष्म हृदय से होता है, स्थूल से नहीं।

दिल मजाजी दुनी का, इत अबलीस पातसाह।

सो औरों दुस्मन और आपका, मारत सबकी राह॥१०४॥

संसार के जीवों का दिल झूठा होता है। उसमें शैतान इब्लीश की बादशाही होती है। वह संसार के सभी प्राणियों और स्वयं का भी शत्रु है। उसका कार्य ही सबको अज्ञानता के अन्धकार में भटकाना है।

भावार्थ- इब्लीश (शैतान) कोई व्यक्ति नहीं है, बल्कि अज्ञान को ही शैतान कहा जाता है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में इसे "कलि" की संज्ञा दी जाती है। सत्य ज्ञान से रहित होने के कारण संसार के जीव विषय-वासनाओं की तृष्णा में भटकते रहते हैं, इसलिये उनके दिल को झूठा दिल कहते हैं।

और दिल हकीकी मोमिन, सो कहा है अर्स हक।

तरफ नहीं दिल पाक की, जित साहेब की बैठक॥१०५॥

ब्रह्ममुनियों का दिल सच्चा होता है। उसमें अक्षरातीत

विराजमान होते हैं, इसलिये उनके दिल को परमधाम कहलाने की शोभा है। उनके पवित्र दिल में धाम धनी की बैठक होती है, जिससे शैतान पास फटकने की हिम्मत ही नहीं करता।

इस्क मोमिन और दुनी का, कछू देखत हो फरक।

अब इस्क ल्यो दिल अपने, तुम दिल अर्स बुजरक॥१०६॥

हे सुन्दरसाथ जी! आपको ब्रह्मसृष्टियों के प्रेम में और संसार के जीवों के प्रेम में कुछ अन्तर दिखायी पड़ता है या नहीं? आपके दिल को अक्षरातीत का परमधाम कहलाने की महान शोभा प्राप्त है, इसलिये अपने दिल में प्रियतम परब्रह्म का प्रेम बसा लीजिए।

महामत कहे ऐ मोमिनों, जो दिए थे दिल भुलाए।
फरामोस से बीच होस के, अब साहेब लेत बुलाए॥१०७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! आपने अपने दिल को इस मायावी संसार में भुला (भटका) दिया था। अब स्वयं धाम धनी आपको अपनी ब्रह्मवाणी द्वारा माया की नींद से हटाकर जाग्रत कर रहे हैं और परमधाम बुला रहे हैं।

प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥८७६॥

इस प्रकरण में इश्क-रब्द की गुह्य बातों के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

आसिक मेरा नाम, रूह-अल्ला आसिक मेरा नाम।

इस्क मेरा रूहन सों, मेरा उमत में आराम॥१॥

श्री राज जी कहते हैं कि श्यामा जी! मेरा नाम आशिक है। मेरा अटूट प्रेम (इश्क) ब्रह्मसृष्टियों से है और उनके सुख में ही मेरा सुख है।

भावार्थ- इस चौपाई में "नाम" शब्द का तात्पर्य पहचान से है। यहाँ लौकिक नामों का कोई प्रसंग नहीं है। अक्षरातीत शब्दों की परिधि से परे हैं। उन्हें लौकिक नामों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। श्री कृष्ण, श्री देवचन्द्र, और श्री मिहिरराज सभी लौकिक नाम माने जायेंगे। श्रीमुखवाणी में अनेक स्थानों पर "नाम" शब्द

का प्रयोग है, जो मात्र उनकी पहचान से सबन्धित है,
किसी लौकिक नाम से नहीं—

निजनाम सोई जाहेर हुआ, जाकी सब दुनी राह देखत।

किरंतन ७६/१

असल अर्स के बीच में, हक का नाम आसिक।

सिनगार १८/११

नाम मेरा सुनते, और सुनत अपना वतन।

खिलवत १३/४९

दुनी नाम सुनत नरक छूटत, इनों पे तो असल नाम।

सिनगार २१/८४

इलम ले चलो अर्स का, खोल दयो हकीकत।

भूल गईयां आप अर्स को, याद देओ निसबत॥२॥

हे श्यामा जी! आप परमधाम के इस ज्ञान से सभी को वास्तविक सत्य का साक्षात्कार कराइये। माया में जाकर सखियाँ परमधाम को तथा स्वयं को भूल चुकी हैं। आप उनको मेरे अखण्ड सम्बन्ध की याद दिलाइये।

इसारतें रमूजें इत की, लिखी माहें फुरमान।

सो भेज्या हाथ रसूल के, मिलाए देओ निसान॥३॥

मैंने कुरआन के अन्दर संकेत में परमधाम की गुह्य बातें लिखवायी हुई हैं। उसे मैंने रसूल साहिब के हाथ से भिजवाया है। आप तारतम ज्ञान से उसमें लिखे हुए संकेतों के भेद स्पष्ट कीजिए।

भावार्थ— "फुरमान" शब्द व्यापक भाव लिये हुए है। ब्राह्मी आदेश से जो भी ग्रन्थ अवतरित होते हैं, उन्हें फुरमान कहते हैं। श्यामा जी ने अपने पहले तन (श्री

देवचन्द्र जी) से माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, गीता, भागवत, कबीर, और नरसैंया आदि के वचनों के भेदों को खोला, तो दूसरे तन (मिहिरराज जी) से कुरआन के गुह्यतम भेदों को स्पष्ट किया।

और भेजत हों तुमको, कहियो मूल संदेसे।

इलम ऐसा दिया तुमको, जासों उठें मुरदे॥४॥

हे श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी)! मैं आपको इसलिये भेज रहा हूँ, ताकि आप जाकर उनसे परमधाम की मूल बातों को कहना। मैंने आपको इस प्रकार का तारतम ज्ञान दिया है, जिससे माया के जीव भी मेरी पहचान करके जाग्रत हो जायेंगे।

रेहे ना सकों मैं रूहों बिना, रूहें रेहे ना सकें मुझ बिना।

जब पेहेचान होवे वाको, तब सहें ना बिछोहा खिन॥५॥

मैं अपनी आत्माओं के बिना नहीं रह सकता तथा वे मेरे बिना नहीं रह सकतीं। जब ब्रह्मसृष्टियों को मेरे स्वरूप की पहचान हो जायेगी, तो वे एक पल के लिये भी मेरा वियोग नहीं सहन कर सकतीं।

भावार्थ— अक्षरातीत का यह कथन कि "मैं" रूहों के बिना नहीं रह सकता, प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र है। इसमें मानवीय अधीरता जैसी कोई बात नहीं है। सच तो यह है कि अक्षरातीत एक पल के लिये भी अपनी आत्माओं से न कभी अलग थे, न हैं, और न होंगे। ब्रज, रास, और जागनी लीला में सखियों के मूल तन मूल मिलावा में ही रहे हैं तथा उनकी सुरताओं के साथ वे अपने आवेश स्वरूप से लीला करते रहे हैं। आखिर, परात्म या उनकी

सुरता भी तो वहदत और निस्बत की मारिफत में धनी का ही स्वरूप है। इस सम्बन्ध में श्रृंगार २२ / ३६ की यह चौपाई बहुत महत्वपूर्ण है—

दूजे तो हम हैं नहीं, ए बोले बेवरा वाहेदत का।

ज्यों खेलावत त्यों खेलत, ना तो क्या जाने बात बका॥

जब इलम मेरा पोहोंचिया, तब ए होसी बेसक।

तब साइत ना रहे सकें, ऐसा इनों का इस्क॥६॥

जब मेरा तारतम ज्ञान ब्रह्मसृष्टियों तक पहुँचेगा, तो वे संशय रहित हो जायेंगी। उनमें मेरे प्रति इतना प्रेम है कि संशय रहित हो जाने के पश्चात् मेरे बिना एक पल भी नहीं रह सकतीं।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि आत्म-जाग्रति के लिये ब्रह्मवाणी की प्राथमिकता

अनिवार्य है। जब तक सुन्दरसाथ व्यक्तिवाद और स्थानवाद के बन्धनों से निकलकर ब्रह्मवाणी को आत्मसात् नहीं करेगा, तब तक उसकी जागनी किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

ए बात मैं पेहेले कही, रूहें होसी फरामोस।

मेरे इलम बिना तुम कबहूँ, आए न सको माहें होस॥७॥

मैंने यह बात तो मूल मिलावा में ही कह दी थी कि उस माया के संसार में जाकर तुम बेसुध हो जाओगी। मेरे दिये हुए तारतम ज्ञान के बिना तुम कभी भी माया की बेसुधी नहीं छोड़ सकोगी।

फरामोसी हम को क्या करे, फेर कह्या रूहन।

हम अरवाहें अर्स-अजीम की, असल बका में तन॥८॥

मेरी बात सुनकर आत्माओं ने कहा था कि भला माया की बेसुधी हमारा क्या बिगाड़ लेगी। हम तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हैं और जब हमारे मूल तन परमधाम में रहेंगे तो माया से हमारा क्या सम्बन्ध रहेगा।

फुरमान तुमारा आवसी, सो हम पढ़ कर।

देख इसारतें रमूजें, हम भूल जाएं क्यों कर॥९॥

जब आपके आदेश से भेजे हुए धर्मग्रन्थ हमें प्राप्त होंगे और उसमें संकेत में लिखे हुए गुह्य भेदों को हम पढ़ लेंगी, तो यह कैसे सम्भव है कि आपको भूल जायेंगी।

और देवें साहेदी रसूल, दे याद बातें असल।

तब क्यों रेहेवे फरामोसी, कहां जाए मूल अकल॥१०॥

जब श्यामा जी परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द की

बातों की याद दिलाकर साक्षी देंगी, तब हमारे अन्दर माया की बेसुधी कैसे रहेगी। क्या उस समय हमारे पास यहाँ की निज बुद्धि नहीं रह पायेगी।

सुन सुख बातें अर्स की, क्यों ना होवें हुसियार।

जो मोमिन होवे अर्स की, माहें रूहें बारे हजार॥११॥

परमधाम में हम बारह हजार सखियाँ हैं। उनमें से यदि कोई भी आत्मा होगी, तो वह परमधाम के अखण्ड सुखों की बात सुनकर माया के प्रति अवश्य ही सावचेत हो जायेगी।

भावार्थ— परमधाम में अनन्त सखियाँ हैं, किन्तु उनकी सुरता को इस खेल में १२००० (बारह हजार) की संख्या में सीमित कर दिया गया है।

सो तो तबहीं सुनके, होसी खबरदार।

मोमिन इत क्यों भूलहीं, सुन संदेसे परवरदिगार॥१२॥

ब्रह्मसृष्टि प्रियतम के सन्देश को सुनकर माया में कभी भी नहीं भटकेगी। वह तो उस अमृत वाणी को सुनते ही बिल्कुल सावधान हो जायेगी।

आगूं से चेतन करी, एती करी मजकूर।

रुहें सुन ए सुकन, क्यों याद न आवे जहूर॥१३॥

हे धाम धनी! आपने इतनी बातें करके हमें पहले से ही सावधान कर दिया है। जब माया में तारतम ज्ञान से हमें इन बातों को याद दिलाया जायेगा, तो निश्चित ही हमें अपने परमधाम की याद आ जायेगी।

ए फुरमान पढ़े पीछे, पाई जब हकीकत।

तब फरामोसी क्यों कर रहे, क्यों भूलें ए निसबत॥१४॥

तारतम ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् जब हमें सारी वास्तविकता का पता चलेगा, तो यह कैसे सम्भव है कि हमारे अन्दर माया की नींद बनी रहे और आपसे हम अपने मूल सम्बन्ध को भी भूली रहें।

भावार्थ— मात्र तारतम ज्ञान (इल्म-ए-लदुन्नी) ही परमधाम की पहचान करा सकता है। कुरआन के ज्ञाता करोड़ों की संख्या में हैं, जिनमें कोई विरला ही होगा जो शरियत के बन्धनों को तोड़कर अर्श-ए-अजीम की बातें करता हो। अब तक जितने भी ब्रह्ममुनियों ने परमधाम का साक्षात्कार किया है, तारतम ज्ञान से ही किया है, कुरआन से नहीं। यह बात अगली चौपाई से भी स्पष्ट हो जाती है।

हाए हाए ऐसी हमसे क्यों होए, कैसे हम मोमन।

सुन संदेसे क्यों भूलहीं, हक आप वतन॥१५॥

हाय! हाय! हमसे इस प्रकार की भूल कैसे हो सकती है। हम कैसी ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, जो तारतम ज्ञान के रूप में आपके भेजे हुए सन्देश को सुनकर भी आपको, स्वयं को, तथा अपने परमधाम को भूली रहेंगी।

एता हम जानत हैं, जो सौ फरेब करो तुम।

ऐसा इस्क क्यों होवहीं, तुमको भूलें हम॥१६॥

हमारे प्राणवल्लभ! हम तो केवल इतना ही जानती हैं कि यदि आप हमें एक-दो बार नहीं, बल्कि सौ बार भी माया के खेल में भेज दीजिए, तो भी हमारा प्रेम इतने छोटे स्तर का नहीं हो सकता कि हम आपको ही भूल जायें।

तुम कूदत हो अर्स में, अपने इस्क के बल।

तब सुध जरा ना रहे, रहे न एह अकल॥१७॥

इस बात को सुनकर श्री राज जी ने कहा— तुम परमधाम में अपने जिस इश्क के बल पर कूद रही हो अर्थात् बढ़-चढ़कर बातें कर रही हो, जब तुम उस माया के संसार में जाओगी तो तुम्हें अपने इस इश्क की जरा भी सुध नहीं रहेगी और न तुम्हारी ये निज बुद्धि ही वहाँ रहेगी।

सो खेल मांगत हो, वास्ते इस्क देखन।

ए खेल है इन भांत का, उत इस्क न जरा किन॥१८॥

इश्क की परीक्षा के लिये तुम बारम्बार जिस मायावी खेल की माँग कर रही हो, वह खेल ही ऐसा है जिसमें लेशमात्र भी किसी का प्रेम नहीं रहेगा।

ना इस्क ना अकल, ना सुध आप वतन।

ना सुध रहेसी हक की, ए भूलोगे मूल तन॥१९॥

वह ऐसा विचित्र संसार होगा, जहाँ न तो तुम्हारा यह इश्क रहेगा और न यह निज बुद्धि ही रहेगी। न तो तुम्हें अपनी सुध रहेगी और न अपने घर की सुध रहेगी। तुम मुझे तो भूलोगी ही, अपने इन मूल तनों को भी भूल जाओगी।

कई चालें बोली जुदियां, माहें मजहब भेख अपार।

पूजें आग पानी पत्थर, इनमें खुदा हजार॥२०॥

उस मायावी जगत् के लोगों में अनेक प्रकार के रहन – सहन होंगे, अलग-अलग भाषायें होंगी, अनेक प्रकार के धर्म-पन्थ होंगे, तथा असंख्य (बहुत) प्रकार की वेश-भूषायें होंगी। हजारों प्रकार के काल्पनिक परमात्मा होंगे

और लोग परमात्मा के नाम-रूप की कल्पना करके अग्नि, पानी, और पत्थरों की पूजा कर रहे होंगे।

खाहिस से बनावहीं, अपने हाथ समार।

जुदा जुदा कर पूजहीं, जिनको नाहीं पार॥२१॥

उस संसार के लोग देवी-देवताओं के रूप में परमात्मा के इतने अलग-अलग रूपों की कल्पना करते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है। अपनी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये वे जड़ पदार्थों से उनकी मूर्तियाँ बनाते हैं और प्राण प्रतिष्ठा करके पूजा करते हैं।

भावार्थ- पौराणिक, तान्त्रिक, एवं अशिक्षित हिन्दू प्रायः वेद-विरुद्ध आचरण करते हैं। वे धन के लिये लक्ष्मी, विद्या के लिये सरस्वती, शक्ति के लिये दुर्गा, काली, भैरव, एवं शिव की पूजा करते हैं। विघ्नों से मुक्ति

के लिये गणेश जी की, बल के लिये हनुमान जी की, तथा तान्त्रिक सिद्धियों के लिये भैरव , काली, बगलामुखी, ज्वालामुखी, कामाख्या आदि की पूजा करते हैं। यहाँ तक कि सर्पों की, पीपल आदि वृक्षों की, तथा इँटों और मिट्टी से बने चबूतरों की ग्राम देवता कहकर पूजा करते हैं। यह हिन्दू समाज का दुर्भाग्य है।

खेल देखाऊं इन भांत का, जित झूठे में आराम।

झूठे झूठा पूजहीं, हक का न जानें नाम॥२२॥

अब मैं तुम्हें माया का वह खेल दिखाता हूँ, जहाँ लोग झूठे एवं क्षणिक विषयों को ही सुख मानते हैं। वहाँ मेरी पहचान किसी को भी नहीं है। माया के स्वाप्निक जीव महाप्रलय में लय हो जाने वाले देवी-देवताओं एवं जड़ पदार्थों की ही पूजा करते हैं।

एक पैदा हुए एक होत हैं, एक होने की उमेद।

एक गए जात जाएंगे, इन विध को छल भेद॥२३॥

माया के उस संसार में इस प्रकार का छल भरा है कि कोई तो जन्म ले चुका होता है, कोई ले रहा होता है अर्थात् गर्भस्थ हो चुका होता है, तो कोई जीव गर्भ में आने के लिये तैयार हो रहा होता है। कोई मर गया होता है, कोई मरणासन्न अवस्था में होता है, तो कोई कुछ समय के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होने वाला होता है।

देखोगे आसमान जिमी, माहें मुरदों का वास।

देत देखाई मर जात हैं, कर गिनती अपने स्वांस॥२४॥

तुम वहाँ पृथ्वी से लेकर आकाश तक में मरे हुए प्राणियों को देखोगी। उस संसार में जीवित दिखायी देने वाले जीव अपनी उम्र पूरी कर अपना शरीर छोड़ दिया

करते हैं।

भावार्थ- साँसों की गिनती पूरी करने का तात्पर्य अपनी उम्र पूरी करने से है।

मौत सबों के सिर पर, मान लिया सबन।

चौदे तबक के खेल में, ठौर बका न पाया किन॥२५॥

उस मायावी जगत में सभी लोग यह मानते हैं कि सबके सिर पर काल मँडरा रहा है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आज तक किसी ने भी ऐसा स्थान नहीं पाया, जो महाप्रलय में नष्ट न होता हो।

खेलत सब फना में, बोलें चालें सब फना।

सब जानत आपे आपको, हम उड़सी ज्यों सुपना॥२६॥

सभी प्राणी नश्वर संसार में ही जन्म लेते हैं और मरते हैं। उनका बोलना-चालना भी नश्वर ब्रह्माण्ड तक ही सीमित रहता है। इस बात को सभी मनुष्य, असुर, एवं देवता जानते हैं कि जिस प्रकार नींद के टूटने पर स्वप्न समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार महाप्रलय में हम सब आदिनारायण में लय हो जायेंगे।

तब रुहें मुझ आगे कह्या, ऐसा इस्क हमारा जोर।

फरामोसी क्या करे हम को, इस्क देवे सब तोर॥२७॥

मेरी इस बात को सुनकर सभी सखियों ने मुझसे कहा कि हमारा प्रेम इतना शक्तिशाली है कि माया हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। हमारा इश्क माया के सभी बन्धनों को नष्ट कर देगा।

ए मजकूर भई रूहनसों, मुझसों किया रब्द।

और कछुए न ल्यावें दिल में, आप इस्क के मद॥२८॥

सभी आत्माओं के साथ मेरी इस प्रकार की वार्ता हुई। उन्होंने मेरे साथ प्रेम सम्बन्धी विवाद किया। अपने इश्क का उन्हें इतना नशा था कि खेल माँगने और अपने प्रेम को बड़ा कहने के अतिरिक्त और कोई बात उनके दिल में आ ही नहीं रही थी।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में प्रयुक्त "मद" का अर्थ "अभिमान" के भाव में नहीं लेना चाहिए, क्योंकि परमधाम में उसका अस्तित्व ही नहीं है। वस्तुतः यहाँ "मद" शब्द अति आत्मविश्वास (over confidence) के लिये प्रयुक्त है।

बातें बोहोत करी रूहनसों, मेरा कह्या न ल्याइयां दिल।

सुन्या न आगूं इस्क के, बहस किया सबों मिल॥२९॥

मैंने उन्हें समझाने के लिये बहुत सी बातें की, किन्तु मेरी बातों पर उन्होंने जरा भी गौर (विचार) नहीं किया। अपने इश्क के प्रति उनके मन में बहुत अधिक आत्मविश्वास था। उसे प्रदर्शित करने की भावना से उन सभी ने एकसाथ मिलकर मुझसे बहस की।

मैं कह्या इस्क मेरा बड़ा, हादी रूहों आप माफक।

एह बात जब मैं करी, तब तुम उपजी सक॥३०॥

मैंने कहा कि मेरा प्रेम बड़ा है। श्यामा जी और सखियों का प्रेम उनके अनुसार बड़ा है। मैंने जब यह बात कही तो आप सभी के मन में संशय पैदा हो गया।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में गहन रहस्य

छिपा हुआ है। मारिफत से ही हकीकत का स्वरूप प्रकट होता है। इस प्रकार इश्क, निस्बत, वहदत, खिल्वत आदि का मूल स्रोत मारिफत स्वरूप श्री राज जी हैं। जिस प्रकार लहरों में सागर से अधिक जल नहीं आ सकता क्योंकि वे उसी से प्रकट हो रही हैं, उसी प्रकार हकीकत (श्यामा जी और सखियों) का यह कहना उनके पास मारिफत (श्री राज जी) से अधिक इश्क है, उचित नहीं है।

परमधाम में वहदत होने से श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों का इश्क बराबर है और सभी एक-दूसरे को रिझाते हैं। यही कारण है कि सभी अपने को आशिक कहते हैं और अपने इश्क को बड़ा कहते हैं। उनके इस कथन में सच्चाई है, इसीलिये श्री राज जी ने श्यामा जी एवं सखियों से कहा कि जब आप मुझे रिझाती हैं, तो

केवल रिझाने की प्रक्रिया में आपका इश्क बड़ा कहा जा सकता है, किन्तु मेरे मारिफत के स्वरूप से कदापि नहीं।

कहे हादी इस्क मेरा बड़ा, कहें रूहें बड़ा हम प्यार।

ए बेवरा बीच अर्स के, ए होए नहीं निरवार॥३१॥

हे श्यामा जी! तब आप कहने लगीं कि यह कैसे हो सकता है? प्रेम तो मेरा ही बड़ा है। सखियाँ कहने लगीं कि नहीं, ऐसी बात नहीं है। प्रेम तो केवल हमारा बड़ा है। परमधाम की वहदत में इश्क-रब्द का निपटारा सम्भव नहीं था।

क्यों होए तफावत इस्क, बैठे बीच बका में हम।

एक जरा न होए जुदागी, तो क्यों पाइए ज्यादा कम॥३२॥

जब तक हम परमधाम में हैं, तब तक इस विवाद (रब्द) का निर्णय कदापि सम्भव नहीं है। परमधाम की वहदत में जब नाममात्र की भी जुदायगी नहीं है, तो किसी का इश्क कम या ज्यादा कैसे कहा जा सकता है।

पेहेले कहा मैं तुम को, भूलोगे खेल देख।

जहां झूठे झूठा खेलहीं, उत मुझे न पाओ एक॥३३॥

मैंने तुम्हें पहले ही कह दिया कि उस माया के खेल में जाकर तुम भूल जाओगी। उस संसार में स्वप्न के जीव जन्म-मरण के झूठे चक्र में पड़े रहते हैं। वहाँ मुझे बहुत खोजने पर भी तुम नहीं पा सकोगी।

ए हकें अव्वल कहा, भूल जाओगे तुम।

ना मानोगे फुरमान को, ना कछू रसूल हुकम॥३४॥

इस खेल में आने से पहले ही श्री राज जी ने सखियों से कह दिया था कि उस झूठी दुनियाँ में जाकर तुम निश्चय ही भूल जाओगी। उस संसार में न तो तुम मेरे तारतम ज्ञान को मानोगी और न श्यामा जी के आदेशों को ही कुछ समझोगी।

भावार्थ- इस चौपाई में वर्णित फुरमान और रसूल क्या है? इसका स्पष्टीकरण सनंध ३९ / १, २ से होता है-

कह्या जाहेर रसूलें, मैं हरफ सुने हैं कान।

सो आए केहेसी इमाम, मैं लिखे नहीं फुरमान॥

जो हरफ जुबां चढ़े नहीं, सो क्यों चढ़े कुरान।

और जुबां ले आवसी, इमाम एही पेहेचान॥

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि मारिफत के ३०००० (तीस हजार) हरुफ तो मुहम्मद साहिब की वाणी से व्यक्त ही न हो सके। उनका अवतरण श्री

कुल्जुम स्वरूप के अन्दर है, इसलिये तारतम वाणी को ही फुरमान कहा जायेगा। तारतम ज्ञान का विस्तार श्रीमुखवाणी के रूप में इन्द्रावती जी के द्वारा हुआ, इसलिये श्यामा जी के दोनों तनों को रसूल कहा जायेगा। बशरी सूरत के द्वारा उतारे गये कुरआन में शरियत एवं तरीकत का ही वर्णन है। कहीं-कहीं पर ब्रह्मसृष्टियों को साक्षी देने के लिये हकीकत का सांकेतिक वर्णन अवश्य है।

ना मानोगे संदेसे, ना मुझे करोगे याद।

झूठा कबीला करोगे, लगसी झूठा स्वाद॥३५॥

तारतम वाणी में कहे हुए मेरे सन्देश को भी तुम नहीं मानोगी और मुझे याद भी नहीं करोगी। तुम अपने झूठे परिवार बनाकर उनके मोहजाल में फँसी रहोगी। इस

प्रकार तुम्हें झूठे संसार में ही रस आने लगेगा।

जान बूझ के पूजोगे, पानी पत्थर आग।

सब केहेसी ए झूठ है, तो भी रहोगे तिन लाग॥३६॥

उस मायावी संसार में तुम जानबूझकर अग्नि, पानी, एवं पत्थरों की पूजा करोगी। यद्यपि तुम अपने मुख से तो कहोगी कि इन जड़ पदार्थों की पूजा करना अपराध है, फिर भी उसी में फँसी रहोगी।

पूजोगे सब फना को, कोई ऐसा खेल बेसुध।

ना तो क्यों पूजो मिट्टी गोबर, पर क्या करो बिना बुध॥३७॥

माया का वह खेल इस प्रकार बेसुध कर देने वाला है कि वहाँ जाकर तुम सभी नश्वर पदार्थों की ही पूजा करोगी। जाग्रत बुद्धि का ज्ञान न होने के कारण ही तुम

इस प्रकार की भूलें करोगी, अन्यथा सत्य का बोध हो जाने पर तुम मिट्टी और गोबर की पूजा क्यों करोगी।

भावार्थ- जिस देश में आध्यात्मिक ज्ञान के स्वर सबसे पहले गूँजे हों, उसी देश में आज मिट्टी की मूर्तियों, चबूतरों, और गोबर की पूजा होती है। इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा।

सुकन मेरा मानो नहीं, सबे भरी इस्क के जोस।

सबे बोलें नाचें कूदहीं, हमें कहा करे फरामोस॥३८॥

हे श्यामा जी! मेरी बातें किसी ने भी नहीं मानी। सभी सखियाँ अपने इश्क के जोश में थीं। सभी अपनी मस्ती में नाच-कूद रही थीं और यही बात कह रही थीं कि माया की नींद हमारा क्या बिगाड़ लेगी।

हार दिया तब मैं इनों को, रब्द न किया हम।

जाए फंदियां झूठ में, नेक देखाया तिलसम॥३९॥

मैंने इनकी बातों से हार मानकर बहस नहीं की और इनको माया के फन्दे (खेल) में जाने दिया। मैंने तो अभी इन्हें इन्द्रजाल की तरह माया का थोड़ा सा ही झूठा खेल दिखाया है।

इस्क ज्यादा आपे अपना, सबों किया रब्द।

फरामोसी तिलसम देखाइया, तिन किया सब रद॥४०॥

सभी ने अपने इश्क को बड़ा कहकर मुझसे विवाद किया था, इसलिये मुझे इन्हें इन्द्रजाल की तरह लगने वाला माया का यह झूठा खेल दिखाना पड़ा। इस खेल में उनका इश्क चला गया (समाप्त हो गया)।

अब सो क्योंए आप को, काढ़ न सकें तिलसम।

फुरमान ले पोहोंच्या रसूल, तो भी न आवे सरम॥४१॥

अब मैं किसी भी प्रकार से अपने को माया के जाल से नहीं निकाल सकती। श्यामा जी इन्हें जगाने के लिये तारतम ज्ञान लेकर आयी हैं, फिर भी माया में भूले होने की इन्हें शर्म नहीं आ रही।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण से यह संकेत मिल रहा है कि यहाँ फुरमान का भाव तारतम ज्ञान से है क्योंकि सखियों के खेल में आने के बाद फुरमान आने की बात कही गयी है।

फुरमान लिख्या इन विध का, जो पढ़ के देखें ए।

एक जरा सक न रहे, तबहीं जागें हिरदे॥४२॥

यह तारतम वाणी इस प्रकार की है कि यदि कोई इसे

पढ़ कर विचार करे, तो उसमें लेश मात्र भी संशय नहीं रह जायेगा और उनके हृदय में तुरन्त ही जाग्रति आ जायेगी।

भावार्थ- कुरआन के पठन-पाठन से अब तक स्पष्ट रूप से किसी की भी संशय निवृत्ति नहीं हुई क्योंकि उसमें शरियत की ही प्रधानता है।

ऐसा रसूल भेजिया, और भेज्या फुरमान।

और संदेसे रूहअल्ला, तो भी हुई नहीं पेहेचान॥४३॥

मैंने साक्षी देने के लिए मुहम्मद साहिब और कुरआन को भेजा, तथा श्यामा जी के हाथ से तारतम ज्ञान के रूप में अपना सन्देश भी भिजवाया। फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि अभी तक सुन्दरसाथ को मेरी पहचान नहीं हुई।

भावार्थ- यहाँ यह संशय होता है कि इस चौपाई में रसूल और फुरमान शब्द मुहम्मद साहिब तथा कुरआन के लिये प्रयोग किये गये हैं, जबकि इसके पूर्व की दोनों चौपाइयों में इनका अर्थ श्यामा जी और तारतम ज्ञान है। ऐसा क्यों?

परमधाम की आत्मायें सभी वर्गों और पन्थों में हैं। वैश्विक स्तर पर सत्य की पहचान के लिये सभी ग्रन्थों में साक्षी होनी आवश्यक है। जिस प्रकार हिन्दू पक्ष में परमधाम, प्रेम विवाद, ब्रज-रास और जागनी लीला का प्रमाण पुराण संहिता, श्रीमद्भागवत्, तथा माहेश्वर तन्त्रम् में है, उसी प्रकार कतेब परम्परा में ये प्रमाण कुरआन के अन्दर हैं। अक्षरातीत की पहचान सारे संसार को कराने के लिये ही अरब की धरती पर कुरआन का ज्ञान अवतरित किया गया, जिससे कियामत के समय में आने

वाली ब्रह्मसृष्टियों को सारी साक्षी मिल सके।

बिना तारतम ज्ञान के अथर्ववेद, पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, या कुरआन आदि कोई भी धर्मग्रन्थ न तो परमधाम का साक्षात्कार करवा सकते हैं और न सारे संशय मिटा सकते हैं। ये मात्र साक्षी ग्रन्थ हैं। यही कारण है कि चौपाई ४१-४२ में "फुरमान" का अर्थ तारतम ज्ञान किया गया है और उसको लाने वाले सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (रसूल) हैं। खुलासा ग्रन्थ में "फुरमान दूजा ल्याया सुकदेव" कहकर श्रीमद्भागवत् की भी गणना फुरमान के रूप में की गई है।

बड़ा इस्क सबों अपना, कहा रुहों रब्द कर।

तिलसम तो देखाइया, पावने पटंतर॥४४॥

सभी रुहों ने राज जी से रब्द करके यही कहा कि

हमारा इश्क बड़ा है, इसलिये प्रेम का अन्तर स्पष्ट करने के लिए मुझे माया का यह खेल दिखाना पड़ा।

रूहअल्ला भेद तिलसम का, रूहों देवे बताए।

तबहीं रूहों के दिल से, फरामोसी उड़ जाए॥४५॥

जब श्यामा जी तारतम ज्ञान द्वारा माया की वास्तविकता बतायेंगी, तो उसी समय उनके दिल से माया की बेसुधी समाप्त हो जायेगी।

भावार्थ- तारतम ज्ञान द्वारा विवेक दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे जीव माया से हटने लगता है और अपने दिल में धनी का प्रेम बसाने लगता है। माया की बेसुधी हटाने का यही सरल मार्ग है।

रुहें सुनो तुम संदेसे, मैं ल्याया तुम पर।

जो रब्द किया माहें बका, सो ल्याओ दिल भीतर॥४६॥

श्यामा जी कहती हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! धाम धनी ने आपके लिये मेरे हाथ जो सन्देश भेजा है, उसे सुनिये। परमधाम में आपने अपने प्रियतम से इश्क-रब्द किया था, उसे अपने दिल में याद कीजिए।

मुझे भेज्या हक ने, याद दीजो मेरा सुख।

तब इनों तिलसम का, उड़ जासी सब दुख॥४७॥

धाम धनी ने मुझे यह कहकर भेजा है कि मैं आपको परमधाम के अनन्त एवं अखण्ड सुखों की याद दिलाऊँ। जब सुन्दरसाथ परमधाम के आनन्द को अपने दिल में बसाने लगेगा, तो माया के सभी दुःख समाप्त हो जायेंगे।

भावार्थ- धनी का इश्क पाने के लिये परमधाम की

शोभा एवं आनन्द का चिन्तन अनिवार्य है। जहाँ धनी का इश्क होगा, वहाँ माया के दुःखों का रहना सम्भव ही नहीं है। परिक्रमा के चौथे प्रकरण में यही बात दर्शायी गयी है। यह चौपाई संसार के दुःखों से छूटने के लिये चितवनि की राह अपनाने के लिये प्रेरित कर रही है।

बीच बका के बैठ के, हकें कहा याँ कर।

रुहअल्ला कहियो रुहन से, भूल गइयां हक घर॥४८॥

श्यामा जी के दिल रूपी परमधाम में बैठकर श्री राज जी ने कहा कि हे श्यामा जी! आप अपनी सभी सखियों से कहो कि तुम सभी अपने परमधाम को भूल गयी हो।

भावार्थ— इस चौपाई के पहले चरण में आये हुए "बका" शब्द का अर्थ नूरमयी परमधाम नहीं, बल्कि श्यामा जी का दिल रूपी परमधाम है। श्याम जी के मन्दिर में दर्शन

देने के पश्चात् श्री राज जी श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान हो गये थे। उनके धाम हृदय में बैठकर ही उन्होंने ये सारी बातें कही हैं। श्यामा जी के खेल में आये बिना कोई भी आत्मा इस खेल में नहीं आ सकती। यह कदापि सम्भव नहीं है कि सखियाँ माया के संसार में डूबी रहें और श्यामा जी उनको छोड़कर परमधाम में श्री राज जी से अकेले बातें किया करें। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि परमधाम में विराजमान श्री राज जी ने श्यामा जी के दिल में अपनी बातें कहीं। ऐसा ही प्रसंग चौपाई ५१ में है।

हाथ रसूल के भेजिया, तुम ऊपर फुरमान।

हकीकत मारफत की, तुम क्यों न करो पेहेचान॥४९॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! मैंने श्यामा

जी के हाथ तुम्हारे लिये तारतम ज्ञान भेजा है। अब तुम उस ज्ञान से हकीकत एवं मारिफत की पहचान क्यों नहीं कर लेते?

भावार्थ- कुरआन में मात्र शरियत और तरीकत का ज्ञान है। उसके द्वारा हकीकत और मारिफत की पहचान असम्भव है। तारतम ज्ञान और श्यामा जी के इस संसार में आये बिना परमधाम की हकीकत एवं मारिफत उजागर (प्रकट) नहीं हो सकती थी।

रब्द किया था अव्वल, सो क्यों गैयां तुम भूल।

अजूं याद दिए न आवहीं, सुन एती पुकार रसूल॥५०॥

हे साथ जी! परमधाम में आपने जो इश्क-रब्द किया था, उसे क्यों भूल गये हो? श्यामा जी ने पुकार-पुकार कर आपको परमधाम की याद दिलायी, किन्तु आपको

अभी भी वहाँ की याद नहीं आ रही है।

और संदेसे रूहअल्ला, सुने जो अलेखे।

तो भी आंखें खुली नहीं, आए बका से हक के॥५१॥

परमधाम से श्री राज जी ने श्यामा जी के दिल में बेशुमार (बहुत से) सन्देश भेजे, जिन्हें श्यामा जी ने सुना और सब सुन्दरसाथ को सुनाया, तो भी सुन्दरसाथ की आँखें नहीं खुल रही हैं अर्थात् वे सावचेत नहीं हो रहे हैं।

ऐसा इलम हकें भेजिया, आंखें खोल दई बातन।

एक जरा सक ना रही, देखे बका वतन॥५२॥

धाम धनी ने हमारे पास ऐसा तारतम ज्ञान भेज दिया है, जिसने हमारे आत्मिक चक्षुओं को खोल दिया है। अब

किसी भी विषय में नाम मात्र भी संशय नहीं रह गया है। अब तो अपने आत्मिक चक्षुओं से अखण्ड परमधाम भी दिखायी पड़ रहा है।

भावार्थ- इस चौपाई में कहा गया है कि तारतम ज्ञान से हमारे आत्मिक नेत्र खुल गये हैं, जबकि इसके पूर्व की चौपाई में कहा गया है कि सुन्दरसाथ की आँखें नहीं खुल पा रही हैं। इस प्रकार के कथनों से क्या विरोधाभास की झलक नहीं मिल रही है?

इन कथनों में कोई भी विरोधाभास नहीं है। चौपाई ५१ में जो कहा गया है कि "आँखें खुली नहीं", उसका भाव यह है कि श्यामा जी के कथनों से भी सुन्दरसाथ माया के प्रति सावधान नहीं हो रहा है। "आँखें खुलना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ सावधान होना होता है। चौपाई ५२ में बातिनी नजर (आत्मिक चक्षुओं) के खुलने की

बात कही गयी है। माया के प्रभाव से कुछ सुन्दरसाथ तारतम ज्ञान को सुनना ही नहीं चाहते। सुनने वालों में काफी सुनने वाले ऐसे हैं जो ध्यान से नहीं सुनते या सुनकर भी माया में लिप्त रहते हैं, किन्तु कुछ सुन्दरसाथ ऐसे भी होते हैं जो तारतम ज्ञान को आत्मसात् कर माया से लड़ने के लिये कमर कस लेते हैं। इनकी ही आत्मिक दृष्टि खुलती है और ये ही परमधाम का साक्षात्कार कर पाते हैं।

बेसक जान्या आपे अपना, बेसक जान्या हक।

बेसक जान्या हादीय को, उमत हुई बेसक॥५३॥

इस तारतम ज्ञान को आत्मसात् करने वाले सुन्दरसाथ ने अपने निज स्वरूप को यथार्थ रूप से जाना और अपने प्राण प्रियतम की भी पहचान की। उन्होंने श्यामा

जी के स्वरूप की भी स्पष्ट पहचान की। इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियों में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह गया।

ए याद नीके दीजियो, तुम देखो सहूर कर।

मेरे इलम से रूहों को, देवे साहेदी अंतर॥५४॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे श्यामा जी! मेरे इस तारतम ज्ञान से ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की याद अच्छी तरह से दिलाना। उनसे यह भी कहना कि वे विवेकपूर्वक चिन्तन करके देखें कि वे कहाँ फँसी पड़ी हैं। यह तारतम ज्ञान ही उन्हें परमधाम की साक्षी देगा।

बेसक इलम पोहोंचिया, के नाहीं पोहोंच्या तुम।

ए देखो दिल विचार के, तो न्यारा नहीं खसम॥५५॥

तुम्हारे पास संशय रहित तारतम ज्ञान पहुँचा है या

नहीं? यदि तुम अपने दिल में विचार करके देखो, तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि धाम धनी तुमसे एक पल भी दूर नहीं हैं।

इलम पोहोंचया होए तुमको, हमारा बेसक।

तो संदेसे तुमारे इत के, क्यों न पोहोंचे बका में हक॥५६॥

यह आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे पास मेरा संशय रहित तारतम ज्ञान पहुँच चुका है, फिर भी इस खेल में तुम्हारे हृदय की बातें (सन्देश) मेरे तक परमधाम में क्यों नहीं पहुँचती।

भावार्थ— अक्षरातीत सर्वज्ञ है। हमारे हृदय की प्रत्येक बात जो हम सोचते हैं या भविष्य में सोचने वाले होते हैं, श्री राज जी को सब कुछ मालूम होती है। यही बात खिल्वत ४/२ में कही गयी है—

कछू कछू दिल में उपजत, सो भी तुमहीं उपजावत।

दिल बाहेर भीतर अंतर, सब तुमहीं हक जानत॥

इस ५६वीं चौपाई में परमधाम तक सन्देश न पहुँचने का तात्पर्य यह है कि हमारे प्रेम में अभी इतनी कमी है कि हमारी भावनाएँ धाम धनी को स्वीकार नहीं हैं। इस सम्बन्ध में खिल्वत ३/६९ में कहा गया है—

तेहेकीक अर्ज पोहोंचत है, जो भेजिए पाक दिल।

इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि जब हम तारतम ज्ञान से बेशक हो चुके हैं, तो हमें अपने दिल में धनी का प्रेम भर लेना चाहिए ताकि हमारी बातें धनी के द्वारा स्वीकृत हो सकें।

किन ठौर छिपाए तुम को, बोलत हो कहां से।

कौन तरफ हो अर्स के, ए सहूर करो दिल में॥५७॥

तुम अपने दिल में इस बात का विचार करो कि मैंने तुमको कहाँ छिपा रखा है? तुम कहाँ से बोल रहे हो और परमधाम से किस ओर हो— बाहर या अन्दर?

भावार्थ— धाम धनी ने अपनी अँगनाओं को मूल मिलावा में अपने चरणों में छिपा रखा है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी में कहा गया है—

मैं तेहेत कबाए तुमको रखे, कोई जाने ना मुझ बिन।

तुमको तब सब देखसी, होसी जाहेर बका अरस दिन॥

श्रृंगार २९/७३

यद्यपि इस संसार में ऐसा दिखता है कि यहाँ के तन बोल रहे हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि इनके बोलने का नियन्त्रण श्री राज जी के दिल से हो रहा है—

ए दुनी जाने इत बोलत, ए बोले माहें बका।

हम परमधाम से किस तरफ हैं, इसके बारे में खुलासा

१०/४४ बहुत अच्छा प्रकाश डालती है—
 इतहीं बैठे देखे रूहें, कोई आया नहीं गया।
 तुम जानों घर दूर है, सेहेरग से नजीक कहया।।

देखो दिल से दसो दिस, किन तरफ हैं हक।
 ए विचार देखो इलम को, तो जरा ना रहे सक।।५८।।
 अपने दिल में इस बात का विचार करो कि दशों
 दिशाओं में मैं तुमसे किस तरफ हूँ? यदि तारतम ज्ञान से
 विचार करके देखो तो तुम्हें जरा भी संशय नहीं रहेगा।

भावार्थ— कोई वस्तु किसी से किस दिशा में स्थित है,
 यह तब माना जाता है जब दोनों के बीच दूरी हो। जब
 अक्षरातीत शाहरग से भी नजदीक हैं, तो उनके लिये
 दिशा का निर्धारण करना उचित नहीं है।

यहाँ यह संशय होता है कि जब वाणी का कथन है कि

चौदह लोक, निराकार, बेहद, और अक्षर से भी परे
अक्षरातीत है, तो यह कैसे सम्भव है कि धाम धनी
हमारी शाहरग से भी अधिक निकट हैं?

हृद के पार बेहद है, बेहद पार अक्षर।

अक्षर पार वतन है, जागिए इन घर॥

क. हि. ३१/१६५

क्या श्रीमुखवाणी के इन कथनों में विरोधाभास नहीं है?
नहीं! कदापि नहीं! अर्श दिल की स्थिति में अक्षरातीत
ब्रह्मसृष्टियों की शाहरग से भी अधिक निकट हैं। इसे
श्रृंगार ग्रन्थ की इन चौपाइयों से अच्छी तरह समझा जा
सकता है—

और इश्क माहें रुहन, हकें अरस कह्यो जाको दिल।

हकें दिल दे रुहों दिल लिया, यों एक हुए हिल मिल॥

ना तो हक आदमी के दिल को, अरस कहें क्यों कर।
 पर ए आसिक मासूक की वाहेदत, बिना आसिक न कोई कादर॥
 तो पाया खिताब अर्स का, ना तो दिल आदमी अरस क्यों होए।
 ए हक हादी मोमिन बातून, और बूझे जो होवे कोए॥

श्रृंगार २०/१०९, ११०, १२०

मानवीय बुद्धि निराकार और बेहद का अन्त नहीं जान सकती, तो उससे भी परे स्थित परमधाम को इस नश्वर जगत में अपनी प्राणनली से भी निकट जानकर आश्चर्य प्रकट करती है।

इसको इस दृष्टान्त से बहुत ही सरलता से समझा जा सकता है कि जैसे आकाश में पृथ्वी से करोड़ों कि .मी. की दूरी पर स्थित मंगल, शनि, या सूर्य की बिल्कुल सीध में हम अपनी अँगुली या पेन आदि करते हैं, तो ये ग्रह नक्षत्र बिल्कुल ही सटे हुए प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार

अर्श दिल में ऐसी ही नजदीकी होती है—

हक अर्स दिल मोमिन, और अर्स हक खिलवत।

वाहेदत बीच अर्स के, है अर्स में अपार न्यामत॥

दिल मोमिन अर्स कह्या, सब अर्स में न्यामत।

सो क्यों न करे दिल बरनन, जाकी हक सों निसबत॥

श्रृंगार २२/२,५

इस प्रकार श्रीमुखवाणी के कथनों में कहीं भी विरोधाभास की झलक नहीं है।

कौन तरफ वजूद है, कौन तरफ हैं कौल।

हाल कौन तरफ का, कौन तरफ है फैल॥५९॥

तुम्हारा शरीर किस तरफ लगा हुआ है? तुम कहाँ की कथनी करते हो? तुम्हारी करनी और रहनी कहाँ की

हैं?

ए सब एक तरफ हैं, के जुदे जुदे दौड़त।

देखो सहूर करके, है कौन तरफ निसबत॥६०॥

तुम्हारी आत्मा का सम्बन्ध किससे है? अपने दिल में इस बात का विचार करके निर्णय करो कि ये पाँचों चीजें एकमात्र धाम धनी की ओर लगी हुई हैं या माया में अलग-अलग लक्ष्य लेकर दौड़ रही हैं?

जब एक ठौर पाँचों भए, तब तुमारा इत का।

सत संदेसा हक को, क्यों न पोहोंचे माहें बका॥६१॥

जब शरीर, कथनी, करनी, रहनी, और निस्बत ये पाँचों चीजें एकमात्र श्री राज जी की तरफ हो जाती हैं, तो निश्चित रूप से यहाँ का तुम्हारा कोई भी सन्देश अवश्य

ही धाम धनी तक पहुँचता है अर्थात् उनके द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है।

भावार्थ- वजूद का तात्पर्य सम्पूर्ण गुण, अंग, इन्द्रियों से है। मेहेर सागर १५/१४ में इसे इस प्रकार कहा गया है-

जाको लेत है मेहेर में, ताए पेहेले मेहेरें बनावें वजूद।

गुन अंग इंद्री मेहेर की, रूह मेहेर फूंकत मांहे बूंद॥

श्रृंगार २३/४० में कहा गया है कि आत्म-जाग्रति के लिये कथनी, करनी, और रहनी परमधाम की होनी चाहिए। इस प्रकार की स्थिति केवल ब्रह्मसृष्टियों की ही होती है-

अर्स रूहें पेहेचान जाहेर, इनों कौल फैल हाल पार।

सोई जानें पार वतनी, जाको बातून रूह सों विचार॥

अक्षरातीत से अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़े बिना

आत्म-जाग्रति कदापि सम्भव नहीं है। धनी की पूर्ण मेहर वहीं होती है, जहाँ निस्बत (मूल सम्बन्ध) होती है-

पूरी मेहेर जित हक की, तित और कहा चाहियत।

हक मेहेर तित होत है, जित असल है निस्बत॥

सागर १५/३

इलम दिया तुमें खुदाई, तब बदले कौल चाल।

फैल होवे वाहेदत का, तब बेर न लगे हाल॥६२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि धाम धनी ने तुम्हें जो ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप दी है, उससे तुम्हारी कथनी और करनी बदल जायेगी। जब परमधाम की वहदत के अनुसार तुम्हारी करनी हो जायेगी, तब रहनी आने में जरा भी देर नहीं लगेगी।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी के ज्ञान बिना हम कथन रूप में मूल

स्वरूप के साथ नहीं जुड़ सकते। धनी से अपने अखण्ड सम्बन्ध का भाव होने के पश्चात् ही उनके प्रति सर्वस्व समर्पण, सेवा, प्रेम आदि की भावना जाग्रत होती है, जिसका प्रतिफल रहनी के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

गुजरी अर्स बका मिने, मजकूर जो मुतलक।

सो इलम हकें ऐसा दिया, जिनमें जरा न सक॥६३॥

हे सुन्दरसाथ जी! प्रियतम अक्षरातीत ने तुम्हें ऐसा तारतम ज्ञान दिया है, जिससे अखण्ड परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द के सम्बन्ध में लेश मात्र भी संशय नहीं रह सकता।

एही तुमारी भूल है, तुमें बंधन याही बात।

एही फरामोसी तुम को, जो भूल गए हक जात॥६४॥

इस मायावी जगत् में आकर तुम युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी और अपने मूल तनों को भूल चुके हो, जो तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है। इसी कारण तुम माया की नींद में पड़े हुए हो और उसके बन्धनों से नहीं निकल पा रहे हो।

कौल फैल जुदे हुए, हुआ फरामोसी हाल।

अब पड़े याही सक में, इन जुदागी के ख्याल॥६५॥

जब परमधाम की कथनी और करनी को तुमने छोड़ दिया, तो तुम्हें इस माया की बेसुधी में डूबना पड़ा। अब प्रियतम से वियोग हो जाने के विचारों में खोये रहने से तुम्हें आत्म-जाग्रति के सम्बन्ध में ही संशय बना रहता है।

भावार्थ— माया के खेल को देखने के लिये धनी से

आग्रह करना कथनी को छोड़ना है तथा इस खेल में आ जाना ही करनी को छोड़ना है। जब तक कथनी और करनी परमधाम की न आ जाये, तब तक अपनी आत्म-जाग्रति के सम्बन्ध में दृढ़ता नहीं आ सकती।

सो ए इलम जब हक का, देत अर्स की याद।

तुमें बेसक गुजरे हाल की, क्यों न आवे कायम स्वाद॥६६॥

इसलिये यह ब्रह्मवाणी जब तुम्हें परमधाम की याद दिलायेगी, तो तुम्हें धनी के साथ उन आनन्दमयी पलों का अखण्ड स्वाद अवश्य आयेगा।

फरामोसी कुलफ की, कुंजी इलम बेसक।

करो सहूर तुम रूहसों, जो बकसीस है हक॥६७॥

साथ जी! यदि तुम अपनी अन्तरात्मा से इस पर

चिन्तन करो तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि धाम धनी ने अपनी अपार मेहर से तुम्हें यह ब्रह्मवाणी दी है। यह पूर्णतया संशयरहित वाणी है तथा माया की फरामोशी (बेसुधी) रूपी ताले को खोलने की कुञ्जी है।

भावार्थ- जिस प्रकार ताला खोलकर कक्ष में प्रवेश किया जाता है, उसी प्रकार तारतम वाणी को आत्मसात् कर लेने पर माया की बेसुधी हट जाती है और आत्मिक दृष्टि अपने निज घर में विहार करने लगती है।

ए ऐसा इलम है लदुन्नी, जो देत बका की बूझ।

बेसकी सब देत है, और देत हक के दिल का गुझ॥६८॥

यह तारतम ज्ञान ऐसा है, जो माया से परे उस अनादि और अनन्त परमधाम की पहचान देता है। हर तरह से संशय रहित कर देता है और धाम धनी के दिल की उन

छिपी हुई बातों से हमें अवगत (बोध) कराता है, जो हमें परमधाम में भी मालूम नहीं थीं।

भावार्थ- इस चौपाई में ऐसा भाव कदापि नहीं लेना चाहिए कि परमधाम में किसी प्रकार के ज्ञान की कमी है। अक्षरातीत के दिल में इल्म के अनन्त सागर हैं, जिसकी एक बूँद ही वाणी के रूप में अवतरित हो सकी है, किन्तु इल्म की तरह इश्क के भी अनन्त सागर हैं जिनमें डूबी रहने के कारण आत्मायें धनी की मारिफत के स्वरूप की पहचान नहीं कर सकी थीं। इस मायावी जगत् में इश्क न होने से अब इल्म के द्वारा इश्क, निस्बत, वहदत आदि के मारिफत की पहचान हो रही है, जो परमधाम में सम्भव नहीं थी। इस दृष्टि से ब्रह्मवाणी की महत्ता शब्दातीत है।

ऐसी कुंजी हकें दई, जो सहूरें कुलफ लगाए।

तो फरामोसी क्यों रहे, पर हाथ हुकम जगाए॥६९॥

धाम धनी ने तारतम ज्ञान रूपी ऐसी कुंजी दी है, जिसका चिन्तन करके यदि फरामोशी रूपी ताले में लगाया जाये तो निश्चय ही माया की नींद नहीं रह सकती, किन्तु यह भी विशेष बात है कि आत्म-जाग्रति धाम धनी के हुकम के अधीन है।

भावार्थ- इस चौपाई में ब्रह्मवाणी के पाठ की अपेक्षा ब्रह्मवाणी के चिन्तन को प्रधानता दी गयी है। बिना चिन्तन की गहराइयों में उतरे हुए केवल पाठ मात्र से आत्म-जाग्रति नहीं हो सकेगी।

बैठे आगूं हक के, किया था मजकूर।

इंतहाए नहीं अर्स जिमी का, तुम कहूं नजीक हो के दूर॥७०॥

हे सुन्दरसाथ जी! तुम मूल मिलावा में धनी के सम्मुख बैठे हुए हो। वहीं पर तुमने श्री राज जी से प्रेम-विवाद किया था। परमधाम की धरती का विस्तार अनन्त है। अब तुम अपने मन में विचार करो कि तुम उनके नजदीक हो या दूर हो?

बाहेर तो ना जाए सको, छेह न आवे जिमी इन।

एक जरा जुदा न होए सके, तुमें ठौर न बका बिन॥७१॥

परमधाम की जमीन की कोई सीमा नहीं है। इसलिये तुम परमधाम से बाहर तो किसी भी स्थिति में नहीं जा सकते। परमधाम का एक कण भी जब वहाँ से अलग नहीं हो सकता, तो तुम कैसे अलग हो सकते हो। इस प्रकार अपने निज घर के बिना तो तुम्हारा कोई और ठिकाना ही नहीं है।

हक संदेसे लेत हो, कौन तरफ तुमसों हक।

आया इलम खुदाई तुम पे, तिनमें जरा न सक॥७२॥

यदि तुम श्री राज जी के सन्देश को ग्रहण करने का सामर्थ्य रखते हो तो यह बताओ कि श्री राज जी तुमसे किस ओर हैं? तुम्हारे पास तो अक्षरातीत का दिया हुआ तारतम ज्ञान है, जिसमें नाम मात्र के लिये भी संशय नहीं है।

तुमें अर्स देखाया दिल में, जो खोलो ले कुंजी सहूर।

कुलफ फरामोसी ना रहे, अर्स दिल हक हजूर॥७३॥

मैंने इस तारतम ज्ञान द्वारा तुम्हें अपने दिल में ही परमधाम की अनुभूति करा दी है। यदि इस तारतम ज्ञान का चिन्तन करके आत्मसात् करो, तो माया की बेसुधी रूपी यह ताला खुल जायेगा और फरामोशी नहीं रहेगी

तथा तुम्हारे इस अर्श दिल में ही प्रियतम का दीदार हो जायेगा।

बिना विचारे रहेत है, तुम पे हक इलम।

ए सहूर रूहें पोहोंचहीं, तबहीं उड़े तिलसम॥७४॥

यद्यपि तुम्हारे पास अक्षरातीत का दिया हुआ तारतम ज्ञान तो है, लेकिन तुम उसका चिन्तन-मनन नहीं करते। यदि ब्रह्मसृष्टियों के दिल तक ब्रह्मवाणी का चिन्तन पहुँच जाये, तो माया का यह फन्दा नहीं रहेगा।

तीन उमत कही खेल में, एक रूहें और फरिस्ते।

तीसरी खलक आम जो, ए सब लरें सरीयत जे॥७५॥

माया के इस खेल में तीन प्रकार की सृष्टियों की लीला है। पहली ब्रह्मसृष्टि है, तो दूसरी ईश्वरी सृष्टि, और तीसरी

जीव सृष्टि है जो मात्र शरियत (कर्मकाण्ड) के नाम पर लड़ती रहती है।

कुंन से और नूर से, ए दोऊ पैदास।

रूहें उतरी अर्स अजीम से, कही असल खासल खास॥७६॥

कुन्न से अर्थात् संकल्प से उत्पन्न होने वाली सृष्टि जीव सृष्टि है। अक्षर ब्रह्म के द्वारा धारण की गयी सृष्टि ईश्वरी है तथा ब्रह्मसृष्टि परमधाम से आयी है। यह सृष्टि अनादि है और अक्षरातीत परब्रह्म की अर्धांगिनी कही जाती है।

भावार्थ- आदिनारायण के संकल्प से उत्पन्न होने वाली सृष्टि जीव सृष्टि है, जो महाप्रलय में लय हो जाती है। अक्षर ब्रह्म ने इस खेल को देखने के लिये २४००० (चौबीस हजार) सुरतायें धारण की हैं, जो अखण्ड तो हैं किन्तु अनादि नहीं हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ अनादि

हैं, अखण्ड हैं, और साक्षात् धनी की अँगरूपा हैं।

ए इलम-इलाही देत हों, तो भी छूटत नहीं तिलसम।

हकें पेहेले कहया भूलोगे, न मानोगे हुकम॥७७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी !
अक्षरातीत का दिया हुआ यह अखण्ड ज्ञान मैं आपको दे
रहा हूँ, फिर भी आपसे माया नहीं छूट पा रही है। धाम
धनी ने पहले ही कह दिया था कि उस खेल में जाकर
तुम बिल्कुल ही मुझे भूल जाओगी और मेरा कहना
(हुकम) भी नहीं मानोगी।

सोई बातें अब मिली, भूल गैयां घर तुम।

भूली आप और हक को, भूलियां अकल इलम॥७८॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत की कही हुई बातें अब पूर्णतया

सत्य सिद्ध हो रही हैं। इस खेल में आने पर तुम अपने परमधाम को तो भूल ही गयी हो, अपने आपको और धाम धनी को भी भूल गयी हो। यहाँ तक अपनी निज बुद्धि एवं तारतम ज्ञान को भी भुलाये बैठी हो।

फुरमान रसूल ले आइया, रुहअल्ला संदेसे।

असल इलम दे दे थके, अजूं न आवे अकल में ए॥७९॥

मुहम्मद साहिब साक्षी के लिये कुरआन का ज्ञान लेकर आये तथा श्यामा जी सबको जाग्रत करने के लिये श्री राज जी का सन्देश रूपी तारतम ज्ञान लेकर आयीं। वे इस सच्चे ज्ञान को सुना-सुनाकर थक गयीं, लेकिन माया का ऐसा प्रभाव है कि तुम्हारी स्वाज्ञिक बुद्धि के अन्दर इस ज्ञान का प्रवेश नहीं हो पा रहा है।

कही बड़ी मेहेर रसूलें, जो हुई माहें रात मेयराज।

फजर होसी जाहेर, सो रोज कयामत है आज॥८०॥

मुहम्मद साहिब ने कहा है कि दर्शन की रात्रि (शब-ए-मेयराज) में अल्लाह तआला से जो बातें हुईं, वह परब्रह्म की बहुत बड़ी मेहर है। उन्होंने यह भी कहा है कि जब कियामत के समय में फज्र (ज्ञान का सवेरा) की लीला होगी, उस समय ये सारी बातें जाहिर हो जायेंगी। अब वही कियामत का समय है।

तो मजकूर मेयराज का, ए जो किया जाहेर मेहेरबान।

मोमिन देखो हक सहूर से, खोली मारफत-फजर सुभान॥८१॥

उस दर्शन की रात्रि में मुहम्मद साहिब ने अक्षरातीत से जो बातें की, उसे स्वयं धाम धनी ने श्री जी के स्वरूप में प्रकट होकर ब्रह्मवाणी से जाहिर कर दिया है। हे

सुन्दरसाथ जी! यदि विचार करके देखो तो यही निश्चित होगा कि धाम धनी ने मारिफत के ज्ञान का उजाला कर दिया।

भावार्थ- मुहम्मद साहिब ने मारिफत के शब्दों को सुना तो अवश्य, किन्तु अपनी वाणी से वे व्यक्त नहीं कर सके। मारिफत के ज्ञान का वह सारा रस श्री प्राणनाथ जी के द्वारा श्रीमुखवाणी में प्रकट हुआ।

महामत कहे ऐ मोमिनों, अजूं फरामोसी न जात।

बेसक देखो दिन बका, माहें मेयराज की रात॥८२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अभी भी आपके अन्दर से माया की बेसुधी नहीं जा रही है। ब्रह्मवाणी से ज्ञान के उजाले में संशय रहित हो जाइये और अपने उस परमधाम को देखिए, जिसका वर्णन

दर्शन की रात्रि में किया गया है।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥१५८॥

इस प्रकरण में इश्क-रब्द का वर्णन करते हुए सुन्दरसाथ को आत्म-जाग्रति के लिये प्रेरित किया गया है।

मेहेर हुई महंमद पर, खोले नूरतजल्ला द्वार।

सब मेयराज में लेय के, दिया हकें दीदार॥१॥

मुहम्मद साहिब पर सच्चिदानन्द परब्रह्म की बहुत बड़ी मेहर हुई कि उन्हें दर्शन की रात्रि में परमधाम बुलाकर श्री राज जी ने दर्शन दिया और परमधाम का दरवाजा खोल दिया।

भावार्थ- दरवाजा खोलने की बात आलंकारिक है। परमधाम की शोभा का अनुभव करना ही दरवाजा खुल जाना है।

बीच बका के पोहोंचिया, जित जले जबराईल पर।

तित नब्बे हजार हरफ सुने, फिरे जो मजकूर कर॥२॥

मुहम्मद साहिब उस परमधाम में पहुँचे, जहाँ जाने का प्रयास करने पर जिबरील के पर जलने लगते हैं। मुहम्मद साहिब ने धाम धनी से नब्बे हजार हरुफ सुने और बातें कर पुनः इस संसार में आ गये।

भावार्थ— जिबरील कोई पक्षी नहीं है, जिसके पर जलने की बात की जाये। पर (पँख) जलने की बात आलंकारिक है। इसका भाव यह होता है कि उस स्वलीला अद्वैत के वहदत में अक्षर ब्रह्म के जोश का फरिश्ता नहीं जा सकता। श्री राज जी और मुहम्मद साहिब में बातें हुई, उसको यदि व्यक्त किया जाये तो नब्बे हजार हरुफ बनते हैं। नब्बे हजार हरुफ सुनने का यही आशय है।

हुकम हुआ इमाम को, खोल दे द्वार रुहन।

आवें सब मेयराज में, दिल देखें अर्स मोमिन॥३॥

मूल स्वरूप श्री राज जी का हकी सूरत के लिये आदेश हुआ कि ब्रह्मसृष्टियों के लिये परमधाम का दरवाजा खोल दो, जिससे सभी अपने दिल के नेत्रों से परमधाम और अपने मूल स्वरूप परात्म का दीदार वैसे ही कर सकें जैसे मुहम्मद साहिब ने शब-ए-मेयराज में किया था।

भावार्थ- श्री महामति जी के धाम हृदय में अक्षरातीत (श्री राज जी, श्री प्राणनाथ जी) विराजमान हैं। मूल स्वरूप अपने दिल में जो कुछ भी लेंगे, आवेश स्वरूप के अन्दर भी वही बात आयेगी, जिसे हुकम कहा गया है।

श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान आवेश स्वरूप को ही श्री प्राणनाथ जी या आखरूल इमाम कहते हैं। चूँकि कुरआन की भाषा में एक अल्लाह तआला

के अतिरिक्त अन्य कोई भी परब्रह्म नहीं हो सकता , इसलिये इस संसार में जितने भी स्वरूप धारण किये जायेंगे उन्हें परब्रह्म के हुक्म के अधीन माना जायेगा। यही कारण है कि इस चौपाई के पहले चरण में कहा गया है कि इमाम को धाम धनी का हुक्म हुआ। इस सम्बन्ध में श्रृंगार १९/६५ में कहा गया है—

जो तोहे कहे हक हुक्म, सो तूं देख महामत।

और कहो रूहन को, जो तेरे तन वाहेदत॥

इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि दिल के नेत्रों से देखें। यहाँ यह प्रश्न होता है कि ध्यान अपने धाम हृदय में किया जाये या परमधाम में?

यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि ध्यान हमेशा परमधाम का ही करना चाहिए। हद-बेहद से परे नूरमयी परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप का ध्यान करते-करते हमारी

आत्मा का दिल और परात्म का दिल दोनों ही एकरस हो जाते हैं। उस समय परमधाम की सम्पूर्ण छवि आत्मा के धाम हृदय में दिखने लगती है। इसे सागर ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

सागर ११/४४

आत्मा का दिल ही आत्मा का चक्षु है, जिसमें धनी की शोभा को बसाया जाता है। जिस प्रकार हम अपने बाह्य चक्षुओं से संसार को देखते हैं किन्तु नेत्रों में देखने की शक्ति का सम्बन्ध जीव से होता है, उसी प्रकार आत्मा के दिल में परमधाम की अनुभूति होती है और यही कहा जाता है कि दिल की आँखों से देखा जाता है, किन्तु वास्तविकता यह होती है कि आत्म-दृष्टि ही परमधाम

का दर्शन करती है।

खिलवत सब मेयराज में, जो रूहों करी अव्वल।

सो खोले हक हादीय की, ज्यों देखें हकीकी दिल॥४॥

आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबबुज्रमाँ श्री प्राणनाथ जी ने शब-ए-मेयराज (दर्शन की रात्रि) के रहस्यों को उजागर करके मूल मिलावा (खिल्वत) में श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों के बीच होने वाले इश्क-रब्द को भी स्पष्ट कर दिया है, ताकि सच्चे दिल वाले मोमिन (ब्रह्ममुनि) उसे समझ जायें।

आखिर गिरो जो रूहन, सब मेयराज में आराम।

याको दर्ई इमामें हुकमें, वाहेदत की अर्स ताम॥५॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को उस दर्शन की रात्रि (शब-

ए-मेयराज) की बातों में सुख प्राप्त होता है। धाम धनी के आदेश से इन सुन्दरसाथ को आखरूल इमाम महदी ने परमधाम की वहदत की अनुभूति का रसास्वादन कराया।

खिलवत हक हादी रुहन की, कबूं न जाहेर किन।

सो रुहअल्ला ने रुहसों, तिन कही आगे मोमिन॥६॥

श्री राजश्यामा जी और सखियों की खिल्वत की बात आज दिन तक किसी ने भी नहीं कही है। खिल्वत की बातों को श्यामा जी ने श्री इन्द्रावती जी को और श्री इन्द्रावती जी ने सुन्दरसाथ को बताया। संक्षेप में वे बातें इस प्रकार हैं।

एक समे हक हादी रूहें, मिल किया मजकूर।

रब्द किया इस्क का, सबों आप अपना जहूर॥७॥

एक समय श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों ने आपस में प्रेम सम्बन्धी वार्ता की। उसमें उन्होंने अपने – अपने इश्क को दूसरों के इश्क से बड़ा कहा और इस बात पर रब्द किया।

रूहें कहें सब मिल के, हक के आसिक हम।

इस्क पूरा है हममें, ए नीके जानो तुम॥८॥

सभी सखियों ने मिलकर यह कहा कि हम ही श्री राज जी के आशिक हैं। इस बात को आप अच्छी तरह से जान लीजिए कि हमारे अन्दर पूर्ण इश्क है।

और आसिक बड़ी रूह के, इनमें नहीं सक।

इस्क हमारे रूहन के, जानत हैं सब हक॥९॥

इतना ही नहीं, हम श्यामा जी के भी आशिक हैं। हमारी इस बात में किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। श्री राज जी हम सभी सखियों के अन्दर के पूर्ण इश्क को अच्छी तरह से जानते हैं।

बड़ी रूह कहे मुझ में, हक का पूरा इस्क।

रूहें प्यारी मेरी रूह की, इनमें नहीं सक॥१०॥

उनकी इस बात को सुनकर श्यामा जी कहने लगीं कि श्री राज जी का पूर्ण इश्क तो मेरे अन्दर है, अर्थात् मैं श्री राज जी को पूर्ण रूप से चाहती हूँ। इसमें कोई शक नहीं कि सभी सखियाँ मुझे बहुत प्यारी हैं।

तब हकें कहा सबन को, मैं तुमारा आसिक।

और आसिक बड़ी रूह का, कौन मेरे माफक॥११॥

उनकी इस बात को सुनकर श्री राज जी ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा— मैं सभी सखियों का आशिक हूँ और श्यामा जी का भी आशिक हूँ। इश्क में मेरे समान कोई भी नहीं है।

खबर मेरे इस्क की, तुम जानी नहीं किन।

इस्क बड़े सबों अपने, तो कहे रूहन॥१२॥

तुम सभी सखियों ने अपने इश्क को बड़ा इसलिये कहा है, क्योंकि तुममें से किसी को भी मेरे इश्क की पूर्ण पहचान नहीं है।

और पातसाही मेरे अर्स की, तुमको नहीं खबर।

इस्क सबों को अपने, तो बड़े आए नजर॥१३॥

परमधाम की बादशाही (ऐश्वर्य) की तुम्हें जरा भी पहचान नहीं है। यही कारण है कि तुम सभी को मात्र अपना ही इश्क नजर आ रहा है।

भावार्थ— सम्पूर्ण परमधाम अक्षरातीत का ही स्वरूप है। परमधाम में अनन्त नूर, इश्क, आनन्द, और वहदत है। कालमाया के ब्रह्माण्ड में सब कुछ इसके पूर्णतया विपरीत है। कालमाया में गये बिना परमधाम के अनन्त इश्क और आनन्द की पहचान हो ही नहीं सकती। धाम धनी के कहने का आशय यही है कि जब तुम माया में जाकर इश्क से रहित हो जाओगी, तब तुम्हें मेरे इश्क या परमधाम के ऐश्वर्य का पता लगेगा। उसके पश्चात् तुम कभी भी अपने इश्क को बड़ा नहीं कहोगी।

बुजरक इस्क अपना, तोलों देख्या तुम।

कादर की कुदरत की, तुमको नहीं गम॥१४॥

अपने इश्क को तुम तभी तक बड़ा कह रही हो जब तक तुम अक्षर ब्रह्म की माया (कालमाया) के ब्रह्माण्ड में नहीं जाती हो।

साहेबी अर्स अजीम की, तुमें नजर आवे तब।

नूर-तजल्ला नूर थेँ, जुदे होए देखो जब॥१५॥

जब तुम मुझसे और अक्षर ब्रह्म से अलग होकर कालमाया के ब्रह्माण्ड में जाओगी, तभी तुम्हें परमधाम की साहिबी (प्रभुता, श्रेष्ठता, गरिमा) की पहचान हो सकेगी।

खबर तुमारे इस्क की, तो होवे जाहेर।

सब मिल जाओ इत थें, बका से बाहेर॥१६॥

तुम्हारे इश्क की वास्तविकता तो तब उजागर होगी,
जब तुम सभी मिलकर परमधाम से बाहर कालमाया के
ब्रह्माण्ड में चली जाओ।

एक पातसाही अर्स की, और वाहेदत का इस्क।

सो देखलावने रूहन को, पेहेले दिल में लिया हक॥१७॥

इश्क-रब्द को देखकर धाम धनी ने अपने दिल में
पहले ही ले लिया कि सखियों को परमधाम की बादशाही
और वहदत के इश्क की पहचान करानी है।

कहूं विध वाहेदत की, बात करनी हकें जे।

सो अपने दिल पेहेले लेय के, पीछे आवे दिल वाहेदत के॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मैं परमधाम की वहदत की यथार्थता का वर्णन कर रहा हूँ। धाम धनी को जो कुछ भी करना होता है, उसे पहले अपने दिल में लेते हैं। उसके पश्चात् वहदत के स्वरूप श्यामा जी एवं सखियों में वही बात आ जाती है।

भावार्थ- परमधाम में आनन्द की वहदत में श्यामा जी, सखियाँ, एवं महालक्ष्मी जी आती हैं, तथा सत् की वहदत में मात्र अक्षर ब्रह्म आते हैं।

पोहोर दिन से चार घड़ी लग, बरस्या हक का नूर।

इस्क तरंग सबों अपने, रोसन किए जहूर॥१९॥

प्रातःकाल ६ बजे से शाम के साढ़े चार बजे तक

अक्षरातीत का नूर बरसता रहा, अर्थात् उनके हृदय का प्रेम-इश्क सबमें प्रवाहित होता रहा। सभी ने अपने-अपने हृदय में उमड़ने वाले इश्क के सागर की लहरों का बखान पूरी दृढ़ता से किया।

भावार्थ- प्रातःकाल ६ बजे युगल स्वरूप तीसरी भूमिका की पड़साल पर खड़े हो जाते हैं। उस समय उनके साथ सभी सखियाँ होती हैं। परमधाम के पशु-पक्षी उनके दीदार के लिये चाँदनी चौक में एकत्रित हो जाते हैं। श्री राज जी अपनी नूरी नजरों से उन्हें इश्क का रस पिलाते हैं।

इसके पश्चात् जब युगल स्वरूप झरोखे को पीठ देकर सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं और गायन होने लगता है, तो साढ़े सात बजे अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक में आकर श्री राज जी का दर्शन करते हैं। उन्हें देखकर

सखियों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने उनका खेल देखने की इच्छा प्रकट की।

इसके पश्चात् दोपहर के समय जब श्री राजश्यामा जी तीसरी भूमिका में नीले-पीले मन्दिर में पौढ़ रहे होते हैं, उस समय सखियाँ वनों, रंगमहल, एवं आसपास की परिक्रमा में जाती हैं। उस दिन वे मात्र इश्क की ही चर्चा करती रहीं।

तीन बजे से साढ़े चार बजे तक तीसरी भूमिका में बहुत अधिक रब्द हुआ। अन्ततोगत्वा खेल दिखाने के लिये धाम धनी सबको लेकर साढ़े चार बजे मूल मिलावा में आ गये। यह प्रसंग महामति लालदास जी कृत बड़ी वृत्त १५/४० में वर्णित है—

तीसरी भोम से आए के, बाकी दिन रह्या घड़ी चार।

भोम तले की आए के, चौक पांचवे का व्यवहार॥

अपने अपने इस्क का, सबों देखाया भार।

तोलों किया रब्द, दिन पीछला घड़ी चार॥२०॥

तीसरी भूमिका में शाम के साढ़े चार बजे तक इश्क-रब्द होता रहा। सभी अपने-अपने इश्क को बड़ा कहते रहे।

एह बातें असल की, करते इस्क सों प्यार।

हँसते खेलते बोलते, एही चलत बारंबार॥२१॥

ये सारी बातें उस परमधाम की है, जहाँ सभी इश्क में डूबकर एक-दूसरे से प्रेम सम्वाद करते रहे। हँसने, खेलने, और बोलने के समय भी इश्क-रब्द की ही बात चलती रही।

अपना अपना इस्क, बड़ा जानत सब कोए।

बीच बका के बेवरा, इस्क का न होए॥२२॥

सभी यह मान रहे थे कि केवल उनका ही इस्क बड़ा है।
इस प्रकार उस अखण्ड परमधाम में इस्क का निरूपण
सम्भव नहीं था।

इस्क का हक हादी रूहें, रब्द किया माहों-माहें।

सो हक से बीच अर्स के, घट बढ़ होवे नाहें॥२३॥

श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों ने आपस में इस्क
के सम्बन्ध में बहुत अधिक रब्द किया। स्वयं श्री राज जी
भी परमधाम के अन्दर किसी का इस्क कम या अधिक
नहीं कर सकते।

जित जुदागी जरा नहीं, तित बेवरा क्यों होए।

तार्थें रूहें रब्द हक का, क्यों ए ना निबरे सोए॥२४॥

जिस परमधाम में लेश मात्र भी वियोग नहीं है वहाँ इश्क का ब्योरा कैसे हो सकता है, इसलिये वहाँ रूहों और श्री राज जी के बीच होने वाले इश्क-रब्द का निपटारा किसी प्रकार से नहीं हो सकता।

एक पात न गिरे अर्स बन का, ना खिरे पंखी का पर।

अपार जिमी की रूह कोई, कहूं जाए न सके क्योंए कर॥२५॥

परमधाम में वनों के वृक्षों का एक पत्ता भी कभी नहीं गिरता है। यहाँ तक कि किसी पक्षी का पंख भी नहीं गिरता। परमधाम का विस्तार इतना अनन्त है कि कोई आत्मा किसी प्रकार से उसके बाहर कहीं भी नहीं जा सकती।

आगूं वाहेदत जिमी के, कहूं नाम न जरा एक।

आगूं जरे वाहेदत के, उड़ें ब्रह्मांड अनेक॥२६॥

परमधाम की वहदत की भूमिका के समकक्ष किसी भी ब्रह्माण्ड का कोई नाम नहीं है, अर्थात् उसकी बराबरी में कोई भी ब्रह्माण्ड (बेहद या कालमाया) नहीं है। परमधाम के एक कण के सामने कालमाया के अनेक ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाते हैं।

रूहें उन वाहेदत की, ताए फरेब न रहे नजर।

सो क्यों पड़े फरेब में, देखो सहूर कर॥२७॥

ब्रह्मसृष्टियाँ उसी वहदत की भूमिका में रहने वाली हैं और उनका स्वरूप भी वहदत का ही है। उनकी इश्कमयी नूरी नजरों के सामने यह झूठा संसार नहीं रह सकता। हे सुन्दरसाथ जी! इस बात का विचार करके

देखिए कि ऐसी ब्रह्मसृष्टियाँ इस झूठे संसार में कैसे फँस गयीं?

मौत उत पैठे नहीं, कायम अर्स सुभान।

ठौर नहीं अबलीस को, जरा न कबू नुकसान॥२८॥

अक्षरातीत का परमधाम अखण्ड है। वहाँ मृत्यु प्रवेश नहीं कर पाती। वहाँ इब्लीश का भी ठिकाना नहीं है। वहाँ कभी भी कोई वस्तु नष्ट नहीं होती है।

अर्स बका वाहेदत में, सुध इस्क न होवे इत।

जुदे जुदे हो रहिए, इस्क सुध पाइए तित॥२९॥

अखण्ड परमधाम की वहदत में इश्क की सुध नहीं हो सकती। इश्क की सुध (पहचान) तो वहीं पर हो सकती है, जहाँ अलग-अलग रहना पड़े।

वाहेदत में सुध इस्क की, पाइए नहीं क्यों कर।

घट बढ़ इत है नहीं, अर्स में एकै नजर॥३०॥

परमधाम की वहदत में इश्क की सुध किसी भी प्रकार से इसलिये नहीं हो सकती है, क्योंकि वहाँ तो कोई भी चीज कम या अधिक हो ही नहीं सकती। परमधाम में हमेशा एक समान ही स्थिति बनी रहती है।

बिना जुदागी इस्क की, क्यों कर पाइए खबर।

सो तो बका में है नहीं, सब कोई बराबर॥३१॥

बिना वियोग का अनुभव किये इश्क की पहचान नहीं हो सकती। परमधाम में वियोग का नाममात्र भी अस्तित्व नहीं है। वहाँ सभी कुछ समरूप है।

कोई बात खुदा से न होवहीं, ऐसे न कहियो कोए।

पर एक बात ऐसी बका मिने, जो हक से भी न होए॥३२॥

किसी को कभी भी ऐसा नहीं कहना चाहिए कि परब्रह्म से सब कुछ नहीं हो सकता। वे सर्वशक्तिमान हैं, सब कुछ कर सकते हैं, लेकिन परमधाम में एक ऐसी बात है जो उनसे भी नहीं हो सकती। आत्माओं को तो दूर की बात है, वे परमधाम के एक कण को भी अपने से अलग नहीं कर सकते।

कौल फैल हाल बदले, पर ना छूटे रूह इस्क।

रूह इस्क दोऊ बका, इनमें नाहीं सक॥३३॥

कथनी, करनी, और रहनी बदल सकती है, किन्तु ब्रह्मसृष्टि से कभी भी इश्क नहीं छूट सकता। इस कथन में जरा भी संशय नहीं है कि इश्क एवं ब्रह्मसृष्टि दोनों ही

अखण्ड हैं।

दिल फिरे रंग फिरत है, जुसा जोस बदलत।

पर असल इस्क ना बदले, जो नेहेचल रुह न्यामत॥३४॥

दिल बदलने के साथ ही रंग (आनन्द) बदल जाता है, शरीर और जोश भी बदल जाता है, लेकिन परमधाम के अखण्ड इश्क में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। धाम धनी के द्वारा ब्रह्मसृष्टियों को दी गयी यह अखण्ड न्यामत है।

भावार्थ- परात्म का दिल वहदत के अन्दर है, जिसके अन्दर इश्क और आनन्द भरपूर है। आत्मा का दिल इस खेल में है, जो जीव के ऊपर बैठकर माया के खेल को देख रहा है।

दिल मोमिन अरस तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।

केहेने को ए दिल है, है अरसै दिल असल॥

श्रृंगार २६/१४

परात्म का दिल जब तक परमधाम की लीला में संलग्न था, तब तक वह प्रेम, आनन्द, वहदत, और निस्बत से जुड़ा हुआ था। जब से वह दिल श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर माया का दृश्य देखने लगा है, तब से वह परमधाम के आनन्द के बदले माया के दुःखों को देखने लगा है, इश्क के स्थान पर घृणा की कारस्तानी देख रहा है। अब उसे अपना नूरी शरीर भी नहीं दिखायी पड़ता है, बल्कि वह अपने उस पञ्चभौतिक तन को देख रहा है जिसके नव द्वारों से गन्दगी ही निकलती रहती है। अब उसमें धनी को रिझाने का जोश नहीं है, बल्कि माया में लिप्त होने का जोश है—

खेल का जोस आया सबों, इस्क न रह्या किन।

सब चाहें साहेबी खेल की, हक इस्क न नजीक तिन॥

श्रृंगार २७/३४

परमधाम की कथनी, करनी, और रहनी की जगह माया की कथनी, करनी, और रहनी हो गयी है। यह सब कुछ दिल के साथ हो रहा है, किन्तु परात्म के तन में पहले जैसा ही अखण्ड इश्क है, वहदत है, और निस्बत का सम्बन्ध है।

रुहों सबों इस्क का, किया बड़ा मजकूर।

इस वास्ते बेवरा इस्क का, मुझे देखलावना जरूर॥३५॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे श्यामा जी! सभी सखियों ने मुझसे इश्क के बारे में बहुत अधिक बातें की। इसलिये मैंने निश्चय किया कि अब इश्क का ब्योरा करना ही पड़ेगा।

इस्क बेवरा देखने, एक तुमें देखाऊं ख्याल।

इस्क तअल्लुक रूह के, छूटे ना बदले हाल॥३६॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे सखियों! इश्क का निर्णय करने के लिये मैं तुम्हें एक सपना दिखाता हूँ। तुमसे इश्क का अखण्ड सम्बन्ध है, न तो वह छूट सकता है और न बदल सकता है।

रूहें अर्स अजीम की, ताए लगे ना कोई नुकसान।

ऐसा खेल देखाऊं तुमें, जो कछू ना रहे पेहेचान॥३७॥

तुम परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हो। इस खेल में तुम्हें किसी भी प्रकार की क्षति नहीं होगी। मैं तुम्हें इस प्रकार का खेल दिखाने जा रहा हूँ, जिसमें तुम्हें कुछ भी पहचान नहीं रहनी है।

ऐसा इस्क तुम पे, रूह से क्यों ए ना छूटत।

पर ए खेल इन भांत का, जगाए भी न जागत॥३८॥

तुम्हारे पास परमधाम में ऐसा अखण्ड इश्क है, जो तुमसे किसी भी प्रकार से छूट नहीं सकता, किन्तु माया का यह खेल ही इस प्रकार का है कि तुम जगाने पर भी नहीं जागोगी।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी में कई स्थानों पर कहा गया है कि इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों में नाम मात्र के लिये भी इश्क नहीं है-

हक इस्क सबों में पसरया, इस्क न जरा माहें हम।

श्रृंगार २८/९

सब अंग हमारे हक हाथ में, इस्क मांगे रोय रोय।

सब अंग हमारे बांध के, हक आप हांसी करे सोय॥

श्रृंगार २७/५७

जो देते हमको इस्क, तो क्यों सके हम गाए।

श्रृंगार २७/५६

इन कथनों को पढ़कर यह संशय उत्पन्न होता है कि क्या ये कथन विरोधाभास नहीं दर्शाते हैं क्योंकि खिल्वत के इस प्रकरण की चौपाई ३३, ३४, ३६ और ३८ में कहा गया है कि रूह से इश्क कभी भी अलग नहीं हो सकता?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि श्रृंगार ग्रन्थ की पूर्वोक्त जिन चौपाइयों में आत्मा में इश्क न होने की बात कही गयी है, वह इस खेल का प्रसंग है। आत्मा तो जीव के ऊपर द्रष्टा के रूप में खेल को देख रही है। जब इस ब्रह्माण्ड में इश्क है ही नहीं, "सो तो निराकार के पार के पार, इत दुनी पावे क्यों कर" (परिकरमा ३९/१२), तो जीव या आत्मा के द्वारा उसकी अनुभूति

कैसे की जा सकती है।

खिल्वत की जिन चौपाइयों में रूह के अन्दर अखण्ड इश्क की बात की गयी है, वहाँ रूह का तात्पर्य खेल में आयी हुई सुरता, वासना, या आत्मा से नहीं, बल्कि परात्म से है। परात्म तो परमधाम की अखण्ड वहदत में है, जिसमें इश्क के कम हो जाने या अलग हो जाने का प्रश्न ही नहीं है।

मैं छिपोंगा तुमसे, तुम पाए न सको मुझ।

न पाओ तरफ मेरीय को, ऐसा खेल देखाऊं गुझ॥३९॥

उस मायावी खेल में मैं तुमसे छिपा रहूँगा। तुम किसी भी तरह से मुझे नहीं पा सकोगी। मैं तुम्हें ऐसा रहस्यमयी खेल दिखाऊँगा, जिसमें तुम्हें यह पता ही नहीं चल सकेगा कि मैं तुम्हारी किस ओर हूँ।

और कहूं जाए छिपोगे, के हमको करोगे दूर।

के इतहीं बैठे देखाओगे, धनी अपने हजूर॥४०॥

उनकी इस बात को सुनकर सखियाँ पूछने लगीं कि हे धाम धनी! क्या आप हमसे कहीं दूर जाकर छिप जायेंगे, या हमें अपने से दूर कर देंगे, या अपने सामने यहीं पर बैठाकर हमें माया का खेल दिखायेंगे?

दूर कहूं न जाऊंगा, तुम बैठो पकड़ चरन।

खेल देखोगे इतहीं, तुम मिल सब मोमिन॥४१॥

सखियों की इस बात पर श्री राज जी कहते हैं कि मैं तुमसे कहीं भी दूर नहीं जाऊंगा। तुम सभी मेरे चरणों को पकड़ कर बैठो। मैं तुम्हें यहीं बिठाकर माया का खेल दिखाऊंगा।

भावार्थ— चरणों को पकड़ कर बैठने का कथन

आलंकारिक है। इसका भाव है— मेरे सामने ही समीप में बैठो।

हम सब मिल मोमिन बैठेंगे, पकड़ तुमारे चरन।

तब कहा करसी फरामोसी, जब बैठें होए एक तन॥४२॥

श्री राज जी की बात सुनकर सखियाँ कहने लगीं कि हे धाम धनी! जब हम सभी आपके चरणों में मिलजुल कर एक स्वरूप होकर बैठेंगी, तब माया की बेसुधी हमारा क्या कर लेगी अर्थात् माया का हमारे ऊपर कोई भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा।

गले बाथ सब लेय के, मिल बैठेंगे एक होए।

तो फरामोसी कहा करे, होए न जरा जुदागी कोए॥४३॥

जब हम सभी एक-दूसरे के गले में बाँहें डालकर तथा

मिलजुल कर एक स्वरूप हो बैठेंगी, तो यह निश्चित है कि माया की बेसुधी हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। हमारे और आपके बीच किसी भी प्रकार से वियोग नहीं हो सकेगा।

जेते कोई मोमिन, सो बैठे तले कदम।

तो तुमारे रसूल का, फेरें नहीं हुकम॥४४॥

हम जितनी भी ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, सभी आपके चरणों में ही बैठी हैं। ऐसी स्थिति में यह सम्भव ही नहीं है कि हम आपके सन्देशवाहक (श्यामा जी) के आदेश का उल्लंघन कर सकें।

जो मुनकर हुकम सों, मोमिन कहिए क्यों ताए।

दयो फरामोसी हम को, देखो सौ बेर अजमाए॥४५॥

जो आपके सन्देशवाहक के आदेश को अस्वीकार कर दे, उसे ब्रह्मसृष्टि कहा ही नहीं जा सकता। आप हमें एक-दो बार नहीं, बल्कि सौ बार भी माया में भेजकर परीक्षा ले सकते हैं।

सो कैसा मोमिन, अर्स की अरवाहें।

हम कदमों बीच अर्स के, क्यों जासी भुलाए॥४६॥

हे धाम धनी! हम परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हैं और आपके चरणों में बैठी हुई हैं। यह कैसे सम्भव है कि हम आपको भूल जायेंगी।

जेती रूहें अर्स की, ताए फरामोसी न जाए जीत।

कछू पड़े बीच अपने, ए नहीं इस्क की रीत॥४७॥

परमधाम में रहने वाली हम जितनी भी आपकी अँगनायें

हैं, उनसे माया नहीं जीत सकेगी। हमारे और आपके बीच में कोई और (माया) आ जाये, यह प्रेम के सिद्धान्त के पूर्णतया विपरीत है।

भावार्थ- प्रेम का यही सिद्धान्त है कि प्रिया-प्रियतम के बीच में कोई और नहीं होता, किन्तु व्यवहार में तो यही देखा जा रहा है कि सुन्दरसाथ को श्री राज जी की अपेक्षा माया से अधिक प्रेम है।

कछुए न चले फरामोस का, हम आगूँ हुए चेतन।

इस्क हमारे रूह के, असल है एक तन॥४८॥

अब तो हम पहले से ही सावधान हो चुके हैं। हमारे ऊपर माया की नींद का कुछ भी असर नहीं होगा। हम सभी सखियाँ वहदत के अन्दर एक ही स्वरूप हैं और हमारे अन्दर का इश्क भी अखण्ड है।

बका आड़े पट करों, तुम देख न सको कोए।

झूठे मिलावे कबीले, तुम देखोगे सब सोए॥४९॥

उनकी बातें सुनकर श्री राज जी बोले— मैं तुम्हारे और परमधाम के बीच में माया का परदा कर दूँगा, जिससे तुम मुझको या परमधाम को नहीं देख सकोगी। उस माया में झूठे (नश्वर) परिवार वाले और सगे-सम्बन्धी मिलेंगे। तुम उसी में रल (घुलमिल) जाओगी।

बैठियां सब मिलके, अंग सों अंग लगाए।

उठाऊं जुदे जुदे मुलकों, नए नए वजूद बनाए॥५०॥

इस मूल मिलावा में तो तुम सभी मिलकर अंग से अंग लगाकर (सट-सट कर) बैठी हो, किन्तु उस माया में जब तुम जाओगी तो मेरे आदेश से तुम्हें अलग-अलग देशों-प्रान्तों में अलग-अलग शरीर धारण करने पड़ेंगे।

भावार्थ- अलग-अलग मुल्क का भाव अलग-अलग भूभागों से है, जिसमें भारत, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान आदि देश हैं, तो पंजाब, सिन्ध, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि प्रान्त हैं। नये-नये वजूद का तात्पर्य है- किसी की आत्मा पुरुष तन में होगी, तो किसी की आत्मा स्त्री के तन में। कोई बाल्यावस्था में प्रतीत होगी, तो कोई वृद्धावस्था में, क्योंकि संसार में सबकी अवस्था बदलती रहती है।

पर ऐसा देखोगे तिलसम, जो सबे हुई फरामोस।

इलम देऊं मेरा बेसक, तो भी ना आओ माहें होस॥५१॥

तुम माया का ऐसा जादुई खेल देखोगी, जिसमें तुम सभी पूर्ण रूप से बेसुधी में डूब जाओगी। मैं तुम्हें जाग्रत करने के लिये अपना संशय रहित ज्ञान भी दूँगा, फिर भी

तुम होश में नहीं आओगी।

एह खेल ऐसा है, तुम अपना कबीला कर।

कोई न किसी को पेहेचाने, बैठो जुदे जुदे कर घर॥५२॥

यह माया का ऐसा खेल है, जिसमें तुम अलग-अलग वंशों में, अलग-अलग परिवार बनाकर फँस जाओगी। उसमें कोई भी किसी को पहचान नहीं सकेगा।

भावार्थ- वंश और परिवार में अन्तर होता है। वंश में कई परिवार (घर) जुड़े होते हैं। अलग-अलग वर्गों में प्रकट होने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ माया के प्रभाव से एक-दूसरे को नहीं पहचान सकेंगी, क्योंकि खेल में सबके रूप-रंग, रहन-सहन अलग-अलग हो जाते हैं।

तेहेकीक जानोगे झूठ है, तो भी दिल से न छूटे एह।

ऐसी मोहोब्बत बांधोगे, झूठै सों सनेह॥५३॥

तुम अच्छी तरह से इस बात को जान जाओगी कि यह सारा संसार ही झूठा है, फिर भी तुम अपने दिल से उसका मोह नहीं छोड़ सकोगी। तुम उन झूठे रिश्तों के मोहपाश में ऐसे बँध जाओगी कि उनसे ही स्नेह करने लगोगी।

वाही जानोगे न्यामत, और वाही से करोगे प्यार।

सुख दुख सारा झूठ का, वाही कुटम परिवार॥५४॥

तुम पारिवारिक सम्बन्धों को ही परमात्मा की कृपा से प्राप्त होने वाली विशेष सम्पदा समझोगी और उन्हीं के झूठे प्रेम में फँसी रहोगी। अपने परिवार के साथ कभी तुम सुखी होओगी तो कभी दुःखी होओगी, किन्तु यह

सारी लीला झूठी होगी।

भावार्थ- अपनी पत्नी, पुत्र, पुत्री, तथा अन्य सम्बन्धियों के गुणों पर मोहित होकर उन्हें अपने जीवन का सर्वस्व मानना बन्धन का कारण होता है। इस चौपाई के पहले चरण में यही बात दर्शायी गयी है। संसार के सुख क्षणिक होते हैं, इसलिये उन्हें झूठा कहा गया है।

आग पानी पूजोगे, या सूरत बनाए पत्थर।

कहोगे हमारा हक है, सब की एह नजर॥५५॥

उस माया के संसार में तुम सभी की दृष्टि में ऐसी अज्ञानता छा जायेगी कि तुम आग, पानी, या पत्थर की मूर्तियाँ बनाकर पूजा करोगी। तुम बारम्बार यही कहा करोगी कि हमारा एकमात्र परमात्मा तो यही है।

आसमान जिमी पाताल लग, सब झूठे झूठ मण्डल।

ऐसे झूठे खेल में, तुम जाओगे सब रल॥५६॥

आकाश से लेकर पृथ्वी और पाताल तक सम्पूर्ण झूठ ही झूठ का मण्डल है, अर्थात् सब कुछ काल के गाल में समा जाने वाला है। उस झूठे संसार में जाकर तुम भी उनमें घुलमिल जाओगी।

हक इनों में न पाइए, ना कछु सुनिया कान।

सांच न पाइए इनों में, ए झूठे फना निदान॥५७॥

उस मायावी संसार में मुझे (परब्रह्म को) नहीं पा सकोगी। वहाँ किसी ने मेरे बारे में अपने कानों से सुना भी नहीं है। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही महाप्रलय में निश्चित रूप से लय हो जाता है, उसमें सत्य का स्वरूप होता ही नहीं।

झूठा खेल कबीले झूठे, झूठे झूठा खेलें।

सब झूठे पूजें खाएं पिए झूठे, झूठे झूठा बोलें॥५८॥

माया का वह सम्पूर्ण खेल ही झूठा है। वहाँ के सभी वंशों (खानदानों) का सम्बन्ध भी झूठा होता है। स्वप्न के जीवों का सारा कार्य झूठा होता है। संसार के जीव जिन देवगणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) को परमात्मा का स्वरूप मानकर पूजते हैं, वे भी महाप्रलय में लय हो जाते हैं। इनका खान-पान भी झूठा होता है। स्वप्नवत् दिखायी देने वाले इन जीवों का बोलचाल भी झूठा होता है।

भावार्थ- मनुष्य जिस वंश में जन्म ले लेता है, उसमें एक-एक कर सभी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये संसार के कबीलों को झूठा कहते हैं। महाप्रलय में जीव आदिनारायण में लय हो जाते हैं, इसलिये उनके स्वरूप

को भी झूठा कहते हैं। इस संसार में लौकिक कार्यों का परिणाम नश्वर ही होता है, इसलिये जीवों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को भी झूठा कहा गया है।

यहाँ भूख मिटाने के लिये जिन पदार्थों का आहार किया जाता है, वे पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं एवं सेवन करने के पश्चात् उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, और केवल मल-मूत्र ही बचता है जो उनके पूर्व रूप से सर्वथा भिन्न होता है। यही कारण है कि संसार के भोज्य पदार्थों को मिथ्या (नश्वर) माना गया है।

झूठा सब लगेगा मीठा, झूठा कुटम परिवार।

सुख दुख इनमें झूठी चरचा, हुआ सब झूठे का विस्तार॥५९॥

यद्यपि झूठे कुटुम्ब-परिवार में रहकर सुख-दुःख की अनुभूति करना, उनके जाल में फँसे रहकर मीठी-मीठी

बातें करना सब झूठ है, किन्तु वह झूठा संसार ही तुम्हें बहुत प्यारा लगेगा। वहाँ तो मात्र झूठ का ही विस्तार है।

इस्क तुमारा तो सांचा, मोहे याद करो वखत इन।

रब्द किया तुम मुझसों, बीच बका वतन॥६०॥

तुम्हारा प्रेम तो तभी सच्चा माना जायेगा, जब संसार में फँस जाने पर भी मुझे प्रेमपूर्वक याद करती रहो अर्थात् मुझे अपने दिल में बसाये रहो। अपने प्रेम को बड़ा बताने के लिये ही तो तुमने परमधाम में मुझसे रब्द किया था।

ऐसी तो कोई ना हुई, बिना इलम होवे हुसियार।

हाँसी बिना कोई ना रही, छोड़ ना सके अंधार॥६१॥

ऐसी कोई भी ब्रह्मसृष्टि नहीं है, जो तारतम ज्ञान के बिना माया से सावचेत हो सके। इस संसार में प्रत्येक

आत्मा माया में फँसेगी और अवश्य ही अपनी हँसी करायेगी।

इलम मेरा लेय के, निसंक दुनी से तोड़।

सोई भला इस्क, जो मुझ पे आवे दौड़॥६२॥

जो आत्मा मेरा तारतम ज्ञान लेकर संसार की परवाह न करते हुए मुझे पाने के लिये दौड़ती हुई आयेगी, उसी का इश्क सच्चा माना जायेगा।

भावार्थ- अक्षरातीत को पाने के लिये दौड़ने का अर्थ है- दीदार करने के लिये प्रेम में डूबकर ध्यान (चितवनि) में लग जाना।

झूठा खेल देखाइया, चौदे तबक की जहान।

एक कंकरी होवे अर्स की, तो उड़े जिमी आसमान॥६३॥

मैंने तुम्हें चौदह लोक की दुनियां का यह झूठा खेल दिखाया है। यदि परमधाम की एक कँकरी भी यहाँ आ जाये, तो उसके तेज से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

भावार्थ— पृथ्वी और आकाश से तात्पर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से है। सातों पाताल लोक इस पृथ्वी के अन्तर्गत ही आ जाते हैं, क्योंकि "पादस्य तले यो देशः स पातालः" अर्थात् हिमालय से नीचे जो समुद्र के तटवर्ती भाग अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि हैं, वे पाताल लोक में माने जाते हैं। इसी प्रकार ऊपर के छः लोक आकाश में ही समाहित हो जाते हैं।

ज्यों नींद में सुपन देखिए, कई लाखों वजूद देखाए।

आंखां खोले उड़े फरामोसी, वह तबही मिट जाए॥६४॥

जिस प्रकार नींद की अवस्था में स्वप्न देखने पर लाखों शरीर एकसाथ दिखायी देते हैं और नींद हटने पर आँखें खुलते ही सभी समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार आदिनारायण की नींद में असंख्य ब्रह्माण्ड बनते हैं और स्वप्न टूटते ही लय हो जाते हैं।

भावार्थ— अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप पर नींद का आवरण नहीं पड़ता। अक्षर ब्रह्म मात्र सृष्टि रचना का संकल्प लेते हैं। वह संकल्प रूपी आदेश सत्स्वरूप, केवल, और सबलिक से होते हुए अव्याकृत में आता है। अव्याकृत अवश्य मोह सागर में स्वयं को आदिनारायण के रूप में देखता है। आदिनारायण के रूप में वह "एकोऽहम् बहुस्याम" का संकल्प करता है, जिससे करोड़ों ब्रह्माण्ड बनते हैं। यदि जाग्रत अवस्था में अव्याकृत संकल्प करे तो इस सृष्टि का प्रलय ही न हो।

फुरमान लिखूं तुमको, और भेजोंगा पैगाम।

तुम कहोगे किन भेजिया, किनके एह कलाम॥६५॥

मैं तुम्हें ब्रह्मवाणी के माध्यम से अपने सन्देश भेजूंगा।
तुम उसे पढ़कर यही कहोगी कि यह किसने भेजा है और
इसमें किसके वचन भरे हैं?

कहां है हमारा खसम, और वतन हमारा कित।

चौदे तबकों में नहीं, ए किनकी किताबत॥६६॥

तुम पूछोगी कि हमारा प्रियतम परब्रह्म कहाँ है और
हमारा परमधाम कहाँ है? यह किसका ग्रन्थ है जो यह
दावा करता है कि चौदह लोकों के ग्रन्थों में जो ज्ञान नहीं
है, वह इसमें है?

अपन आए वास्ते मजकूर, अर्स से उतर।

तो ए दुनियां जो तिलसम की, सो माने क्यों कर॥६७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! इश्क-रब्द के कारण हम परमधाम से इस खेल में आए हैं। स्वप्न की बनी हुई यह दुनियां भला हमारी बातों को क्यों मानेगी।

एह न पावें अर्स को, ना कछू पावें हक।

ना कछू समझें इलम को, ए आप नहीं मुतलक॥६८॥

संसार के इन जीवों का स्वरूप अखण्ड नहीं है , इसलिये न तो ये अखण्ड परमधाम को जान पाते हैं और न ही सच्चिदानन्द परब्रह्म को। ये तारतम ज्ञान को भी यथार्थ रूप से ग्रहण नहीं कर पाते।

भावार्थ- इस चौपाई में सामान्यतः उन जीवों के लिये

संकेत है, जो माया में डूबे होते हैं। शुद्ध हृदय वाले जीव तारतम ज्ञान से धनी की शरण में अवश्य आ जाते हैं, भले ही वे ज्ञान-विज्ञान (हकीकत-मारिफत) की राह पर न चल सकें।

ए जो ढूँढत दुनियां, सो सब तिलसम के।

ए क्यों पावें हक बका, तन असल नाहीं जे॥६९॥

इस हृद के संसार में रहने वाले स्वप्न के जीव उस अखण्ड परब्रह्म को पाना चाहते हैं, किन्तु जब इनका स्वयं का स्वरूप ही नश्वर है तो ये अखण्ड स्वरूप वाले उस अक्षरातीत परब्रह्म को कैसे पा सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "तन" शब्द का वास्तविक भाव स्वरूप से है। ब्रह्म का साक्षात्कार करने वालों का तन भी नश्वर होता है। इस चौपाई में मुख्य रूप

से यह बात दर्शायी गयी है कि मोह-अहंकार में प्रकट होने वाले जीव बेहद से भी परे उस स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म को यथार्थ रूप में नहीं पा सकते। अगली चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

पैदा आदम हवा से, हिरस हवा सैतान।

इन बिध की ए पैदास, केहेवत कुरान पुरान॥७०॥

कुरआन-पुराण में ऐसा वर्णन है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि आदम और हव्वा (आदिनारायण तथा लक्ष्मी) से उत्पन्न हुई है। इनको परमात्मा की ओर जाने से रोकने के लिये अजाजील ने लोभ, लालच, और अज्ञान को इनके दिल में बसा दिया है।

भावार्थ- कुरआन के पार: १ सिपार: ८ आयत ११-२५ में इस प्रसंग का वर्णन है। इसी प्रकार भागवत आदि

पौराणिक ग्रन्थों में भी इस प्रकार का प्रसंग है।

रल गए वाही खेल में, कछू रही न असल बुध।

रुहअल्ला कहे सौ बेर, तो भी आवे न दिल सुध॥७१॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ भी इस खेल में आकर माया में बिल्कुल घुलमिल गयी हैं। उनके पास परमधाम की निज बुद्धि जरा भी नहीं है। यदि श्यामा जी उन्हें जाग्रत करने के लिये सौ बार भी कहती हैं, तो भी उनके दिल में सुध नहीं आती है।

देखा देखी करो इनकी, बैठे तिलसम माहें।

तुम आए बका वतन से, ए मुतलक कछुए नाहें॥७२॥

हे सुन्दरसाथ जी! इस माया के संसार में आकर तुम भी स्वप्न के जीवों जैसा ही आचरण कर रहे हो। तुम तो

अखण्ड परमधाम से आये हो, जबकि यह ब्रह्माण्ड तो निश्चित रूप से कुछ है ही नहीं।

ए तिलसम खेल फना से, खेलत फना माहें।

आखिर सब फना होवहीं, इत कायम जरा नाहें॥७३॥

यह जादुई खेल मोह सागर से बना है। इसमें रहने वाले सभी प्राणी मोहतत्व के अन्दर ही भटकते रहते हैं। महाप्रलय के समय मोहतत्व सहित यह सम्पूर्ण कार्य जगत लय हो जाता है। इस ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु अखण्ड नहीं है।

पट आड़ा बका वतन के, एही हुई फरामोस।

जो याद करो हक वतन, इस्क न आवे बिना होस॥७४॥

तुम्हारे और अखण्ड परमधाम के बीच में माया का पर्दा

है। यदि तुम अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा निज घर का ध्यान (चितवनि) करो, तो तुम्हारे अन्दर इश्क आ जायेगा। इश्क आये बिना तुम होश में नहीं आ सकते अर्थात् जाग्रत नहीं हो सकते।

बेसक झूठ देखाइया, सो क्यों देखें हमको।

रुहें लेवें इलम बेसक, तब पोहोंचे बका मो॥७५॥

श्री राज जी कहते हैं कि इसमें कोई शक नहीं है कि मैंने अपनी अँगनाओं को माया का खेल दिखाया है, इसलिये वे मुझे नहीं देख सकतीं। जब वे मेरा संशय रहित तारतम ज्ञान ग्रहण करेंगी, तभी उनकी दृष्टि मेरे अखण्ड धाम में पहुँचेगी।

तुम देख्या तिन मुलक को, जित जरा ना इस्क।

इत बेसक क्यों होवहीं, जित खबर न पाइए हक॥७६॥

श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुमने माया के उस संसार को देखा है, जिसमें नाम मात्र के लिये भी इश्क नहीं होता है। जिस संसार में परब्रह्म का ज्ञान ही नहीं मिलता, उसमें संशय रहित कैसे हुआ जा सकता है?

रुहें उन मुलक से, फिर ना सकें वतन।

फरेब क्योंए ना छूटहीं, हक के इस्क बिन॥७७॥

जब तक ब्रह्मसृष्टियों को मेरा इश्क नहीं मिलेगा, तब तक उनसे माया छूट नहीं सकेगी और वे उस झूठे संसार से अपने धाम में भी नहीं आ सकेंगी।

ऐसी रूहें वाहेदत की, ताए फरेब पोहोंचे क्यों कर।

ए बड़ा रूहों का तअजुब, जो बांधी झूठ सों नजर॥७८॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों में माया का प्रपञ्च कैसे पहुँच सकता है अर्थात् नहीं पहुँच सकता। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि रूहों ने अपनी नजर झूठ से जोड़ ली है। रूहों की नूरी नजर इस संसार में नहीं है, बल्कि हुक्म की नजर (सुरता) संसार में आयी है। नूरी नजर तो श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर खेल को देख रही है।

मैं भेजी रूह अपनी, सब दिल की बातें ले।

तुमें तो भी याद न आवहीं, कोई आए बनी ऐसी ए॥७९॥

मैंने तुम्हें जाग्रत करने के लिये श्यामा जी को भेजा। वे तारतम ज्ञान के रूप में मेरे दिल की सारी बातें लेकर गयी हैं। तुम्हारी स्थिति ही कुछ ऐसी हो गयी कि श्यामा

जी के बारम्बार सिखापन देने पर भी तुम्हें परमधाम की या मेरी याद नहीं आ रही है।

सब बातें मेरे दिल की, और सब रूहों के दिल।

सो भेजी मैं तुम पे, जो करियां आपन मिल॥८०॥

मैंने अपने दिल की तथा तुम्हारे दिल की सारी बातें श्यामा जी के माध्यम से भिजवायी हैं। हमने आपस में जो प्रेम-विवाद किया था, वे बातें भी मैंने तुम्हारे पास भेज दी हैं।

ए बातें सब असल की, जब याद दई तुम।

तब इस्क वाली रूहों को, क्यों न उड़े तिलसम॥८१॥

परमधाम की ये सारी बातें जब तुम्हें याद दिला दी गयी हैं, तो भी तुम्हारे अन्दर से यह झूठी माया क्यों नहीं

निकल पा रही है? तुम तो वहाँ बढ़-चढ़कर इश्क का दावा लेती थीं।

जब लग लगे दुनियां, तब पोहोंचे न बका मौं।

एक रूह दूजा इस्क, आए काम पड़या इनसों॥८२॥

जब तक तुम इस नश्वर संसार में फँसी रहोगी, तब तक तुम्हारी आत्मिक दृष्टि परमधाम में नहीं पहुँचेगी। परमधाम के साक्षात्कार के लिये अपने निज स्वरूप की पहचान तथा अनन्य प्रेम का मार्ग अपनाने की आवश्यकता है। इसके बिना काम नहीं बनेगा।

दूजा कछू पोहोंचे नहीं, हक को बीच बका।

जहां रूह न होवे एकली, छोड़ सबे इतका॥८३॥

जब तक आत्मा संसार का पूर्णतया परित्याग कर

अकेली नहीं हो जाती और प्रियतम का प्रेम नहीं लेती ,
तब तक वह परमधाम का साक्षात्कार नहीं कर सकती।
श्री राज जी के उस परमधाम में आत्मा के साथ इश्क
(अनन्य प्रेम) के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं जा
सकती।

बका बीच रूहन को, खेल देखावे हक।

आया गया इत कोई नहीं, ए इलम कहे बेसक॥८४॥

तारतम ज्ञान स्पष्ट रूप से कहता है कि धाम धनी
परमधाम में ही अँगनाओं को बैठाकर माया का यह खेल
दिखा रहे हैं। उस पूर्णातिपूर्ण परमधाम से प्रत्यक्ष रूप से
न तो कोई यहाँ शरीर सहित आया है और न ही यहाँ से
कोई (जीव या ईश्वरी सृष्टि) जायेगा।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियाँ सुरता से यहाँ आयी हैं और

उनकी सुरता ही अपने मूल तन में जायेगी। जीव या ईश्वरी सृष्टि तारतम ज्ञान को प्राप्त करके बेहद में पहुँचेंगी।

बेसक इलम सीख के, ऐसे खेल को पीठ दे।

देखो कौन आवे दौड़ती, आगूं इस्क मेरा ले॥८५॥

सभी आत्माओं के लिये यह परीक्षा की घड़ी है। देखना है कि वह कौन सी आत्मा है, जो मेरे संशय रहित तारतम ज्ञान को ग्रहण करके मायावी जगत् को पीठ दे देती है और मेरा इश्क लेकर दौड़ते हुए मेरे पास आती है अर्थात् अपने दिल में मेरी शोभा को बसा लेती है।

भावार्थ— सभी आत्माएँ एकसाथ ही परमधाम जायेंगी। इस चौपाई में दौड़ लगाने का तात्पर्य है – चितवनि में डूबकर अपनी आत्मिक दृष्टि को परमधाम ले जाना और अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसा लेना।

जब तुम भूले मुझ को, तब इस्क गया भुलाए।

अब नए सिर इस्क, देखो कौन लेय के धाए॥८६॥

जब तुमने मुझे भुला दिया, तो तुमसे इश्क भी जुदा हो गया। अब मुझे यही देखना है कि तुममें से ऐसी कौन है, जो अब नए सिरे से मेरा इश्क लेकर मेरे प्रति दौड़ लगाती है।

भावार्थ— इश्क और अक्षरातीत में चोली-दामन का साथ है। अक्षरातीत को भुलाकर इश्क पाने की कल्पना बालू पेरकर तेल निकालने के समान है। ब्रह्मवाणी अक्षरातीत की पहचान कराती है, तो इश्क अक्षरातीत के दीदार कराता है। ध्यान (चितवनि) की प्रक्रिया में अक्षरातीत की शोभा में ही स्वयं को डुबोया जाता है। इश्क पाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

याद करो इन इस्कको, जो रब्द किया सबों मिल।

सो इस्क अपना कहाँ गया, टिक्या नहीं पाव पल॥८७॥

अपने परमधाम के उस इश्क को याद करो, जिसके लिये तुमने मुझसे रब्द किया था। अब तुम्हारा वह इश्क कहाँ चला गया? उसे दिखाते क्यों नहीं? इस माया के संसार में तो तुम्हारा वह इश्क एक पल के चौथाई हिस्से के बराबर भी नहीं रहा।

सब ज्यादा केहेती अपना, करती अर्स में सोर।

असल रूहों के इस्क का, कहाँ गया एता जोर॥८८॥

परमधाम में सभी सखियों ने इस बात का शोर मचा रखा था कि उनका इश्क सबसे अधिक है। उन अँगनाओं के इश्क की शक्ति अब कहाँ चली गयी है, जो माया से निकल नहीं पा रही?

किया रूहों सबों रब्द, पर आप न पकड़या किन।

फरामोसी सबों फिरवली, हुई हाँसी सबन॥८९॥

सभी अँगनाओं ने अपने इश्क को बड़ा कहा और विवाद किया, किन्तु इस खेल में किसी ने भी अपने उस प्रेम को पकड़ कर नहीं रखा। सभी के ऊपर माया की बेसुधी छा गयी, जिसके कारण सभी को हँसी का पात्र बनना पड़ा।

जब इस्क गया सब थें, तब निकल आई पेहेचान।

जिनका इस्क जोरावर, ताए कछुक रहे निदान॥९०॥

जब इस माया के खेल में किसी के पास इश्क रहा ही नहीं, तो यह स्पष्ट पहचान हो गयी कि कौन आशिक है और किसका इश्क बड़ा है? सखियाँ अपने इश्क को ही शक्तिशाली कहती थीं। जब उनके प्रेम में इतनी शक्ति थी

तो इस खेल में कुछ तो इश्क होना चाहिये, किन्तु जरा भी नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि इश्क के मूल श्री राज जी ही हैं। उन्हीं का इश्क श्यामा जी और सखियों में लीला करता है। उनसे लीला में अलग होते ही (भूलते ही) किसी के पास लेशमात्र भी इश्क नहीं रहा।

सब केहेती इस्क अपना, हमारा बेसुमार।

सो रह्या न जरा किन पे, हाए हाए दिया सबों ने हार॥९१॥

परमधाम में सभी कहती थीं कि हमारा इश्क बेशुमार (अनन्त, बड़ा) है, किन्तु इस खेल में अब किसी के पास नाम मात्र भी इश्क नहीं है। हाय! हाय! इश्क की बाजी में सभी हार गयीं।

इनों बोहोत लाड़ किए मुझसों, मैं एक किया इनों सों।

सो एक मेरे लाड़ में, सब बेहे गैयां तिनमों॥९२॥

परमधाम में इन सखियों ने मुझसे बहुत प्यार (लाड़) किया, किन्तु जब मैंने इनसे थोड़ा सा (एक) प्यार किया तो मेरे उसी प्रेम के बहाव में सभी बह गयीं।

भावार्थ- अक्षरातीत श्री राज जी का प्रेम अनन्त है। उस प्रेम के सागर की लहरें ही ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, जो वहदत में धनी का ही प्रेम लेकर उनको रिझाती हैं। उनका धनी से अलग कोई अस्तित्व नहीं है, किन्तु यदि कोई लहर अपने जल को सागर के जल से भी अधिक मानने लगे तो आश्चर्य होता है। यद्यपि उमड़ते हुए सागर में चारों ओर लहरें ही लहरें दिखायी देती हैं, उन लहरों को सागर के हृदय (गर्भ) में छिपे हुए अनन्त जल का पता नहीं होता। यदि सागर का जल उफान पर आ जाये, तो

उमड़ने वाली लहरें उसका बोझ नहीं सहन कर सकतीं।

यही स्थित इश्क-रब्द से लेकर खेल में हो रही है। अक्षरातीत ने ब्रज, रास, एवं जागनी ब्रह्माण्ड में सखियों को रिझाया है। श्यामा जी के दूसरे जामे में विराजमान होकर उन्होंने गाँव-गाँव, जँगल-जँगल में जाकर उन्हें जगाया है, जबकि वे माया में सोती रही हैं। धाम धनी ने अपने इश्क की पहचान देने के लिये खेल दिखाया, जिसमें सखियाँ और श्यामा जी पूरी तरह से हार गयीं।

और इस्क भी जोरावर, तिनकी एह चिन्हार।

जिन घट सुनत आवहीं, सोई जानो सिरदार॥९३॥

जिस आत्मा का इश्क शक्तिशाली होता है, उसकी पहचान यही है कि वह धनी का नाम सुनते ही इश्क के जोश से भर जाती है। उसी को प्रधान सखी (आत्मा)

समझना चाहिए।

और भी बेवरा इस्क का, जिनका होए बुजरक।

ताए याद दिए क्यों न आवहीं, ऐसा क्यों जाए मुतलक॥९४॥

इश्क का निरूपण यह भी है कि जिन सखियों ने अपने इश्क को बड़ा कहा था, उन्हें याद दिलाने पर भी उनके अन्दर धनी का इश्क क्यों नहीं आ रहा है? माया में उनका इश्क कहाँ चला गया?

रुहें बात सुनते हक की, तुरत ही करें सहूर।

जब सहूर रुहें पकड़े, तो इस्क क्यों न करे जहूर॥९५॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि श्री राज जी की बातें सुनते ही उस पर तुरन्त चिन्तन करती है। जब वह धनी के चिन्तन में खोई हुई है, तो उनके प्रति अपने इश्क को भी

वह क्यों नहीं दर्शाती?

भावार्थ- इस चौपाई का भाव यह है कि जो धनी का चिन्तन करता है, उसमें धनी का इश्क अवश्य होना चाहिए, तभी वह ब्रह्मसृष्टि कहलाने के योग्य है।

और भी पेहेचान इस्क की, जो बढ़ के घट जाए।

इस्क रूहों का हक सों, क्यों कहिए बका ताए॥९६॥

इश्क की पहचान यह भी है कि वह हमेशा ही समान अवस्था में रहता है। यदि वह पहले बढ़कर बाद में घट जाता है, तो अक्षरातीत के प्रति अँगनाओं का वह अखण्ड इश्क नहीं कहा जा सकता।

इस्क हक का सो कहिए, जो इस्क है कायम।

एक जरा कम न होवहीं, बढ़ता बढ़े दायम॥९७॥

अक्षरातीत के प्रति आत्मा का सच्चा इश्क वही कहलाता है, जो हमेशा ही अखण्ड है और एकरस है। वह लेशमात्र भी कम नहीं होता, बल्कि निरन्तर बढ़ता रहता है।

मेरा छूटया न इस्क रूहों सों, नजर न छूटी निसबत।

रूहों छूटी इस्क निसबत, ऐसी भूल गैयां खिलवत॥९८॥

श्री राज जी कहते हैं कि ब्रह्मसृष्टियों से मेरा इश्क नहीं छूटा है और न उनसे मेरी नजर हटी है, किन्तु सखियाँ मूल मिलावा को इस प्रकार भूल गयी हैं कि उनका इश्क से सम्बन्ध ही छूट गया है।

किया मजकूर इस्क का, अजूं सोई है साइत।

पड़े बीच फरामोस के, तुम जानो हुई मुदत॥९९॥

तुमने परमधाम में जिस समय इश्क सम्बन्धी रब्द किया

था, अभी भी वही पल है, किन्तु माया में जाने के कारण तुम यह समझ बैठी हो कि बहुत लम्बा समय बीत गया है।

सक छूटी अर्स हक की, सब बातों हुई बेसक।

तब अर्स अरवाहों को, क्यों न आवे इस्क॥१००॥

तारतम ज्ञान के द्वारा परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ अपने निजधाम और मेरे सम्बन्ध में पूर्ण रूप से बेशक हो चुकी हैं, फिर भी उनके अन्दर इश्क क्यों नहीं आता ? यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

तोलों चले न इस्क का, जोलों आड़ी पड़ी सक।

सो सक जब उड़ गई, तब क्यों न आवे इस्क हक॥१०१॥

जब तक धनी के प्रति संशय रूपी परदा है, तब तक

इश्क का कोई भी वर्चस्व (दबदबा) नहीं होता। अब तारतम ज्ञान से जब सभी संशय निवृत्त हो गये हैं, तो भी धनी का प्रेम क्यों नहीं आ रहा है?

अव्वल इस्क जिनों आइया, सोई अर्स अरवाहें।

नाहीं मुतलक मोमिन, जिनों लगे न बेसक घाए॥१०२॥

परमधाम की एकमात्र ब्रह्मसृष्टियाँ वही हैं, जिनके अन्दर तारतम ज्ञान से सबसे पहले इश्क आता है। ब्रह्मवाणी को सुनकर भी जिसके हृदय में चोट नहीं लगती, निश्चित रूप से वह ब्रह्मसृष्टि नहीं है।

बेसक इलम आइया, पाई बेसक हक दिल बात।

हुए बेसक इस्क न आइया, सो क्यों कहिए हक जात॥१०३॥

सबको संशयों से छुटकारा दिलाने वाला तारतम ज्ञान

आ गया है, जिससे सभी ने श्री राज जी के दिल की बातों को जान लिया है। इस प्रकार बेशक हो जाने पर भी जिनके दिल में धाम धनी का इश्क नहीं आता, उन्हें ब्रह्मसृष्टि कैसे कहा जा सकता है? कदापि नहीं।

बेसक इलम रुहअल्ला का, जो हैयात करे फना को।

मुरदे चौदे तबक के, उठें इन इलम सों॥१०४॥

श्यामा जी का यह तारतम ज्ञान पूर्ण रूप से संशय रहित है। इसके द्वारा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति प्राप्त होनी है। इस तारतम ज्ञान के प्रकाश में चौदह लोक के जीव जाग्रत हो जायेंगे, अर्थात् एक परब्रह्म की पहचान कर उनके प्रति अटूट आस्था रखेंगे।

सो बेसक इलम ल्याइया, रुहअल्ला रुहन पर।

जो अरवाहें अर्स की, ताए इस्क न आवे क्यों कर॥१०५॥

श्यामा जी ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही यह संशय रहित तारतम ज्ञान लेकर आयी हैं। इस ज्ञान को पाने के बाद भी जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, उनके अन्दर धनी का इश्क क्यों नहीं आ रहा है?

इलम हक का सुनत ही, इस्क न आया जिन।

तिनको नसीहत जिन करो, वह मुतलक नहीं मोमिन॥१०६॥

इस ब्रह्मवाणी को सुनने के पश्चात् भी जिनके अन्दर प्रियतम परब्रह्म का प्रेम नहीं आता, उन्हें सिखापन देने की कोई आवश्यकता नहीं है। निश्चित रूप से वह परमधाम की ब्रह्मसृष्टि नहीं है।

है तीन वजहे की उमत, इस्क बंदगी कुफर।

सो तीनों आपे अपनी, खड़ियां मजल पर॥१०७॥

तीन प्रकार की सृष्टि हैं, जिनमें ब्रह्मसृष्टि अनन्य प्रेम (इश्क) की राह पर चलती हैं, तो ईश्वरीय सृष्टि भक्ति (बन्दगी) की राह अपनाती है। जीव सृष्टि नास्तिकता या कर्मकाण्ड के ही मार्ग पर चल पाती है। इस प्रकार तीनों की अपनी-अपनी अलग-अलग मन्जिल है।

भावार्थ- सामान्यतः जीव सृष्टि या तो परब्रह्म के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करती, यदि करती भी है तो वह मात्र कर्मकाण्ड (शरियत) की राह पर चलकर भक्ति का दिखावा करती है। उनमें कोई विरला ही होता है, जो उपासना (तरीकत) के मार्ग का अवलम्बन कर पाता है। तारतम ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उपासना की अग्नि में जलकर जो विशुद्ध हृदय वाले हो जाते हैं, उनमें

कोई विरला ही ज्ञान (हकीकत) की राह पर चल पाता है। इस सृष्टि का विज्ञान (मारिफत) में पहुँचना असम्भव ही होता है। जीव सृष्टि की मन्जिल वैकुण्ठ, ईश्वरीय सृष्टि की मन्जिल बेहद, और ब्रह्मसृष्टि का लक्ष्य मात्र परमधाम होता है।

सो तीनों लेवें नसीहत, पर छूटे नहीं मजल।

जैसा होवे दरखत, तिन तैसा होवे फल॥१०८॥

यद्यपि ब्रह्मवाणी का प्रकाश तीनों पर ही पड़ता है , लेकिन कोई भी अपनी राह नहीं छोड़ पाती है। ब्रह्मसृष्टि प्रेम की राह पर चलती है, तो ईश्वरीय सृष्टि भक्ति को प्राथमिकता देती है। जीव सृष्टि कर्मकाण्ड को ही सर्वोपरि मानती है। यह स्थिति वृक्ष के अनुसार फल लगने जैसी है।

भावार्थ- जिस प्रकार कल्प वृक्ष पर दिव्य फल ही लगता है, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टि मात्र प्रेम का ही मार्ग अपनायेगी। वह कदापि कर्मकाण्ड की राह पर नहीं चलेगी। इसके विपरीत बबूल के पेड़ पर जिस प्रकार आम का मधुर फल नहीं लग सकता, उसी प्रकार जीव सृष्टि कर्मकाण्ड को छोड़कर ज्ञान-विज्ञान (हकीकत और मारिफत) की राह पर नहीं चल सकती। ईश्वरीय सृष्टि की राह इन दोनों के मध्य की होती है।

कोई बुरा न चाहे आपको, पर तिन से दूसरी न होए।

बीज बराबर बिरिख है, फल भी अपना सोए॥१०९॥

यद्यपि कोई भी व्यक्ति अपना बुरा नहीं चाहता है, किन्तु अपने से श्रेष्ठ की चाल नहीं चल पाता अर्थात् जीव सृष्टि ब्रह्मसृष्टियों की राह पर नहीं चल पाती। बीज के अनुसार

ही वृक्ष होता है तथा फल भी उसी के अनुसार लगते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार बीज में ही वृक्ष छिपा होता है और अंकुरण के पश्चात् कार्य रूप में प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार अंकुर में ही करनी छिपी होती है तथा उसी के अनुसार रहनी होती है। ब्रह्मसृष्टि में स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है, जो हकीकत और मारिफत की राह पर चलने के लिये उसे प्रेरित करता है। इसके विपरीत जीव सृष्टि में जन्म -जन्मातरों की वासनायें भरी होती है, जिसके कारण उसका हृदय कठोर होता है और वह प्रेम की राह पर नहीं चल पाती।

खेल झूठा देख्या नजरों, सो ले खड़े सिर आप।

ताही में मगन भए, छोड़ कायम मिलाप॥११०॥

ब्रह्मसृष्टियों ने इस झूठे खेल को अपनी सुरता से देखा

और उसी को सब कुछ मानकर बैठ गयीं। वे अखण्ड लीला के स्थान परमधाम को छोड़कर झूठे संसार में ही मग्न हो गयीं।

अब सों क्योंए याद न आवहीं, जो रूहअल्ला आया तबीब।

दारु न लगे तिनका, जाए हकें कह्या हबीब॥१११॥

इस भवरोग की औषधि तारतम ज्ञान है, जिसे लेकर श्यामा जी वैद्य के रूप में आयी हैं। ऐसी स्थिति में भी ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की याद क्यों नहीं आ रही है? श्यामा जी को तो श्री राज जी ने अपना अति प्यारा (माशूक) कहा है, फिर भी उनकी औषधि का प्रभाव सुन्दरसाथ पर क्यों नहीं पड़ रहा है?

चौदे तबक करसी कायम, दारु मसी का ए।

गई ना फरामोसी रूहों की, आई हुकम सों जे॥११२॥

श्यामा जी के द्वारा लायी गयी तारतम ज्ञान रूपी यह औषधि चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही अखण्ड करेगी, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ब्रह्मसृष्टियों की माया में बेसुधी अभी भी समाप्त नहीं हुई है क्योंकि यह धाम धनी के हुक्म से आयी है।

आखिर रूहों नसीहत, ए तो हकें देखाया ख्याल।

रूहों हक को देखाइया, कौल फैल या हाल॥११३॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों को यह स्वप्न का खेल दिखाया है और उनको सिखापन देने के लिये इस समय यह ब्रह्मवाणी अवतरित की है। सखियाँ उस ज्ञान को आत्मसात् कर अपनी माया वाली कथनी, करनी, और

रहनी छोड़कर परमधाम वाली कथनी, करनी, और रहनी ग्रहण कर रही हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "आखिर" शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका भाव कियामत के उस समय से है जिसमें परब्रह्म का आवेश स्वरूप श्री प्राणनाथ जी के रूप में लीला करेगा और ब्रह्मवाणी का अवतरण होगा।

हकें खेल देखाए के, इलम दिया बेसक।

हक हाँसी करें रूहन पर, देसी सबों इस्क॥११४॥

प्रियतम परब्रह्म ने अपनी अँगनाओं को माया का यह झूठा खेल अवश्य दिखाया है, किन्तु उन्हें जाग्रत करने के लिये धनी ने अपना संशय रहित तारतम ज्ञान भी दिया है। यद्यपि इस समय श्री राज जी रूहों पर हँसी इसलिये कर रहे हैं, क्योंकि वे माया में बेसुध हो चुकी हैं,

किन्तु उन्हें जाग्रत करने के लिये वे ही उनके हृदय में अपना इश्क भी देंगे।

कोई आगे पीछे अव्वल, इस्क लेसी सब कोए।

पेहेले इस्क जिन लिया, सोई सोहागिन होए॥११५॥

स्वयं को जाग्रत करने के लिये प्रत्येक सुन्दरसाथ को पहले या बाद में धनी का प्रेम तो अनिवार्य रूप से लेना ही पड़ेगा, किन्तु सबसे पहले जो सुन्दरसाथ धनी के इश्क में स्वयं को डुबो देता है, निश्चित रूप से यही कहा जायेगा कि उसके अन्दर परमधाम की ब्रह्मसृष्टि का अँकुर है।

महामत कहे ए मोमिनोँ, जिन हाँसी कराओ तुम।

याद करो बीच बका के, किया रब्द आगूं खसम॥११६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस माया में बेसुध होकर अपनी हँसी मत कराओ। तुम उस प्रसंग को याद करो, जब तुमने अपने इश्क को बड़ा सिद्ध करने के लिये धाम धनी से परमधाम में रब्द किया था।

प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥१०७४॥

॥ खिलवत संपूर्ण ॥